( ४ )

देवबाला, छबिरसाला, बसी-करन-प्रबीन,
सहित हासी चञ्चला सी चपल बीड़ा लीन ।
कहे गर्बीले रसीले वचन रोचक बाम ,
“ मैन के बस करहु मुनि को मैनका तब नाम”॥

( ५ )

भूरि जोबन [illegible] पूरि वसन्त ,
हरित [illegible] ञ्जुत हरत मनहि दिगन्त ।
वसुमती [illegible] सन की लसन जनु छविसार ,
हरी जासु जमीन है रङ्गीन बूटेदार ॥

( ६ )

लगत हीतल मन्द शीतल पवन परिमल-पेन ,
मनहुँ रोचन मान-मोचन कहति दूती बैन।
गुञ्ज-धुनि अलि-पुञ्ज छावत कुञ्ज कुञ्ज मँझार ,
मञ्जु श्यामा अङ्ग जनु मञ्जीर की झनकार ॥

( ७ )

कोकिला, चण्डूल, चातक, चक्रवाक, चकोर,
शुक, कपोत, महोक, मैना, लाल, मुनिया, मोर।
विविध रङ्ग विहङ्ग विहरत करत सुन्दर गान ,
मनहु मधु-नृप-मण्डली सगीत की गुनवान ॥

( ८ )

नीलगाय, कुरङ्ग, कुञ्जर, आदि पशु-समुदाय,
छेम सो विहरत परस्पर प्रेमभाव बढाय ।
सचिव तप को पाय जनु आदेश पावन देश ,
सत्त्वगुणमय चरित कीन्हें त्यागि दुर्गुण लेश ॥

( ९ )

मैनका जब कीन वन छविलीन माँहि प्रवेश
कहत देखनहार है शृङ्गार नारी वेश ।
करत कोउ अनुमान देवी विपिन की द्युतिमान ,
कहत कोऊ है महीतल मध्य शीतल भान ॥

( १० )

भ्रकुटि धनु को डरत नाहीं अरत शुक ललिचाय ,
चहत अधरन चोच मारन विम्ब को भ्रम खाय ।
शङ्क चम्पक रङ्ग की तजि चञ्चरीक सुपुञ्ज
भूलि अङ्ग सुगन्ध पे लगि सङ्ग छावत गुञ्ज ॥

( ११ )

द्रुमन सों भरि सुमन सोहे मनहु वनदेवीन
अगना के पन्थ डारे पावडे रङ्गीन ।
तरल नवदलकलित मुकुलित तरु-लता लहराय
पुलकि कर सों मनहुँ स्वागत करति मुद सरसाय॥

( १२ )

आन बान समेत एहि बिधि रूपमान-निकेत
साधुराज समीप पहुँची काज साधन हेत ।
रथ मनोरथ, पंक पग, गजराज गति, मन बाजि,
जनु अनङ्ग चढ्यो अनी चतुरङ्गिनी निज साजि॥

( १३ )

बन्द लोचन, मन्द स्वासा, तपन तेज अमन्द ,
लीन लखि आनन्द मे मुनि द्वन्द्वहीन सुछन्द ।
अपसरा सुमनोहरा तब करन लागी गान ,
पवनपथ जनु सैन पठई दुर्ग दुर्गम जान ॥

( १४ )

गई छूटि समाधि उग्र उपाधि गुनि मुनिभूप
अधखुले द्दग यो लखैं मृगलोचनी को रूप ।
करत जिमि बिसराम अपने धाम औचक वीर
पाय खटका खोलि अर्ध कपाट झाँकै धीर ॥

( १५ )

बीन के जुग तुम्ब ही तम्बूरहू बिन तार
कम्बु में कलकण्ठरव कलहंस में झनकार।
नचत खञ्जन कञ्ज पल्लव करत रञ्जन गान*,
बीतराग छके निरखि संगीत को सामान ॥

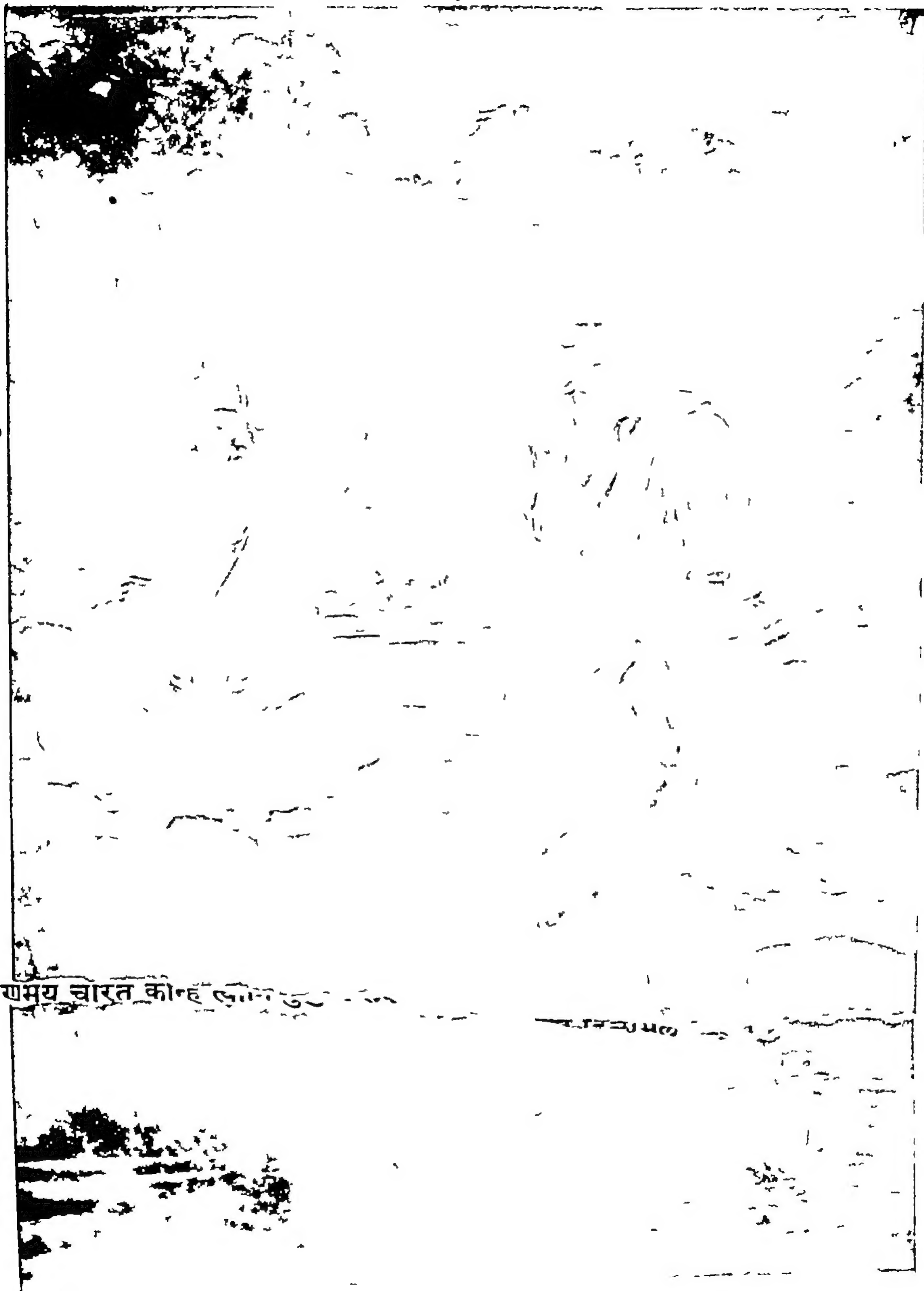
( १६ )

पन्नगी, सुबिहङ्ग, कुञ्जर, केसरी इक सङ्ग
बसत हिलमिल, लसत निर्मल सत्वगुन को रङ्ग।
मानि मन्त्रण अतन को मुनि तपन-काज-प्रवीन
तीय-तन नूतन-तपोवन-रमन को मन कीन ॥

( १७ )

अलङ्कार-प्रकार तजि बरनहुँ बिना बिस्तार ,
सङ्ग मुनिवर अङ्गना को कीन्ह अङ्गीकार ।
बढी सुरपुरवासिनी की वासना उर-धाम ,
कामना सब कामिनी की करी पूरन-काम ॥

* इन तीन चरणों में रूपकातिशयोक्ति द्वारा अङ्ग-वर्णन है।
† रम्भा-तनु-तपोवन-वर्णन ।



शुक और रम्भा।

( १८ )
गर्विता करि गर्भ धारन अनत कीन पयान ,
जाय कन्या रूप-धन्या फेरि पहुँची आन ।
चाव सो प्रिय हाव सो अति भरी भाव विनोद ,
देन चाही बालिका द्युतिमालिका मुनि गोद* ॥

( १९ )
देखि फल तप-भङ्ग-तरु को सामने मुनिराय
फेरि लीन्हो वदन, करसो अरुचि अति दरसाय ।
कहा वेश्या ! कहा पूरनवशी विश्वामित्र !
उचित चित मे खचित करिबो मैन-काठिन-चित्र† ॥

---

## ६—रम्भा-शुक-संवाद ।

श्रीशुक-रम्भा का भयो विदित शब्द-सग्राम ।
ताही की कछु बानगी सुनिये शुभ-मति-धाम ॥

रम्भा— ( १ )
बीथी बीथी आमकी कुञ्ज भावै ;
कुञ्जै कुञ्जै कोकिला मत्त गावै ।
गाये गाये मानिनी मान जावै ;
जातै जातै काम को रङ्ग आवै ॥

शुक— ( २ )
बीथी बीथी साधु को सङ्ग पैये ,
सङ्गै सङ्गै कृष्ण की कीर्ति गैये ।
गाये गाये एकताई प्रकासै ;
एकै एकै सच्चिदानन्द भासै ॥

र०— ( ३ )
धामै धामै हेम की वेलि डोलै ,
वेली वेली पूर्णिमा-चन्द बोलै ।
चन्दै चन्दै मीन की मञ्जु जोरी‡ ;
जोरी जोरी मैन क्रीडा अथोरी ॥

शु०— ( ४ )
धामै धामै रत्न-वेदी सुहावै ,
वेदी वेदी भक्त सवाद भावै ।
वादै वादै सो बोध चित्तै प्रकासै ,
बोधै पाये साधु की मूर्त्ति भासै ॥

* लिपट देने   † मन (काम) की काठिनता का चित्र ।
‡ रूपकातिशयोक्ति ।

र०— ( ५ )
श्यामा कामा सुन्दरी रूपवारी ;
गोरी भोरी काम की सो सँवारी ।
वाकी बाहैं आपने कठ डारी ,
भेटी नाही तो वृथा देह धारी ॥

शु०— ( ६ )
लक्ष्मी-पी की साँवरी मूर्ति प्यारी ,
देवी देवै मोद को देन हारी ।
चन्द्राभासी मन्द मुसक्यानवारी ,
ध्याई नाही, तैा वृथा देह धारी ॥

र०— ( ७ )
वसन्त मे पाय प्रसून-कुंजै ;
सुगन्ध पै मोहि मलिन्द गुंजै ।
विलास ऐसे थल अङ्गना को ,
लहै वही भाग विशाल जाको ॥

शु०— ( ८ )
प्रसून पीताम्बर माल राजै ,
भृङ्गावली केश रसाल भ्राजै ।
वसन्त मे यो हरि मूर्त्ति ध्यावै ,
ते सन्त आनन्द अनन्त पावैं ॥

र०— ( ९ )
हेमन्त मे बाल-मयङ्क ऐसी ,
है अङ्क मे तो फिर सीत कैसी ।
पिया प्रिया की बतियाँ सुहावै ,
आनन्द-भीनी रतियाँ बितावै ॥

शु०— ( १० )
विहाय जो ध्यान प्रमोदकारी ,
खोवै विषै मे सब रात भारी ।
ता हेतु लीन्हे जमदूत फाँसी ,
सचेत होवै वनिता विलासी ॥

र०— ( ११ )
सुवर्णवर्णी तरुणी छबीली ,
प्रिया रँगीली सुमुखी रसीली ।
जो प्रेम ऐसो नहिँ वाम को है ,
तारुण्य तो ये केहि काम को है ?

शु०— (१२)
होवै जरा में बल-बुद्धि-हानी,
मिली तपस्या हित हो जवानी।
उद्योग नाहीं शुभ काम को है,
निकाम तो ये तनु चाम को है॥

र०— (१३)
कुरङ्ग सी जासु चितौन प्यारी,
सुरङ्ग-बिम्बाधर-जुग्मवारी।
अनङ्ग कीसी सुकुमार नारी,
न सङ्ग होवै बिन भाग भारी॥

शु०— (१४)
जाकी लुनाई जग में बसी है,
दसौ दिसा में सुखमा लसी है।
पुनीत पूरी महिमा गँसी है,
बिना भजे ताहि सबै हँसी है॥

र०— (१५)
सुहाविनी गोल कपोल वारी,
बुलाक वाले नथ लोल वारी।
सुकामिनी काम किलोल वारी,
मिलै बड़े भाग अमोल नारी॥

शु०— (१६)
महेश ही को दिन रैन ध्याना,
महेश ही पै मन ये दिवाना।
महेश ही जोग विचार ज्ञाना,
"अमोल" तो है बस भक्त बाना॥

र०— (१७)
वारा अलंकार सिंगार सोरा,
बिलोकि जाके मन होय भोरा।
जो, हाय, स्वीकार करै न वाहि,
ताको अरे जन्म गयो वृथाहि॥

शु०— (१८)
सोरा कला चन्द्र दिनेश बारा,
वारैं गिरा शेष लहै न पारा।
आनन्द को रूप प्रमोदकारी,
का तासु आगे वनिता विचारी?

र० (१९)
रूरी पूरी बदन दुति है चन्द्रमा तें सवाई,
नैना सैना, मदन सरमें नाहि सो तीछनाई।
कारे भारे चिकुर जेहि के भृङ्ग के मानहारी
नारी प्यारी नर नहिं रमी तो वृथा देह धारी॥

शु०— (२०)
प्यारे प्यारे जुगुल पद हैं पद्म-शोभा-प्रहारी,
सेवै लेवै भरि हिय जिन्हैं सिन्धुजा प्राण वारी।
छाई भाई मुनि-गन-हिये जासु प्यारी उज्यारी,
सोई जोई नर नहिं भजै सो वृथा देहधारी॥

र०— (२१)
बामा कामाभिरामा शशिवर-
वदना शीलधामा ललामा।
कस्तूरी-चर्चिताङ्गी मदन-मद-
भरी चञ्चला चारु श्यामा॥
बाँकी ऐसी तिया की चितवन
चित में काम नाही जगावै।*
नाहीं सन्देह देही वह जग
अपनो जन्म योंही गँवावै॥

शु०— (२२)
मज्जा मेदा बसा की अशुच
मल भरी चामकी तुच्छ थैली।
खोटी नौ छिद्र वारी बहु
नसन कसी अस्थि की वस्तु मैली॥
लोहू मूत्रादि जासों बहत
बहु सदा स्रोत दुर्गन्धवारे।
सेवैं सीमा घृणा की नर
जग नरकी नीच पापी नकारे॥

* * * * *

* "काम (मदन) नाही जगावै"—यह रम्भा का अभिप्राय है और "कामना (इच्छा, वासना) ही जगावै—" इस अर्थ से शुक का पक्ष सिद्ध होता है। रम्भा की वाक्त्रुटि उसके भावी पराजय की अग्र-सूचना है।



इन्दिरा ।

( २३ )
( उपसंहार )

रागी त्यागी शब्द-संग्राम कीन्हो,
भोगी जोगी वार मे चित्त दीन्हों ।
हारी नारी, जीत पाई जतीने,
बाजे गाजे व्योम मे मोद भीने ॥

---

## ७—इन्दिरा ।

( १ )

सुनहु पूरन ब्रह्म-विलासियो !
  सकल-त्याग-सुदेश-निवासियो !
छिनहि को इत आतुर आइये,
  प्रकृति की सुखमा लखि जाइये ॥

( २ )

कमलिनी* रमनी दृगरोचनी
  रसवती युवती मृगलोचनी ।
सलवणा ललना-कुल-सुन्दरा
  लसति चित्र-सुहावन "इन्दिरा" ॥

( ३ )

वदन मण्डल पूरन चन्द्रमा,
  सघन कुन्तल रैन मनोरमा ।
मदन ज्योति प्रभा रवि प्रात की,
  मिलि रहीं सुखमा दिन रात की ॥

( ४ )

ललित चन्दन बिन्दु सुभाल पै,
  पुरित की पटली पर लाल है ।
विदित धौं तियभाग सुहाग है,
  उदित सो अथवा अनुराग† है !

( ५ )

कलित मोतिन मञ्जु प्रकाशिका
  ललित बेसर बेस सुनासिका ।
छबि सुहाति असीम प्रकासिनी,
  मिलति कीर बधू सँग हासिनी !

( ६ )

अलक की लट कान समीप है,
  चहति नागिनि सेवन सीप है ।
मदन चाप कि धौं अभिराम है,
  शिथिल जासु लसै गुन‡ श्याम है ॥

( ७ )

सुकवि ग्रीव बखानत कम्बुसी,
  ध्वनि सुरध्वनि के बर-अम्बुसी ।
सदुपमा पर एक अनूप है
  पिक सुहात कपोत-स्वरूप है ॥

( ८ )

लसति नील सुहावन कञ्चुकी,
  अरुणिमा तेहि पै पट मञ्जुकी ।
शिखर-आश्रित श्री रसराज§ पै,
  रँग जमाय रह्यो अनुराग है ॥

( ९ )

चहति बोलन सी रसलीन है,
  बजन चाहतसी बरबीन है ।
हँसन चाहति सी नव-कामिनी,
  लसन चाहति सी छिति दामिनी ॥

( १० )

निरखि चित्र हियो हरसात है,
  लगति सी रस की बरसात है ।
प्रबलता छवि की सरसात है,
  कुशलता "रवि"‖ की दरसात है ॥

( ११ )

¶बस करो बस पूरन है कथा,
  निरखि के छवि वर्णन की प्रथा ।
उठत प्रश्न यही प्रति बार है
  कह मनोहरता बिच सार है ॥

* स्त्री-जाति-विशेष   † अनुराग का रङ्ग लाल होता है ।

‡ डोरी   § रसराज (शृङ्गार) का रङ्ग श्याम है ।

‖ रविवर्मा चित्रकार ।

¶ यद्यपि यह शृङ्गार की कविता है तथापि कवि वेदान्ती है । इसी लिए कविता का आरम्भ और अन्त इस प्रकार लिखा गया ।

( १२ )

विषय के विष मे मनमोहनी
अमृत सी छवि है अति सोहनी।
अनृत आकृति प्राकृत दम्भ है
प्रकृति में प्रियता सब ब्रह्म है*

---

## ८—कादम्बरी।

( १ )

करिके सुर तालन को बिसतार
सितार प्रवीण बजावती है।
परि पूरन राग हू के मन में
अनुराग अपार जगावती है॥
गुनआगरी भाग सोहाग भरी
नव नागरी चाव सो गावती है।
छविधाम है नाम है "कादम्बरी"
धुनि कादम्बरी† की लजावती है॥

( २ )

मन खैंचति तार के खैंचत ही,
उमहै जब "जोड़" बजावन में।
उमगैं मधुरे सुर की लहरी,
गहरी "गमकै" ‡ दरसावन में॥
चपलाई हरै थिरता चित की,
अंगुरी "मिजराब" चलावन में।
मन-भावन गावन के मिस बाल
प्रवीन है चित्त चुरावन में॥

( ३ )

एमन सोरठ देस हमीर
बहार बिहाग मलार रसीली।
शंकरा सोहनी भैरव भैरवी
गूजरी रामकली सरसीली॥
गौर बिलावल जोगिया सारँग
पूरिया आसावरी चटकीली।
बोल समै के बजायो करै
तिय गायो करै मिलि तान सुरीली॥

( ४ )

दृग सौ हैं सितार के मोहैं मनै,
गति ध्यान मे सोहैं चढ़ी भ्रुव बेली।
सुर भेद भरे परदे तिन मे,
भई जाति सी लीन प्रवीन नवेली॥
कर बाम की बाम की चञ्चल आँगुरीं
देखि फबै उपमा ये अकेली।
नट-राज मनोज की नाचै मनो,
इकतार पै पूतरियाँ अलवेली॥

( ५ )

लखि कोमल आँगुरी नागरी की,
अति आगरी तार§ बजावन में।
अनुमान रचै मन पूरन को,
उपमान की खोज लगावन मेंः—
दल मञ्जु अशोक को कम्प समेत,
वृथा कवि लागे बतावन में।
सुर ताल थली यह कञ्जकली,
भली नाचती राग के भावन में॥

( ६ )

उर प्रेम की जोति जगाय रही,
मति को बिन यास घुमाय रही॥
रस की बरसात लगाय रही,
हिय पाहन से पिघलाय रही॥
हरियाले बनाय कै रूखे हिये,
उतसाह की पंगै झुलाय रही।

* विषय विष है। उसमें अमृत सम सौन्दर्य्य है। उसमें "आकार" जो है वह मिथ्या प्रकृति का दम्भ है और प्रकृति में जितनी प्रियता है वह ब्रह्म है।

† कोकिला।

‡ सितार में "जोड़" का बजाना श्रेष्ठ है, और उस में "मीड़" (तार खींच कर स्वर चढाना) और "गमक" (गहराई से शब्द निकालना) प्रधान वस्तु हैं—"मिजराब" की चपलता उसमें शोभा देती है।

§ दाहिने हाथकी प्रदेशिनी से अभिप्राय है।



केरल की तारा।

इकराग अलापि कै भाव भरी,
खटराग * प्रभाव दिखाय रही ॥

---

## ६—केरल की तारा।

( १ )

वीर-मण्डल की महाविद्या महामाया नहीं।
बालि की वनिता न समझो जीव की जाया नहीं॥
सत्यसागर सूरमा हरिचन्द की रानी नहीं।
आपने यह पाँचवीं तारा अभी जानी नहीं॥

( २ )

चित्र-विद्या-विज्ञ रविवर्म्मा दिखाते हैं इसे।
भाव ज्यों के त्यों दिखाने और आते हैं किसे?
चित्र से बढ़कर चितेरे की बड़ाई कीजिये।
जी लगाकर जी लगाने की कथा सुन लीजिये॥

( ३ )

कल इसीके योग से थिर भाव मेरा खो गया।
सो गया तो स्वप्न में संकल्प पूरा हो गया॥
ध्यान में भरपूर केरल देश की छबि छा गई।
मुसकराती सामने प्रत्यक्ष तारा आगई॥

( ४ )

माँग देकर पाटियों में पीठ पर चोटी पड़ी।
फाड़ मुँह फैलाय फन छबिराशि पै नागिन अड़ी॥
भाल पर चाहक चकोरों का बड़ा अनुराग था।
क्यों न होता चन्द्र का वह ठीक आधा भाग था॥

( ५ )

भ्रू नहीं मैंने कहा रसराज के हथियार हैं।
काम के कमठा किये तारुण्य की तलवार हैं॥
मीन, खञ्जन मृग मरें दृग देह-द्रुम के फूल हैं।
इन्दु, मङ्गल, मन्द से तीनों गुणों के मूल हैं॥

( ६ )

फूल अंबर के न कानों को बता कर चुप रहा।
रूप-सागर के सजीले सीप हैं यो भी कहा॥
गोल गुदकारे कपोलों को कड़ी उपमा न दी।
पुलपुली मौमन पड़ी फूली कचौड़ी जान ली॥

( ७ )

नाक थी किंवा कुटी छबि की छपाकर पै नई।
लौर लटकन की कि बिजली लौ दिया की बन गई॥
खिलखिला कर मुख बतीसी को कहा बेलाग यों।
कुन्द की कलियाँ कमल के कोश में छिपती हैं क्यों?

( ८ )

सब जड़ाऊ भूषणों के सोहने शृङ्गार थे।
कण्ठ में केवल मनोहर मोतियों के हार थे॥
पीन कुश, उकसे कसे, कोमल कड़े, छोटे बड़े।
गुप्त सारे अङ्ग साड़ी की सजावट में पड़े॥

( ९ )

देख उसको मोदमद से मत्त मैं भी बन गया।
कुछ दिनों तक साथ रहने का इरादा ठन गया॥
था समय बरसात, चारों ओर घन घिरने लगे।
बे-धड़क वह और मैं उस देश में फिरने लगे॥

( १० )

देख वेपुर और कालीकट नगर सिरमौर को।
चल पड़े रत्नागिरी, टेलीचरी, मॅंगलौर को॥
गैल में नाले, नदी, नद, स्वच्छ-जल-पूरित पड़े।
सैकड़ों एला, सुपारी नारियल, केला खड़े॥

( ११ )

फूल नाना भाँति के जंगल, पहाड़ों में खिले।
सिंह, भालू भेड़िये, चीते, हिरन, हाथी मिले॥
चारु चन्दन के लिए ऊँचे मलयगिरि पर चढ़े।
सूँघते सौरभ सने श्रीखण्ड को आगे बढ़े॥

( १२ )

कालडी के पास प्यारी पूर्णा भी आ गई।
सिद्ध शङ्कर देव की जन्मस्थली मन भा गई॥
न्हा चुके, सुमिरन चुके, सन्ध्या हवन भी कर लिया।
बाग़ में डेरा दिया, भोजन किया, पानी पिया॥

* छै राग के प्रभाव क्रम से —दीपक से दीपक का जल उठना, "भैरव" से कोल्हू का घूमना, "मेघ" से वर्षा का होना, "माल कोश" से पत्थर का पिघलना, "श्री" से सूखे वृक्ष का हरा होना, "हिंडोल" से झूले की पेंग का बढ़ना, इन्हीं छ प्रभावों का आख्यान इस सवैये में है।

( १३ )

मैं बिछौने पर पड़ा वह सुन्दरी गाने लगी।
सोहनी बरसात मे पीयूष बरसाने लगी॥
वार चकवा रो रहा, चकई नदी के पार थी।
वेदना उनको विरह की हाय विष की धार थी॥

( १४ )

बस यहाँ तक देखतेही आँख मेरी खुल गई।
स्वप्न के सुख की अलौकिक मधुर मिश्री घुल गई॥
यह उसी का चित्र है तावीज मे मढ लीजिये।
मन लगा कर फिर दुबारा पद्य यह पढ़ लीजिये॥

---

## १०—वसन्तसेना।

( १ )

लैला के शुतर का न जरस बजेगा यहाँ
खाक न उडेगी कहीं मजनूँ के बन की।
शीरीं के कलाम की भी तलख़ी चखोगे नहीं
टाँकी न पहाड पै चलेगी कोहकन की॥
कामकन्दला के नाच गाने की लताफ़त में
गाँठ न खुलेगी माधवानल के मन की।
कञ्चन की चाह छोड कञ्चनी अकिञ्चन को
शङ्कर दिखावेगी लगावट लगन की॥

( २ )

विक्रम के आगे की है नायिका नवेली यह
शूद्रक रचित मृच्छकटिक में पाई है।
स्वामिनि मदनिका की, भामिनि रदनिका की,
धूता की सवति, वारवनिता की जाई है॥

१—कोहकन=फ़रहाद।
२—शूद्रक=मृच्छकटिक नाटक का रचयिता।
मदनिका=वसन्तसेना की दासी।
रदनिका=चारुदत्त की दासी।
धूता=चारुदत्त की स्त्री।
रोहसेन=चारुदत्त का पुत्र।
वसन्तसेना=एक वारवनिता की बेटी जिसका यह चित्र है।
चारुदत्त=वसन्तसेना का एक अकिञ्चन मित्र।

मौसी रोहसेन की है, नाम है "वसन्त-सेना",
चारुदत्तजी की प्राणवल्लभा कहाई है।
राजा रविवर्मा की चित्र-चातुरी ने आज
शङ्कर "सरस्वती" के अङ्क मे दिखाई है॥

( ३ )

चित्र की विचित्रता में अङ्गो की गठन पर
रसिक सुजान भरपूर ध्यान दीजिये।
कोमल-कलेवरा की सुन्दर सजावट के
रङ्ग ढङ्ग देखिये, प्रसङ्गरस पीजिये॥
जैसी सुन पाई ठीक वैसीही बनाई उस
चतुर चितेरे की बडाई बडी कीजिये।
मिसरी के साथ बाँस फाँस कासा मेल मान
शङ्कर की भद्दी कविता भी पढ़ लीजिये॥

( ४ )

पूरण सुधाकर के अङ्क मे कलङ्क बसे
खारी जलकोश रतनाकर ने पाया है।
भानु भगवान काले धब्बो से धब्बीले रहे
स्वामी श्यामसुन्दर के सङ्ग योग-माया है॥
सुन्दरी वसन्तसेना बाई का विशुद्ध मन
पालक महीपति के साले का सताया है।
शङ्कर की रचना मे ठीक इसी भाँति हाय
भद्दापन दूषण बनारसी समाया है॥

( ५ )

ज्वारी को छुड़ाय कर चोर का बसाया घर,
दूत की दया से मणिमाला मिली यार की।
काम की सताई, आई पीतम ने पाई बाई,
नथुनी उतारली बढ़ाई वेलि प्यार की॥
प्रेमरस पीती रही, मार सही जीती रही,
शङ्कर जलादी जड कोटपाल जार की।
राजबल पाया, प्राण प्यारे को बचाया, अब
दुलही कहाती है पवित्र परिवार की॥

४—पालक=उज्जैन का राजा, उसका साला।
संस्थानक=शहर का कोतवाल, वसन्तसेना का महावैरी
५—ज्वारी=संवाहक नामक एक ब्राह्मणपुत्र जो बौद्ध-विरक्त बन गया था। वसन्तसेना ने उसको अपना स्वर्ण-कङ्कण दे कर अन्य ज्वारियों के बन्धन से छुड़ाया था।

( ६ )

सोहनी सुरङ्ग सारी कुरती किनारीदार
कामदार कञ्चुकी करेब की कसी रहै।
ठौर ठौर पूषण* से भूषण प्रकाश करें
ओज की उमङ्ग अङ्ग अङ्ग में लसी रहै॥
बातें अनुरागभरी शील सभ्यता के साथ
शङ्कर धनी की धज ध्यान में धसी रहै।
चित्र सी विचित्र महासुन्दरी वसन्तसेना
मित्र चारुदत्त के चरित्र में बसी रहै॥

( ७ )

सीस पै पसार फन लङ्क लौं लपेटा मार
लट की लटक दिखलाती बलखाती थी।
माँग मुख फाड, काढ़ मोतियों के दाने दाँत
झूमर की जीभें लप लप लपकाती थी॥
शङ्कर शिरोमणि की ज्योति का उजाला पाय
रोषभरी प्यारे रूप-कोष को रखाती थी।
बात वेणी नागिन की तब की कही है जब
नाचती वसन्तसेना बाई गीत गाती थी॥

चोर=शार्विलक नाम का एक कामी पुरुष जिसने चारुदत्त का घर फोड कर वसन्तसेना की धरोहर ज़ेवर चुराये और मदनिका को लाकर दिये। वसन्तसेना ने वे ज़ेवर और अपनी दासी मदनिका उसी चोर को दे दी।

दूत=मैत्रेय, चारुदत्त का मित्र जो धूता की माला लेकर गहने चोरी जाने पर वसन्तसेना के पास आया था।

मार सही जीती रही=वसन्तसेना चारुदत्त के पास बाग़ में जाते समय सवारी के बदल जाने पर संस्थानक के जाल में पड़ी। उसने इसको फाँसी देकर पत्तों के ढेर में गाड़ दिया और चारुदत्त को इसका हत्यारा सिद्ध करके न्यायालय से शूली का दण्ड दिलाया। वसन्तसेना पत्तों के ढेर में कुलबुलाई। उसे बौद्ध भिक्षु ने निकाला। पालक का राज्य छीन कर आर्यक राजा बना। इस नये राजा ने चारुदत्त को बचाय और वसन्तसेना को वधू की पदवी प्रदान की। धूता सती होने से बची। रोहसेन अनाथ न हुआ।

* पूषण=सूर्य।

( ८ )

कज्जल के कूट पर दीप-शिखा सोती है कि
श्याम घनमण्डल में दामिनी की धारा है।
यामिनी के अङ्क मे कलाधर की कोर है कि
राहु के कबन्ध पै कराल केतु तारा है॥
शङ्कर कसौटी पर कञ्चन की लीक है कि
तेज ने तिमिर के हिये में तीर मारा है।
काली पाटियों के बीच मोहनी की माँग है कि
ढाल पर खाँडा कामदेव का दुधारा है॥

( ९ )

उन्नत उरोज यदि युगल उमेश हैं तो
काम ने भी देखो दो कमानें ताक तानी हैं।
शङ्कर कि भारती के भावने भवन पर
मोह महाराज की पताका फहरानी है॥
किंवा लटनागिनी की साँवली सँपेलियों ने
आधे विधु-विम्ब पै विलास विधि ठानी है।
काटती हैं कामियों को काटती रहैंगी कहो
भृकुटी कटारियों का कैसा कड़ा पानी है॥

( १० )

तेज न रहेगा तेजधारियों का नाम को भी,
मङ्गल मयङ्क मन्द मन्द पड़ जायँगे।
मीन विन मारे मर जायँगे सरोवर में
डूब डूब शङ्कर सरोज सड़ जायगे॥
चौंक चौंक चारो ओर चौकड़ी भरेंगे मृग,
खञ्जन खिलाडियों के पङ्ख झड जायँगे।
बोलो इन अँखियों की होड़ करने को अब
कौन से अडीले उपमान अड जायँगे॥ ॥

( ११ )

आँख से न आँख लड जाय इसी कारण से
भिन्नता की भीत करतार ने लगाई है।
नाक में निवास करने को कुटी शङ्कर कि
छवि ने छपाकर की छाती पै छवाई है॥
कौन मान लेगा कीर-तुण्ड की कठोरता में
कोमलता तिल के प्रसून की समाई है।
सैकड़ो नकीले कवि खोज खोज हारे पर
ऐसी नासिका की और उपमा न पाई है॥

( १२ )

अम्बर में एक यहाँ दौज के सुधाकर दो
छोड़ें वसुधा पै सुधा मन्द-मुसकान की।
फूले कोकनद में कुमुदनी के फूल खिलें
देखिये विचित्र दया भानु भगवान की॥
कोमल प्रवाल के से पल्लवो पै लाखा लाल
लाखे पर लालिमा विलास करे पान की।
आज इन ओठों का सुरंगी रस पान कर
कविता रसीली भई शङ्कर सुजान की॥

( १३ )

आनन-कलानिधि में दूनी कला देख देख
चाहक चकोरो के उदास उर ऊलेंगे।
दाडिम के दानो फल दाने उगलेंगे नहीं
कुन्दकलियों के झुण्ड झाड़ में न झूलेंगे॥
सीप के सपूतों पर शोभा न करेगी प्यार
शङ्कर चमेली और मोतिया न फूलेंगे।
दाँतों की बतीसी मणि-मालिका हँसी की इस
दामिनी की दूती को न देवता भी भूलेंगे॥

( १४ )

शंख जो बराबरी की घोषणा सुनावेगा तो
नार कट जायगी उदर फट जायगा।
शङ्कर कली की छबि कदली दिखावेगा तो
ऐंठ अट जायगी छवाउ छट जायगा॥
कानन में कोकिल सुराग सरसावेगा तो
होड हट जायगी घमड घट जायगा।
कोई कण्ठ-कठी इस कण्ठ की बँधावेगा तो
हुंडी पट जायगी प्रसाद बट जायगा॥

( १५ )

उन्नति के मूल ऊँचे उर अवनीतल पै
मन्दिर मनोहर मनोज के यमल हैं।
मेल के मनोरथ मथेंगे प्रेमसागर को
साधन उतङ्ग युग मन्दर अचल हैं॥
उद्धत उमङ्ग भरे यौवन खिलाडी के ये
शङ्कर से गोल कडे कन्दुक युगल हैं।
तीनों मत रूखे रसहीन हैं उरोज पीन
सुन्दर शरीर सुरपादप के फल हैं॥

( १६ )

कञ्ज से चरण कर, कदली से जंघ देखो,
क्षुद्र तण्डुला से दो उरोज गोल गोल हैं।
कृष्णकुण्डला से कान, अङ्गवल्लभा से दृग,
किंशुक सी नासिका, गुलाब से कपोल हैं॥
चञ्चरीक पटली से केश, नई कोंपल से
अधर अरुण, कलकण्ठ के से बोल हैं।
शङ्कर वसन्तसेना बाई में वसन्त के से
सोहने सुलक्षण अनेक अनमोल हैं॥

( १७ )

कंचनी की रीति से रही न छैल छोकड़ों में
कुल-दुलहिन के से काम करती रही।
धीरता उदारता सुशीलता प्रवीणता से
शङ्कर प्रसिद्ध निज नाम करती रही॥
अन्त लो भलाई को न भूली किसी भाँति से भी
प्रेम का प्रचार आठों याम करती रही।
चित्र के समान कर मस्तक को लाय लाय
ज्ञानी गुरु लोगों को प्रणाम करती रही॥

( १८ )

बाग़ की बहार देखी मौसिमे बहार में तो
दिले अन्दलीप को रिझाया गुलेतर से।
हाय चकराते रहे आसमाँ के चक्कर में
तो भी लौ लगी ही रही माह की महर से॥
आतिशे मुसीबत ने दूर की कुदूरत को
बात की न बात मिली लज़्ज़ते शकर से।
शङ्कर नतीजा इस हाल का यही है बस
सच्ची आशिक़ी में नफ़ा होता है ज़रर से॥

१६—क्षुद्रतण्डुला=पोस्त का फल, अफीम की बोंडी।
कृष्णकुण्डला=पसेंदू का फूल, कृष्णकान्ता।
अङ्गवल्लभा=गुले नरगिस, देवदारिका।

## ११—परशुराम ।

( १ )

शिखा सूत्र के संगशस्त्र का मेल विलोको ;
    निपट विप्र घर-बढ़े न जानो सरल द्विजो को ।
पूर्व-काल में वेद-मंत्र थे कड़खे रन के ,
    सेना-नायक, शूर, कुशल द्विज, ऋषि, मुनि वन के ॥

( २ )

लख सरोष स्वाधीन भाव इस मुख-मडल का
    मिलता है सब पता पूर्व-पुरुषो के बल का ।
क्षात्र तेज यो ब्रह्म-तेज में यहाँ भरा है
    शांत-वीर-रस-कटक सग मानो उतरा है ॥

( ३ )

भौहें तनीं, कटाक्ष, मगन मन, निश्चय जो का
    हम सब को सवाद सुनाते है यह नीका—
गहो आप बल, बुद्धि, तेज, साहस, प्रभुताई
    चल जीवन के लिए करो मत आश पराई ॥

( ४ )

पर सहसा यह रूप देख होता है विस्मय—
    आर्य-लोग क्या एक समय थे ऐसे निर्भय !
क्या हम सब जो आज बने हैं निर्बल कामी
    रहते थे स्वाधीन समर में होकर नामी ॥

( ५ )

जो हो, यह सब परशुराम ने कर दिखलाया ;
    क्षत्रिय-कुल का रक्त नदी सा शुद्ध बहाया ।
नहीं एक दो बार, बार इक्कीस समर मे
    सोये क्षत्रिय-वीर करोड़ो काल-उदर में ॥

( ६ )

अहंकार उद्दड निरकुश क्षत्रिय-गन का
    लगा न मुनि को भला, सोच मे माथा ठनका ।
विवश रक्ष्य ने युद्ध रक्षको से तब ठाना
    भाला से भिड भूल गया भाला निज बाना ॥

( ७ )

विद्या-मय बल देख निरा बल पल मे भागा
    समर-सेज पर सोय हाय ! फिर कभी न जागा ।
तो भी मुनि ने राज्य-लोभ में तजी न वेदी
    बार बार जय-भूमि सहज विप्रो को दे दी ॥

( ८ )

लिये एक मे शस्त्र, अन्य कर में कुश पानी,
    जीत-दान के लिए रहे तत्पर मुनि ज्ञानी ।
पृथ्वी कंपित हुई नाम से परशुराम के ,
    सहमे सदा सभीत निवासी देव-धाम के ॥

( ९ )

भली नहीं है किसी काल में विप्र-अवज्ञा ,
    द्विज मृदु हो झट कुपित करें हैं शाप-प्रतिज्ञा ।
जो होते ये कहीं सबल सब, तो पल-भर मे
    लाते सब संसार खींच कर एक नगर मे ॥

( १० )

हुआ समय का फेर हाय ! पलटी परिपाटी ,
    जो थे कभी सुमेरु आज हैं केवल माटी ।
क्षत्रिय-कुल निर्वंश सहज में करनेहारे
    परशुराम मुनि निरे राम बालक से हारे ॥

---

## १२—अहल्या ।

( १ )

काम-कामिनी सी छवि-राशी,
उपवन की लहलही लता-सी ।
गौतम-मुनि की यह नारी है;
पति को प्राणों से प्यारी है ॥

( २ )

रहती है यह मुनि-संग वन में;
प्रेम गर्व की माती मन में ।
पति की प्रबल प्रीति के बल पर;
कानन इसे नगर है सुन्दर ॥

( ३ )

मुनि की दिव्य [illegible] ;
नहीं चाहतीं [illegible]-माया ।
पर्ण-कुटी [illegible] है,
[illegible] है ;

(४)
पति भी निरत भजन-पूजन में;
प्रेम-बँधे रहते हैं वन मे।
पत्नी पुष्प बीन, रच धूनी;
सहज भक्ति पाती है दूनी॥
(५)
आज अहल्या बहुत थकी है;
फूल बीनने मे भटकी है!
घबराई-सी श्रम के मारे;
शिथिल खड़ी है विटप-सहारे॥
(६)
तोभी दृष्टि-भाव आतुर है;
अधरों पर मुसक्यान मधुर है।
कंचन सा उज्वल मुख-मण्डल;
करता है सहसा चित चंचल॥
(७)
काले केश घने सटकारे,
लहराते हैं कुण्डल मारे।
गोरी गोल गढ़ी मृदु बाँहें,
शोभा की मानो सीमा हैं॥
(८)
फूलदान अटका अँगुली से,
आकर्षित मानो बिजली से।
उठ से रहे फूल हैं ऊपर,
पङ्कज-तुल्य चूमने को कर॥
(९)
कटि है कसी कदाचित उर में;
खो न जाय यह कहीं डगर में!
पाओं की सुकमार अँगुलियाँ,
शोभित मानो चपक-कलियाँ॥
(१०)
यदपि अहल्या यहाँ खड़ी है,
मनसा मुनि के पास अड़ी है।
इस दुचिताई की छवि बाँकी,
जाती नहीं सहज ही आँकी॥

---

## १३—व्यास-स्तवन।

(१)
शुभ सौम्य मूर्त्ति तेजोनिधान
हो अन्य भानु ज्यों भासमान।
ध्यानस्थ स्वस्थ सद्धर्म्म-धाम
भगवान व्यास! तुमको प्रणाम॥
(२)
तव गुण अनन्त भू-कण समान
है कौन उन्हें सकता बखान?
उपकार याद कर तव अपार
होते बुध विस्मित बार बार॥
(३)
कर ज्ञान-भानु तुम ने प्रकाश
अज्ञान-निशा कर दी विनाश।
कर तव शिक्षामृत-पान शुद्ध
संसार हुआ शिक्षित प्रबुद्ध॥
(४)
क्या राजनीति, सामान्य नीति,
क्या धर्म्म-कर्म्म, क्या प्रीति-रीति।
क्या भक्ति-भाव, व्यवहार वेश,
उपदेश दिये तुमने अशेष॥
(५)
होता है जग में जो सदैव,
जो हुआ और होगा तथैव।
कथनानुसार तव सो समग्र
होता है, होगा, हुआ अग्र॥
(६)
जो दिखलाया तुमने समक्ष
हैं वही देख सकते सुदक्ष।
तुमने न किया हो जिसे व्यक्त
सब उसे बताने में अशक्त॥
(७)
है विषय अहो! ऐसा न एक
जिसका न किया तुमने विवेक।
रचनायें कवियों की प्रशस्त
उच्छिष्ट तुम्हारी हैं समस्त॥

रत्नावली ।

रत्नावली जलधि में यह दर्शनीय, किंवा हुई प्रकट चन्द्रकला द्वितीय।
या हो गई प्रकट है बडवाग्नि-ज्वाला है कान्तिमान अथवा यह कञ्जमाला ॥

(८)

कर वेदों का तुमने विभाग
रक्षा की उनकी सानुराग।
वेदान्त सूत्र रच कर अमोल
हैं दिये हृदय के नेत्र खोल॥

(९)

सुन कर जिनका शुभ सदुपदेश
रह जाता कुछ सुनना न शेष।
शुचि, शुद्ध, सनातन-धर्म्म-प्राण
सो रचे तुम्हीं ने हैं पुराण॥

(१०)

बुधजन-समाज जिसका तमाम
है रक्खे पञ्चम वेद नाम।
इतिहास महाभारत पुनीत
सो रचा तुम्हीं ने है प्रतीत॥

(११)

हो जाता धर्म्म सहाय-हीन
सब पूर्व-कीर्त्ति होती विलीन।
स्वच्छन्द विचरते पाप, ताप,
लेते न जन्म यदि ईश! आप॥

(१२)

करता शुभ कर्म्म प्रचार कौन?
सिखलाता वेदाचार कौन?
हरता तुम बिन त्रयताप कौन?
दिखलाता पूर्व-प्रताप कौन?

(१३)

करने को तव सन्मार्ग लुप्त
हैं हुए यत्न बहु प्रकट, गुप्त।
वे हुए किन्तु निष्फल, निषिद्ध,
हो क्यों कर सत्य असत्य सिद्ध!

(१४)

हिन्दुत्व हिन्दुओं का प्रधान
है अब तक भी जो विद्यमान।
हे जगद्वन्द्य, करुणा-निधान!
हो तुम्हीं एक इसके निदान॥

(१५)

जो आर्य्य-जाति का कीर्त्ति-गान
पाता है जग में मुख्य मान।
है उसका जो गौरव महान
सो किया आप ही ने प्रदान॥

(१६)

वर्णन करते भी बार बार
रहते हैं तव गुण-गण अपार।
घन चाहे जितना भरें नीर
घटता न किन्तु सागर गभीर॥

(१७)

है हमें तुम्हारा अमित गर्व
है तव कृतज्ञ संसार सर्व॥
है भारत धन्य अवश्यमेव
तुम हुए जहां अवतीर्ण देव!

---

## १४—रत्नावली।

(१)

देखो है प्रतिमा सजीव छवि की रत्नावली सुन्दरी,
राजा विक्रमबाहु की प्रिय सुता वामोरु बिम्बाधरी।
दैवात् आज समुद्र में पतित हो है क्लेश पाती यह,
मानो देव-वधू गिरी गगन से यों है सुहाती यह॥

(२)

काले और विशाल बाल बिखरे कल्लोल के कारण,
फूलों के सम फेन-जाल जिनमें शोभा किये धारण।
माला और दुकूल भी ललित हैं होके जलान्दोलित;
आपद्ग्रस्त तथापि मञ्जुल-मुखी रत्नावली शोभित।

(३)

आभा-पूर्ण मनोज्ञ नील मणि से हैं दिव्य दोनों चक्षु;
हीरों के सम दाडिमी दशन हैं, मुक्ताफलों से नम्र।
त्योंही विद्रुम-पद्मराग सम हैं बिम्बोष्ठ-शोभा भली;
श्रीसंयुक्त सुवर्ण-गात्रि यह यों है ठीक रत्नावली॥

( ४ )

श्री-श्रीहर्ष नरेश की विदित है रत्नावली नाटिका;
है साहित्य-विभाग में वह यथा शृङ्गार की वाटिका
है सारा इसका चरित्र उसमें आनन्ददायी महा;
देते हैं हम सार आज उसका थोड़ा इसीसे यहाँ॥

( ५ )

"होवेगा इसका विवाह जिससे कल्याणकारी सदा,
होगा निश्चय सार्वभौम नृप सो पाके सभी सम्पदा"
ऐसा सिद्ध वर-प्रदान सुन के रत्नावली के लिए,
कौशाम्बी-पति वत्सराज उसके लाभाभिलाषी हुए॥

( ६ )

व्याही विक्रमबाहु की पर उन्हें थी भानजी पूर्व ही;
पुत्री उज्जयिनी-महीप वर की थी मुख्य रानी वही।
अस्तु श्रीयुत-वत्सराज नृप के बाभ्रव्य-दूत-प्रति
की आपत्ति यही प्रकाश उसने जो योग्य भी थी अति॥

( ७ )

देखा स्वप्रभु-कार्य्य को बिगड़ते बाभ्रव्य ने यों जब
स्वामी के हित-साधनार्थ उसने यों वञ्चना की तब।
"रानी तो सहसाग्नि में जल गईं दुर्दैव के कारण;
स्वामी को इस शोक से न मिलती है शान्ति एक क्षण"॥

( ८ )

राजा ने सुन दूत के वचन ये जी में दुखी होकर—
सोचा यों मन में विचार करके सम्पूर्ण पूर्वापर।
"दूंगा मैं अब वत्सराज-कर में रत्नावली जो नहीं,
तो सम्बन्ध समस्त अस्त उनसे होगा हमारा यहीं"॥

( ९ )

मन्त्री श्रीवसुभूति-सङ्ग उसने रत्नावली को तब,
भेजा सिंहलदेश से कर विदा दे योग्य शिक्षा सब।
थे किन्तु द्रुत सिन्धु पार करते जाते चले ये जब,
नौका टूट गई तदीय सहसा, भावी रुकी है कब?॥

( १० )

ऐसी घोर विपत्ति के समय में रत्नावली ने वहाँ
पाके एक सुकाष्ठ-खण्ड उससे पाया सहारा महा।
व्यापारी फिर एक सिन्धु-पथ से जो आ रहा था घर,
ले आया निज देश को वह इसे बैठाल नौका पर॥

( ११ )

कौशाम्बी-पति-योग्य जान इसको मोद-प्रदा सर्वथा,
सौंपी भूपति-मन्त्रि को वणिक ने सारी सुनाके कथा।
मन्त्री ने रनिवास में तब इसे दी सुन्दरी जान के,
रानी ने नृप से बचा कर वहाँ रक्खी सखी मान के॥

( १२ )

कन्दर्पोत्सव में परन्तु इस ने भूपाल का दर्शन
पाया ज्यों दिवसान्त में कुमुदिनी चन्द्रांशु-सस्पर्शन।
साक्षात् काम-महीप जान उनकी की वन्दना प्रीति से,
रङ्गों से फिर एक चित्र उनका खींचा यथारीति से॥

( १३ )

राजा का वह चित्र देख इसकी प्यारी सखी ने वहाँ
इसको भी लिख यों कहा 'रति बिना क्या काम देखा कहाँ!
है वत्सेश्वर कामदेव यदि तो रत्नावली है रति"—
आली की सुन बात यों वह हुई अत्यन्त लज्जावती॥

( १४ )

बातें यों घन-कुञ्ज में कर रहीं थीं प्रेम से ये जहाँ
बैठी पादप पै उन्हें सुन रही थी एक मैना वहाँ।
वैसे ही कहते उसे निज कथा ज्योंही इन्होंने सुना
दौड़ीं तत्क्षणही उसे पकड़ने, वे पा सकीं किन्तु ना॥

( १५ )

कौशाम्बी-पति भी उसी समय थे उद्यान में डोलते;
आलोकी वह सारिका नृपति ने आश्चर्य्य से बोलते।
हो उत्कण्ठित मार्ग में उलझते नाना लता-पुञ्ज में
पीछेही उसके नृपाल चल के आये उसी कुञ्ज में॥

( १६ )

पाई चित्रपटी वहाँ नृपति ने रत्नावली की वही;
शोभा देख तदीय मोहित हुए न प्रेम-सीमा रही।
हो तल्लीन विलोक चित्र फिर जो बातें उन्होने कहीं,
श्रीहर्ष-प्रतिभा-प्रकाशन बिना वे हैं दिखाती नहीं।

( १७ )

"लीलापूर्वक बार बार जिसने की नम्र पक्षा, तथा,
मेरा जो अति पक्षपात करती मोदप्रदा सर्वथा।
मेरे मानस में प्रविष्ट अतिही जो राजहंसी सम,
है ऐसी यह कौन चित्र-लिखिता बाला अनन्योपम॥

( १८ )

"ब्रह्माने मुख चन्द्र-तुल्य इसका होगा बनाया जब ;
यों चातुर्य्य-कला-कलाप उसने होगा दिखाया जब।
होने से निज आसनाम्बुज अहो! तत्काल विन्मीलित,
अच्छी भाँति वहाँ कभी रह सका होगा न धाता स्थित"॥

( १९ )

लेने चित्रपटी वहीं थकित सी मातङ्ग की चाल मे,
बाला सागरिका सखी-युत वहाँ आई उसी काल में।
लज्जा-नम्रमुखी हुई पर वहाँ सो देख के भूप को,
मानी भूपति ने तथा सफलता आलोक तद्रूप को॥

( २० )

"हैं इन्दीवर नेत्र, चन्द्र मुख है, हैं कञ्ज दोनों कर,
रम्भोरु! मृणाल बाहु तव हैं, हैं दिव्य-द्राक्षाधर।
सो आलिङ्गन हर्ष-दायिनि मुझे निःशङ्क तू देकर,
अङ्गों को सुख दे अनङ्ग-कृत त्यों सन्ताप मेरा हर"॥

( २१ )

राजा के सुन वैन यों वह हुई रोमाञ्चिता, स्तम्भिता,
लज्जा-सङ्कुचिता प्रकम्पित तथा स्वेदाम्बु-संशोभिता।
रानी मुख्य वहाँ उसी समय में भूपाल की आगई ;
लीला अद्भुत देखते वह वहाँ सुक्रोध में छागई॥

( २२ )

रानी को सहसा विलोक नृप को सङ्कोच भारी हुआ,
लज्जा-युक्त हुए यथा कमल को चन्द्र-प्रभा ने छुआ।
रानी ने अति रुष्ट होकर पुनः रत्नावली सत्वर
रक्खी यत्न-समेत गुप्त गृह में तत्काल बन्दी कर॥

( २३ )

आया एक महेन्द्रजालिक पुनः उज्जैन-वासी वहाँ,
विद्या देख तदीय भूप-वर ने आश्चर्य्य माना महा।
नाना दृश्य दिखा विचित्र उसने की एक लीला यह
मानों वह्नि समस्त राजगृह मे हो छागई दुःसह॥

( २४ )

ऐसा भीषण दृश्य देख महिषी अत्यन्त भीता हुई
बन्दी सागरिका हितार्थ नृप से प्रार्थी विनीता हुई।
राजा ने सुन के प्रिया-वचन यों निःशङ्क हो तत्क्षण
जा के शीघ्र किया स्वयं अनल से रत्नावली-रक्षण॥

( २५ )

मन्त्री सिंहल का उसी समयमें चिन्तार्त्त दुःखी महा,
आया दूत समेत नीरनिधि से उद्धार पाके वहाँ॥
भेदोद्घाटन हो गया तब सखे! रत्नावली का सभी ;
क्या से क्या कब हो, चरित्र हरिके जाने न जाते कभी॥

---

## १५—उत्तरा से अभिमन्यु की बिदा।

( १ )

हे विज्ञ दर्शक! देखिए, है दृश्य क्या अद्भुत अहा!
यह वीर-करुणा-सम्मिलन कैसा विलक्षण हो रहा।
ये पार्थ-सुत अभिमन्यु हैं वे उत्तरा उनकी प्रिया,
ये माँगते हैं रण-बिदा, वे कर रही वर्जन-क्रिया॥

( २ )

यह देख कर इस चित्र में कैसा मनोहर भाव है,
किस चित्त पर पडता नहीं इसका विचित्र प्रभाव है ?
फिर मित्रवर! संक्षेप में इसकी कथा सुन लीजिए,
निज शौर्य, साहस, धैर्य, दृढता याद उससे कीजिए॥

( ३ )

रणधीर द्रोणाचार्य कृत दुर्भेद्य चक्रव्यूह को,
शस्त्रास्त्र-सज्जित ग्रथित विस्तृत शूर-वीर समूह को।
जब कर सके भेदन न पाण्डव एक अर्जुन के विना,
तब बहुत ही व्याकुल हुए कर कर अनेकों कल्पना॥

( ४ )

यों देख कर चिन्तित उन्हें धर ध्यान समरोत्कर्ष का,
अभिमन्यु प्रस्तुत हुआ रण को वीर षोडश वर्ष का!
वह चक्रव्यूह-विभेद-विधि का सहज रखता ज्ञान था,
निज पिता अर्जुन-तुल्य ही बलवान था गुणवान था

( ५ )

"हे तात! तजिए सोच को, है काम ही क्या क्लेश का
प्रकटित करूँगा व्यूह में मैं द्वार शीघ्र प्रवेश का"।
यों पाण्डवो से वह समर को वीर वह सज्जित हुआ,
छवि देख उसकी उस समय सुरराज भी लज्जित हुआ,

( ६ )

नर-देव-सम्भव वीर वह रण-मध्य जाने के लिए,
बोला वचन निज सारथी से रथ सजाने के लिए।
यह विकट साहस देख उसका चकित सारथि हो गया,
कहने लगा इस भाँति फिर वह देख उसका वय नया॥

( ७ )

"हे शत्रुनाशन! आपने यह भार गुरुतर है लिया,
"हैं द्रोण रण-पण्डित, कठिन है व्यूह-भेदन की क्रिया।
"रण-विज्ञ यद्यपि आप हैं पर सहज ही सुकुमार हैं,
"सुखसहित नित पोषित हुए निजवंश प्राणाधार हैं,,॥

( ८ )

सुन सारथी की यह विनय बोला वचन वह वीर यों—
करता घनाघन गगन में निर्घोष अति गम्भीर ज्यों।
"हे सारथे! हैं द्रोण क्या, आवें यदपि देवेन्द्र भी,
"वे भी न जीतेंगे समर में, आज क्या, मुझसे कभी॥

( ९ )

"श्रीराम के हयमेध से अपमान अपना मान के,
"मख-अश्व जब लव और कुश ने जय किया रण ठान के।
"अभिमन्यु षोडश वर्ष का फिर क्यों लड़े रिपु से नहीं,
"क्या आर्य्य-वीर विपक्ष-वैभव देख कर डरते कहीं?॥

( १० )

"सुनकर गजों का घोष उसको समझ निज-अपयश-कथा
"उन पर झपटता सिंह शिशु भी कोप कर जब सर्वथा।
"फिर द्रोण व्यूह-विनाश-हित अभिमन्यु उद्यत क्यों न हों
"क्या वीर-बालक शत्रु का अभिमान सह सकते, कहो?।

( ११ )

"मैं सत्य कहता हूँ सखे! सुकुमार मत मानों मुझे,
"यमराज से भी युद्ध को प्रस्तुत सदा जानों मुझे।
"है और की तो बात ही क्या, गर्व मैं करता नहीं
'मामा* तथा निज तात से भी समर में डरता नहीं"॥

( १२ )

कह वचन यों निज सूत से वह वीर रण में मन दिये,
पहुँचा शिविर में उत्तरा से विदा होने के लिये।
सब हाल इसने निज प्रिया से जब कहा जाकर वहाँ,
तब क्या कहा उसने, उसे अब हम सुनाते हैं यहाँ॥

* श्रीकृष्ण।

( १३ )

"मैं यह नहीं कहती कि [illegible] रिपु से आप युद्ध करें नहीं
"[illegible] देखो भला जाती कहीं?
"तेजस्वियों की आयु भी [illegible]स मानती भी हूँ तथा,
"मैं जानती हूँ नाथ! यह मैं [illegible]पद्धि रहती सर्वथा॥
"उपकरण† में नहिं, शक्ति में ही। [illegible]

( १४ )

[illegible]ल, सच जानिए,
"अपशकुन आज परन्तु मुझको हो रहे [illegible]ु स मानिए।
"मत जाइए इससे समर में प्रार्थना यह [illegible] प्रीति में,
"जाने न दूँगी नाथ! तुमको आज मैं संग्राम [illegible] से॥
"उठतीं बुरी हैं भावनाएँ हाय! मम हृद्धाम में"॥

( १५ )

कहती हुई यों उत्तरा के नेत्र जल से भर गये,
हिम के कणों से पूर्ण मानो हो गये पङ्कज नये।
निज प्राणपति के स्कन्ध पर रखकर वदन वह सुन्दरी
करने लगी फिर प्रार्थना नाना प्रकार व्यथा-भरी॥

( १६ )

यों देख व्याकुल उत्तरा को सान्त्वना देता हुआ,
उसका मनोहर कर-कमल निज हाथ में लेता हुआ।
कहने लगा अभिमन्यु उससे जो यथोचित रीति से
सुन लीजिए अब हे रसिकजन! कथन वह भी प्रीति से॥

( १७ )

"जीवनमयी, सुखदायिनी, प्राणाधिके, प्राणप्रिये!
"होना तुम्हें क्या चाहिए इस भाँति कातर निज हिये?
"हो शान्त, सोचो हृदय में है योग्य क्या तुमको यही
"हा! हा! तुम्हारी विकलता जाती नहीं मुझसे सही॥

( १८ )

"वीर-स्नुषा‡ तुम, वीर-रमणी, वीर-गर्भा हो तथा,
"आश्चर्य जो मम रण-गमन से हो तुम्हें फिर भी व्यथा।
"हो जानती बातें सभी, कहना हमारा व्यर्थ है,
"बदला न लेना शत्रु से कैसा अधर्म अनर्थ है?

( १९ )

"निज शत्रु का साहस कभी बढ़ने न देना चाहिए,
"बदला समर में वैरियों से शीघ्र लेना चाहिए।
"पापी जनों को दण्ड देना चाहिए समुचित सदा,
"वर वीर-क्षत्रिय-वंश का कर्तव्य है यह सर्वदा॥

† सामग्री। ‡ स्नुषा = बहू।

( २० )

"इन कौरवों ने हा ! हमें सन्ताप कैसे हैं दिये,
"हैं याद क्या न तुम्हें इन्होने पाप जैसे हैं किये ?
"फिर भी इन्हें मारे विना हम लोग यदि जीते रहें,
"तो सोच लो संसार भर के वीर हमसे क्या कहें ?

( २१ )

"जिस पर हृदय का प्रेम होता सत्य और समग्र है,
"उसके लिए चिन्तित, अतः रहता सदा वह व्यग्र है।
"होता इसी से है तुम्हारा चित्त व्याकुल हे प्रिये !
"यह सोचकर सो अब तुम्हें शङ्कित न होना चाहिए॥

( २२ )

'रण में विजय पाकर प्रिये ! मैं शीघ्र लौटूँगा यहाँ,
'चिन्ता करो मन में न तुम होती मुझे पीडा महा।
'सोचो भला भगवान ही जब हैं हमारे पक्ष में,
'है ठहर सकता कहो फिर भी शत्रु कौन समक्ष मे"?

( २३ )

उ समय का ही चित्र है यह, ध्यान इस पर दीजिए,
इका प्रकाशन सफल कर आत्मस्मरण कर लीजिए।
भिमन्यु का यह चरित अनुकरणीय प्रायः है सभी,
ो हो सका तो युद्ध भी इसका सुनाऊँगा कभी॥

---

## १६—मनोरमा।

( १ )

रसिकवृन्द ! विलोकन कीजिए,
सरस रूप-सुधा-रस पीजिए।
यह छवि-प्रतिमा अति उत्तमा,
विदित नाम यथार्थ "मनोरमा"॥

( २ )

गुणवती सब भाँति सुलक्षिणी,
सुवदनी, रमणी यह दक्षिणी।
यह नितम्बिनि यद्यपि है नरी
सरस मानस मे पर किन्नरी।

( ३ )

यदपि है पहने गहने नहीं,
छवि परन्तु नहीं इस सी कहीं।
हम इसे इस भाँति सराहते—
"न रमणीय विभूषण चाहते"॥

( ४ )

"प्रिय लगे यदि मण्डन-मण्डिता;
छवि अखण्ड नहीं, वह खण्डिता"।
समझ क्या मन मे इस बात को,
यह किये अनलङ्कृत गात को॥

( ५ )

रुचिर कञ्ज स्वयं रहता यथा;
न विधु भूषण है चहता यथा।
विधुमुखी, कमलाक्षि, कृशोदरी,
यह तथैव स्वय अति सुन्दरी॥

( ६ )

हृदय को हरते निज वेश से,
छहरते कच पृष्ठ-प्रदेश से
भुजग जो कदली दल पै बसें,
कुछ वही इन के सम तो लसें॥

( ७ )

कर रही पति का शुभ ध्यान है;
रह गया कुछ बाह्य न ज्ञान है।
अचल मञ्जुल मूर्त्ति समान है,
अति अलौकिक रूप निधान है॥

( ८ )

खुल रहे युग नेत्र विशाल ये,
तज विलास चुके इस काल ये।
प्रिय मुखाब्ज छटा-रस-पान ये,
कर रहे वर भृङ्ग समान ये॥

( ९ )

पलक निश्चल है स्थिर दृष्टि है,
भर रही उसमें रस-वृष्टि है।
भ्रमर क्यों कमलों पर सो रहे,
सुकवि तो उनको उपमा कहें।

( १० )

कुल-वधू-जन को पति ही सदा
श्रुति प्रदर्शित उत्तम सम्पदा।
स्वपति का कर चिन्तन यों, कहो,
फिर सखे! यह तन्मय क्यो न हो?

---

## १७—द्रौपदी-दुकूल।

( १ )

राजसूय के समय देखकर
विभव पाण्डवो का भारी,
ईर्ष्या-वश मन में दुर्योधन
जलने लगा दुराचारी।
तिस पर मय-कृत सभा-भवन में
जो उसका अपमान हुआ,
कुरुक्षेत्र के भीषण रण का
मानों वही विधान हुआ॥

( २ )

धर्म्मराज का सभा-भवन वह
हृदय सभी का हरता था;
उन्नत नभस्थली का विधु-मुख
मानों चुम्बन करता था।
चित्र विचित्र रुचिर रत्नो से
मण्डित यों छवि पाता था—
इन्द्र-धनुष-भूषित मेघों को
नीचा सा दिखलाता था॥

( ३ )

वह अद्भुत छवि से "अवनी का
इन्द्र-भवन" कहलाता था;
अपने कर्त्ता के कौशल को
भली भाँति दरसाता था।
जल में थल थल में जल का वह
भ्रम मन में उपजाता था;
इस कारण भ्रमिष्ठ लोगो को
बहुधा हँसी कराता था॥

( ४ )

इसी भ्रान्ति से जल विचार कर
वहाँ सुयोधन ने थल को,
ऊँचा किया वसन वर अपना
करके चपल दृगञ्चल को।
तथा अचल निर्मल नीलम सम
था ललाम जल भरा जहाँ
गमनशील हो थल के भ्रम से
वह उसमें गिर पड़ा वहाँ॥

( ५ )

उसकी ऐसी दशा देखकर
हँस कर बोले भीम वहीं—
"अन्धे के अन्धा होता है
इसमें कुछ सन्देह नहीं"।
इस घटना से ऐसा दुस्सह
मर्म्मान्तक दुख हुआ उसे,
जब तक जीवित रहा जगत में
फिर न कभी सुख हुआ उसे॥

( ६ )

वीर पाण्डवो से तब उसने
बदला लेने की ठानी;
किन्तु प्रकट विग्रह करने में
कुशल नहीं अपनी जानी।
तब उनका सर्वस्व जुए में
हरना उसने ठीक किया—
कार्य्याकार्य्य विचार न करता
स्वार्थी जन का मलिन हिया॥

( ७ )

भीष्मपितामह और विदुर ने
उसको सब विध समझाया;
किन्तु एक उपदेश न उनका
उस दुर्मति के मन भाया।
उनका कहना वन-रोदन सा
उसके आगे हुआ सभी—
मन के दृढ निश्चय को विधि भी
पलटा सकता नहीं कभी।

( ८ )

"जुआ खेलना महा पाप है"—
करके भी यह बात विचार,
दुर्योधन के आमन्त्रण को
किया युधिष्ठिर ने स्वीकार।
हो कुछ भी परिणाम अन्त मे,
धर्म्मशील वर-वीर तथापि
निज प्रतिपक्षी की प्रचारणा
सह सकते है नहीं कदापि॥

( ९ )

छल से तब शकुनी ने उनका
राजपाट सब जीत लिया;
भ्राताओं के सहित स्व-वश कर
सब विध विधि-विपरीत किया।
फिर कृष्णा का पण करने को
प्रेरित किये गये वे जब
हार पूर्ववत् गये उसे भी
रख कर द्यूत-दाँव पर तब॥

( १० )

इस घटना से दुर्योधन ने
मानों इन्द्रासन पाया,
भरी सभा में उस पापी ने
पाञ्चाली को बुलवाया।
होने से ऋतुमती किन्तु वह
आ न सकी उस समय वहाँ;
भेजा इस पर दुःशासन को
होकर उसने कुपित महा॥

( ११ )

राजसूय के समय गये थे
जो मन्त्रित जल से सींचे
जाकर वही याज्ञसेनी के
कच दुःशासन ने खींचे!
बलपूर्वक वह उस अबला को
वहाँ पकड़ कर ले आया;
करने में अन्याय हाय! यो
नहीं ज़रा भी शरमाया॥

( १२ )

प्रबल-जाल में फँसी हुई ज्यों
दीन मीन व्याकुल होती,
विवश विकल द्रौपदी सभा मे
आई त्यो रोती रोती।
अपनी यह दुर्दशा देखकर
उसको ऐसा कष्ट हुआ,
जिसके कारण ही पीछे से
सारा कुरुकुल नष्ट हुआ॥

( १३ )

दुर्योधन-दुःशासन ने यह
समझी निज सुख की क्रीड़ा;
किन्तु पाण्डवो ने इस दुख से
पाई प्राणान्तक पीड़ा।
तो भी वचन-बद्ध होने से
ये सब पापाचार सहे;
मन्त्रो से कीलित भुजङ्ग सम
जलते ही वे वीर रहे॥

( १४ )

"मुझे एक वस्त्रावस्था में
केश खींच लाया जो हाय!
दुष्ट-बुद्धि दुःशासन का यह
प्रकट देख कर भी अन्याय।
सभ्य, ख्यात-नामा ये सारे
सभा-मध्य बैठे चुप चाप!
तो क्या धर्म्म-हीन धरणी में
शेष रह गया केवल पाप"?

( १५ )

सुनकर रुदन द्रौपदी का यों
कहा कर्ण ने तब तत्काल—
"निश्चय सभी स्वल्प है जो कुछ
हो ऐसी अबला का हाल।
अच्छा, दुःशासन! यह जिसका
बार बार लेती है नाम
लो उतार इसके शरीर से
वह भी एक वस्त्र बेकाम"॥

( १६ )
कर्ण-कथन सुन दुःशासन ने
पकड़ लिया द्रौपदी-दुकूल
किया क्रोध से भीमसेन ने
प्रण तब यो अपने को भूल—
"दुःशासन का उर विदीर्ण कर
शोणित जो मैं करूँ न पान,
तो अपने पूर्वज लोगो की
पा न सकूँ मैं गति-प्रधान" ॥

( १७ )
ग्रसी राहु से चन्द्रकला सम
कृष्णा तब अति अकुलानी ;
एक निमेष मात्र ही में सब
निज लज्जा जाती जानी ।
ऐसे समय एक हरि को ही
अपना रक्षक जान वहाँ,
लगी उन्हीं को वह पुकारने
धर कर उनका ध्यान वहाँ ॥

( १८ )
"हे अन्तर्यामी मधुसूदन !
कृष्णचन्द्र ! करुणासिन्धो !
रमा-रमण, दुख-हरण, दयामय,
अशरणशरण, दीन-बन्धो !
मुझ अभागिनी की अब तक तुम
भूल रहे हो सुधि कैसे ?
नहीं जानते हो क्या केशव !
कष्ट पा रही हूँ जैसे ॥

( १९ )
"जरा देर में ही अब मेरी
लुटी लाज सब जाती है ;
क्षण क्षण में आपत्ति भयङ्कर
अधिक अधिक अधिकाती है ।
करती हुई विकट ताण्डव सी
निकट मृत्यु दिखलाती है,
केवल एक तुम्हारी आशा
प्राणो को अटकाती है ॥

( २० )
"दुःशासन-दावानल-द्वारा
मेरा हृदय जला जाता ;
बिना तुम्हारे यहाँ न कोई
रक्षक अपना दिखलाता ।
ऐसे समय तुम्हें भी मेरा
ध्यान नहीं जो आवेगा,
तो हा ! हा ! फिर अहो दयामय !
मुझको कौन बचावेगा ?

( २१ )
"क्रिया-हीन ये चित्र लिखे से
बैठे यहाँ मौन धारे ;
मेरी यह दुर्दशा सभा में
देख रहे गुरुजन सारे !
तुम भी इसी भाँति सह लोगे
जो ये अत्याचार हरे !
निस्संशय तो हम अनाथ जन
बिना दोष ही हाय ! मरे ॥

( २२ )
"किसी समय भ्रम-वश जो कोई
मुझ से गुरुतर दोष हुआ,
हो जिससे मेरे ऊपर यह
ऐसा भारी रोष हुआ ।
तो सदैव के लिये भले ही
मुझ को नरक-दण्ड दीजे ;
किन्तु आज इस पाप-सभा में
लज्जा मेरी रख लीजे ॥

( २३ )
"सदा धर्म्म-संरक्षण करने,
हरने को सब पापाचार,
हे जगदीश्वर ! तुम धरणी पर
धारण करते हो अवतार ।
फिर अधर्म्म-मय अनाचार यह
किस प्रकार तुम रहे निहार,
क्या वह कोमल हृदय तुम्हारा
हुआ वज्र मेरी ही वार ?

( २४ )

"शरणागत की रक्षा करना
सहज स्वभाव तुम्हारा है
वेद-पुराणों मे अति अद्भुत
विदित प्रभाव तुम्हारा है।
सो यदि ऐसे समय न मुझ पर
दया-दृष्टि दिखलाओगे,
विरुद-भ्रष्ट होने से निश्चय
प्रभु पीछे पछताओगे॥

( २५ )

"जब जिस पर जो पडी आपदा
तुमने उसे बचाया है,
तो फिर क्यों इस भाँति दयामय!
तुमने मुझे भुलाया है।
इस मरणाधिक दुख से जो मैं
मुक्ति आज पा जाऊँगी,
गणिका, गज, गृद्धादिक से मैं
कम न कीर्त्ति फैलाऊँगी॥

( २६ )

"जो अनिष्ट मन से भी मैंने
नहीं किसी का चाहा है,
जो कर्त्तव्य धर्म्मयुत अपना
मैंने सदा निबाहा है।
तो अवश्य इस विपत् सिन्धु से
तुम मुझको उद्धारोगे,
निश्चय दया-दृष्टि से माधव!
मेरी ओर निहारोगे"॥

( २७ )

करती हुई विनय यों प्रभु से
कृष्णा ने दृग मूँद लिये,
क्षण भर देह-दशा को भूले
खड़ी रही वह ध्यान किये।
तब करुणामय कृष्णचन्द्र ने
दूर किया उसका दुख घोर
खींच खींच पट हार गया पर
पा न सका दुःशासन छोर!!!

## १८—केशों की कथा।

( १ )

घन और भस्म विमुक्त भानु-कृशानु सम शोभित नये
अज्ञात-वास समाप्त कर जब प्रकट पाण्डव हो गये।
तब कौरवों से शान्ति पूर्वक और समुचित रीति से
माँगा उन्हों ने राज्य अपना प्राप्य था जो नीति से॥

( २ )

हो किन्तु वश मे कुमति के निज प्रबलता की भ्रान्ति से
देना न चाहा रण-बिना उसको उन्होंने शान्ति से।
तब क्षमाभूषण, नित्यनिर्भय, धर्मराज महाबली
कहने लगे श्रीकृष्ण से इस भाँति वर-वचनावली—

( ३ )

दुर्योधनादिक कौरवों ने जो किये व्यवहार हैं
सो विदित उनके आपको सम्पूर्ण पापाचार हैं।
अब सन्धि के सम्बन्ध मे उत्तर उन्हों ने जो दिया
हे कमल-लोचन! आपने वह भी प्रकट सब सुन लिया॥

( ४ )

कर्तव्य अब जो हो हमारा दीजिये सम्मति हमें
रण के बिना अब नहीं कोई दीखती है गति हमें।
जब शान्ति करना चाहते वे राज्य मुक्त बिना किये
कैसे कहें फिर हैं न वे तैयार विग्रह के लिये?

( ५ )

जिनके सहायक आप हैं हम युद्ध मे डरते नहीं
क्षत्रिय समर मे काल से भी भय कभी करते नहीं।
पर भरत-वंश-विनाश की चिन्ता हमें दुख दे रही
बस बात बारम्बार मन में एक आती है यही॥

( ६ )

हैं दुष्ट, पर कौरव हमारे बन्धु ही हैं सर्वदा
अतएव दोषी भी क्षमा के पात्र वे सब हैं सदा।
यह सोच कर ही हम न उनका चाहते संहार थे
पर देखते हैं दैव को स्वीकार ये न विचार थे॥

( ७ )

जो ग्राम केवल पाँच ही देते हमें वे प्रेम से
सन्तुष्ट थे हम राज्य सारा भोगते वे क्षेम से।

निज हाथ उनके रक्त से रँगना न हमको इष्ट था
सम्बन्ध हमसे और उनसे सब प्रकार घनिष्ठ था॥

( ८ )

सुनकर युधिष्ठिर के वचन भगवान यों कहने लगे—
मानों गरजते हुए नीरद भूमि मे रहने लगे।
"है कौरवों के विषय मे जो आप ने निज मत कहा
स्वाभाविकी वह आप की है सरलता दिखला रहा॥

( ९ )

औदार्य्य-पूर्वक आप उनको चाहते करना क्षमा
आसन्न-मृत्यु परन्तु उनमें वैर-भाव रहा समा।
अतएव उनसे सन्धि की आशा समझनी व्यर्थ है
दुर्बुद्धियों को वोध देने में न दैव समर्थ है॥

( १० )

उपदेश कोई यदपि उनके चित्त में न समायँगे
तो भी उन्हें हम सन्धि करने के लिए समझायँगे।
होगा न उससे और कुछ तो बात क्या कम है यही
निर्दोषता जो जान लेगी आपकी सारी मही"॥

( ११ )

यों कह युधिष्ठिर से वचन इच्छा समझ उनकी हिये
प्रस्तुत हुए हरि हस्तिनापुर-गमन करने के लिये।
इस सन्धि के प्रस्ताव से भीमादि व्यग्र हुए महा
पर धर्मराज विरुद्ध धार्मिक वे न कुछ बोले वहाँ॥

( १२ )

तव सहन करने से सदा मन की तथा तन की व्यथा
जो क्षीण दीन निदाव-निशि सम हो रही थी सर्वथा।
सो याज्ञसेनी द्रौपदी अवलोक दृष्टि सतृष्णा से
हिंम-मलिन-विधु-सम वदन से बोली वचन श्रीकृष्ण से॥

( १३ )

"हैं तत्त्वदर्शी जन जिन्हें सर्वज्ञ नित्य बखानते
हे तात! यद्यपि तुम सभी के चित्त की हो जानते।
तो भी प्रकट कुछ कथन की जो धृष्टता मैं कर रही
मुझ पर विशेष कृपा तुम्हारी हेतु है इसका यही॥

( १४ )

जिस हृदय की दुःखाग्नि से जलती हुई भी निज हिये
जीवित किसी विधि मैं रही शुभ समय की आशा किये।
हा! हन्त!! आज अजातरिपु ने दया रिपुओं पर दिखा
कर दी ज्वलित घृत डाल के ज्यों और भी उसकी शिखा॥

( १५ )

सुन कर न सुनने योग्य हा! इस संधि के प्रस्ताव
है हो रहा यह चित्त मेरा प्राप्त जैसे भाव को।
वर्णन न कर सकती उसे मैं वज्रहृदया परवशा
हरि तुम्हीं एक हताश जन की जान सकते हो दश

( १६ )

केवल दया ही शत्रुओं पर है न दिखलाई गई
हा! आज भावी सृष्टि को दुर्नीति सिखलाई गई
चलते बड़े जन आप हैं संसार मे जिस रीति से
करते उन्हीं का अनुकरण दृष्टान्तयुत सब प्रीति से

( १७ )

जो शत्रु से भी अधिक वहुविध दुख हमे देते रहे
वे क्रूर कौरव हा! हमीं से आज बन्धु गये कहे!
नीतिज्ञ गुरुओ ने भुला दी नीति यह कैसे सभी—
"अपना अहित जो चाहता हो वह नहीं अपना कभी

( १८ )

जो ग्राम लेकर पाँच ही तुम सन्धि करने हो चले
औदार्य्य और दयालुता ही हेतु हो इसके भले।
पर "डर गये पाण्डव" सदा ही यह कहेंगे जो अह
निज हाथ लोगो के मुखों पर कौन रक्खेगा कहो

( १९ )

क्या कर सकेंगे सहन पाण्डव हाय! इस अपमान के
क्या सुन सकेंगे प्रकट वे निज घोर अपयश-गान के
होता सदा है सज्जनो को मान प्यारा प्राण से
है यशोधनियो को अयश लगता कठोर कृपाण से

( २० )

देवेन्द्र के भी विभव को सन्तत लजाते जो रहे
हा पाँच ग्रामो के वही हम आज भिक्षुक हो रहे!
अब भी हमें जीवित कहे जो सो अवश्य अजान
हैं जानते यह तो सभी 'दारिद्र्य मरण-समान है

( २१ )

अथवा कथन कुछ व्यर्थ अब जब क्षमा उनको दी
केवल क्षमा ही नहीं उनसे बन्धुता भी की गई!
सो अब भले ही सन्धि अपने बन्धुओं से कीजिये
पर एक बार विचार फिर भी कृत्य उनके लीजिये

( २२ )

क्या क्या न जानें नीच निर्दय कौरवों ने है किया
था भोजनों में पाण्डवों को विष इन्होंने ही दिया।
सो सन्धि करने के समय इस विषम विष की बात को
मुझ पर कृपा करके उचित है सोच लेना तात को॥

( २३ )

है विदित जिसकी लपट से सुरलोक सन्तापित हुआ
होकर ज्वलित सहसा गगन का छोर था जिसने छुआ।
उस प्रबल जतुगृह के अनल की बात भी मन से कहीं
हे तात! सन्धि विचार करते तुम भुला देना नहीं॥

( २४ )

मृग चर्म धारे पाण्डवों को देख वन में डोलते
तुमने कहे थे जो वचन पीयूष मानों घोलते।
जो क्रोध उस वेला तुम्हें था कौरवों के प्रति हुआ
रखना स्मरण वह भी, तथा जो जल दृगों से था चुआ॥

( २५ )

था सब जिन्हों ने हर लिया छल से जुवे के खेल में
प्रस्तुत हुये किस भाँति पाण्डव कौरवों से मेल में?
उस दिवस जो घटना घटी थी भूल क्या वे है गये
अथवा विचार विभिन्न उनके हो गये अब है नये"?

( २६ )

फिर दुष्ट दुःशासन हुआ था तुष्ट जिनको खींच के
ले दाहिने कर में वही निज केश लोचन सींच के।
रख कर हृदय पर वाम कर शर-विद्ध-हरिणी सम हुई
बोली विकलतर द्रौपदी वाणी महा करुणामयी॥

( २७ )

'करुणा-सदन! तुम कौरवों से सन्धि जब करने लगो
चिन्ता व्यथा सब पाण्डवों की शान्ति कर हरने लगो।
हे तात! तब इन मलिन मेरे मुक्त केशों की कथा
है प्रार्थना, मत भूल जाना, याद रखना सर्वथा॥'

( २८ )

कातर वचन यह दुःख से तब द्रौपदी रोने लगी
नेत्राम्बुधारा-पात से कृश अङ्ग निज धोने लगी।
[illegible] दीन करके श्रवण उसकी प्रार्थना करुणा भरी
देने लगे निज कर उठाकर सान्त्वना उसको हरी।

( २९ )

"भद्रे! रुदन कर बन्द हो! हा! शोक को मन से हटा
यह देख तेरी दुख-घटा जाता हृदय मेरा फटा।
विश्वास मेरे कथन का जो हो तुझे मन में कभी
सच जान तो दुख दूर होंगे शीघ्रही तेरे सभी॥

( ३० )

जिस भाँति गद्गद कण्ठ से तू रो रही है हाल में
रोती फिरेंगी कौरवों की नारियाँ कुछ काल में।
लक्ष्मी-सहित रिपु-रहित पाण्डव शीघ्रही हो जायँगे
निज नीच कर्मों का उचित फल कुटिल कौरव पायँगे॥"

( ३१ )

इस समय के ही दृश्य का यह चित्र करुणामय बड़ा
सहृदय रसिक जन देखिए इसको हृदय करके कड़ा।
पर देखना दृग-नीर से देना इसे न बहा कहीं
काञ्चन-रहित मणि सम निरी यह रह कथा जावे नहीं॥

---

## १९— अर्जुन और उर्वशी।

( १ )

निज विपक्ष समूह-समाप्ति को
जब अलौकिक आयुध-प्राप्ति को।
प्रबल पार्थ गये अमरावती
मुदित इन्द्र हुए उनसे अति॥

( २ )

प्रिय करूँ तव क्या मुझ से कहो?
न वह दुर्लभ है तुम जो चहो।
त्रिदिव, मोक्ष तथा अमरत्व भी,
सुलभ है तुमको सुख ये सभी॥

( ३ )

वचन यों उनसे सुखदायक
कह चुके जब निर्जर-नायक†।
विनय-पूर्वक वे उनसे तब
निज अभीष्ट लगे कहने सब॥

[illegible] † इन्द्र

( ४ )
सुरपते! भवदीय कृपा जब
सुलभ क्यों सुख हो न मुझे तब ?
जब कृपा करते गुरु लोग हैं
तब अलभ्य कहाँ सुख-भोग हैं ?

( ५ )
न चहता पर सम्प्रति स्वर्ग मैं
न अमरत्व तथा अपवर्ग * मैं।
बस विभो! रिपु-नाशन के लिये
निज अलौकिक आयुध दीजिये॥

( ६ )
विविध कष्ट दिये जिसने हमें
स्वपद भ्रष्ट किये जिसने हमें।
वह विपक्ष विनष्ट बिना किये,
न कुछ इष्ट मुझे सच जानिये॥

( ७ )
हृदय-शान्ति तथा सुख-कारण,
प्रथम योग्य मुझे रिपु-मारण।
अधिक और विभो! अब क्या कहूँ ?
सब प्रकार अबोध अजान हूँ॥

( ८ )
कथन यों करते निज लालसा
मुख हुआ उनका कुछ लाल सा।
अति विचित्र मनो जलजात का
बन गया वर भानु प्रभात का॥

( ९ )
कर विपक्ष-कृति-स्मृति, काल ज्यों
कुपित देख उन्हें उस काल यों।
सुरप ने अति धैर्य्य दिया उन्हें,
प्रणयपूर्वक शान्त किया उन्हें॥

( १० )
फिर प्रहार-प्रयोग-क्रिया-युत
अति अलौकिक आयुध अद्भुत।
मुदित होकर शक्र-समाहृत
ग्रहण पार्थ लगे करने नित॥

* मोक्ष

( ११ )
समय यों कुछ बीत गया यदा
रजनि में उनके नव एकदा।
निकट प्राप्त हुई यह उर्वशी,
स्वकृति से उनको करने वशी॥

( १२ )
यदपि वे इस की महिमा महा
प्रथम थे अवलोक चुके वहाँ।
पर छटा यह आज निहार के
न सहसा पहचान इसे सके॥

( १३ )
न इसकी छवि सी छवि है कहीं,
फिर रहें चुपही हम क्यों नहीं।
बस यही कहना जचता सही,
भुवन में इसकी उपमा यही॥

( १४ )
अति अलौकिक सुन्दरतामयी
निकट पाण्डव के जब आगई।
फिर जरा हँसते हँसते अहा!
निज मनोरथ यो उसने कहा॥

( १५ )
"भुवन-मोहन! शक्र-निदेश से
निखिल-भूषण-भूषित वेश से।
सुखित मैं तुम को करने महा,
अनुचरी सम प्राप्त हुई यहाँ॥

( १६ )
निखिल-नाट्य-विलास-अभिज्ञ मैं,
अभिनयादिक में अति विज्ञ मैं।
तव अशेष गुणो पर लुब्ध हूँ,
रमण-योग्य! मनोभव-मुग्ध हूँ"॥

( १७ )
कथन यो उस कामिनि का सुन,
सुन सके फिर और न अर्जुन।
इस लिये वह धर्म्म-सुधा पगे,
वचन यो उससे कहने लगे।

(१८)

"बस करो बस देवि! न यों कहो,
वचन ये अघ-पूरित हैं अहो!
सुन नहीं सकते इनको हम,
तुम सदा मम पूज्य शची सम॥

(१९)

सब प्रकार मनोहरता-भरी,
तुम अवश्य अलौकिक सुन्दरी।
गुणवती, वर-बुद्धि, वदान्य हो,
पर मुझे जननी सम मान्य हो॥

(२०)

व्यथित बान्धव हैं सब हा! मम,
स्वपद-वञ्चित दीन दुखी सम।
अहह! जो सुख भोग करें हम,
धिक हमें, हम हैं अधमाधम॥

(२१)

स्वजन भोग रहे बहु कष्ट हैं,
रिपु हुए अबलों नहिं नष्ट हैं।
जगत में हम जीवित हैं तथा,
अधिक क्या इससे अब है व्यथा"॥

(२२)

सुन धनञ्जय का कहना यह,
अति हताश हुई मन में वह।
रह गई अति विस्मित सी तथा,
चकित चञ्चल चारु मृगी यथा॥

(२३)

रुचिर भाव यही इस चित्र में,
गुण भरे बहु पार्थ-चरित्र में।
फिर भला इसको, कहिए छली!
प्रकट क्यों करती न सरस्वती॥

---

## २०—मोहिनी।

( १ )

सुख-सागर-मध्य निमग्न हुई
निज देह-दशा तक भूल रही।
उपमा इसके अनुकूल कहाँ
नव कल्पलता सम फूल रही॥
पहने अति दिव्य दुकूल हरा
दिखला न किसे छवि मूल रही।
सज दोल प्रफुल्ल कदम्ब तले
मनमोहिनी मोहिनी झूल रही॥

( २ )

रुचिपूर्वक दोल बढ़ाय रही
अनुराग अपार जगाय रही।
रस को बरसाय बहाय रही,
मन के नद को उमगाय रही॥
रति-रूप लजाय सुहाय रही,
अपने पर आप ठगाय रही।
मुसकाय रही, छवि छाय रही,
सुख पाय रही मृदु गाय रही॥

( ३ )

सुख-दायक सावन के दिन हैं,
सब दृश्य महा मनभावन हैं।
जल से परिपूरित भूमि हरी,
सब ओर घिरे नभ में घन हैं॥
पिक, चातक, मोर सु-बोल रहे,
गिरि, कानन मोह रहे मन हैं।
इस दोल विहारिणी कामिनी के,
अनुकूल सभी सुख साधन हैं॥

( ४ )

उड़ता वर वस्त्र समीरण से,
कचमुक्त हुए मन को हरते।
कुच तुङ्ग उमङ्ग भरे उर में,
गिरि-शृङ्ग-छटा गुनता गगन॥
लचती कटि दोल-चलाचल में,
पग-कुञ्जन नूपुर [illegible] [illegible]।

इस चन्द्रमुखी-युवती-छवि की
तुलना करते कवि भी डरते॥

( ५ )

अति सुन्दर श्याम घटा घन को
अवनी पर क्या थहराय रही?
अथवा मधु-पान-प्रमत्त हुई
अलि-पंक्ति-छटा छहराय रही?
अथवा यह अञ्जन-वर्णमयी
उरगावली है लहराय रही?
अथवा मृदु मारुत से इसकी
यह केश-लता फहराय रही?

( ६ )

इस पावस में नभ में रहते
मन में डर के घनमण्डल से।
कर वास रहा विधु क्या क्षिति पै
सुख से इसके मुख के छल से?
अनुमान अवश्य सही यह है
समझो इसको प्रतिभा-बल से।
फिर पान करो यह गान-सुधा
इसके इस कण्ठ-कलाकल से॥

( ७ )

विटपाग्र-प्रकम्पक मारुत से
उड़ता इसका जब अञ्चल है।
उठती तब एक विचित्र छटा
करती मन जो अति चञ्चल है॥
लजती करि-कुम्भ-मनोहरता
छिपता जल में चकवा-दल है।
पड़ती क्षिति पै चपला-द्युति सी,
मिलता युग लोचन का फल है॥

( ८ )

चपला-सम देह-लता छवि है,
घन के सम केश मनोहर हैं।
सुरराज-शरासन सी भृकुटी,
झप-तुल्य सुखी द्रग सुन्दर हैं॥
पिक-कूजन गान समान तथा,
हरिताङ्कुर चीर बराबर हैं।
सब लक्षण पावस के इसमे
इस भाँति अतीव उजागर हैं॥

---

## २१—अशोक-वासिनी सीता।

( १ )

जिनके माया सूत्र में ग्रथित सकल संसार।
बन्दी सो ये जनक-जा दशमुख कारागार॥

( २ )

जिनके चिन्तन मात्र से होते भव-भय भग्न।
सो अशोक-तरु के तले बैठीं शोक-निमग्न॥

( ३ )

जिनके भृकुटि-विलास से जगदुत्पत्ति-विनाश।
निशाचरी उनको अहो! देतीं बहुविध त्रास॥

( ४ )

घन से चपला सदृश जो नहीं राम से भिन्न।
जगदम्बा सो आज ये विरह-विह्वला खिन्न॥

( ५ )

भूषण-हीन शरीर में पहने वस्त्र मलीन।
प्रिय विहीन ये हो रहीं क्षीण और अति दीन॥

( ६ )

जैसे तप में तरु बिना पाकर अति सन्ताप।
मुरझाती जाती सदा लता आप ही आप॥

( ७ )

निश्चरियों के मध्य भी शोभित ये इस भाँति।
चन्द्रकला मानों घिरी सघन घटा की पाँति॥

( ८ )

कर सकता है विकलता इनकी कौन बखान।
बीत रहा है आज कल पल पल कल्प-समान॥

( ९ )

दृग युग पलको से ढके चिन्ता-विवश विशाल।
ज्यों मलिन्द अरविन्द में बन्दी सायकाल॥



अशोकवासिनी सीता।

ये अशोक-वन बीच पति-चिन्ता-रत ललिता।
दशमुख रावण नीच हर लाया इनको यहां॥

( १० )

नन्दनवन से भी रुचिर यह अशोक-वन आज।
है इनको रौरव-सदृश बिना राम रघुराज॥

( ११ )

कह कर गद्गद कण्ठ से हा! रघुनन्दन राम!
पति-चिन्ता ही काम है इनका आठौ याम॥

( १२ )

'हा! नव-जलधर-देह-वर रघुकुल-कमल-दिनेश।
या इस दासी का कभी दूर न होगा क्लेश?

( १३ )

रखते थे जिस पर सदा करुणा अपरम्पार।
प्राणनाथ! उसको अहो क्यों यों रहे बिसार?

( १४ )

'छाया सम मम मन सदा रहता है तव साथ'।
क्या मुझसे निज कथन यह भूल गये हो नाथ?

( १५ )

व्याध-दशानन-जाल मे व्याकुल मृगी-समान।
नहीं जानते क्या मुझे हे प्रिय, जीवन-प्राण॥

( १६ )

हा! मेरे दुर्भाग्य से करुणामय भी आप।
आज निठुर हो दे रहे अधिक अधिक सन्ताप॥

( १७ )

अहो! ऊर्मिला-प्राण धन देवर रघुकुल-रत्न।
करते हो क्या कुछ तुम्हीं मेरे लिये प्रयत्न?

( १८ )

किया तुम्हारा वत्स! था जो मैंने अपमान।
क्या उसका यह दे रहे फल मुझको भगवान?

( १९ )

हा! हा! ऐसा है किया मैं ने क्या अपराध।
जिस कारण यह सह रही दुःसह दुःख अगाध?

( २० )

मुझ अबला को कष्ट यों देते हुए सदैव।
क्या न दया आती तुझे अहो! दुष्ट दुर्दैव!

( २१ )

प्राणाधार-वियोग के सह कर भी विष-बाण।
क्यों प्रयाण करते नहीं ए हो, पापी प्राण!

( २२ )

जला न प्रिय-विरहाग्नि मे पाकर भी दुख घोर।
बता बना किस वस्तु से तू हे हृदय कठोर!

( २३ )

हे दृग-जल! बहते रहो चाहे अगणित कल्प।
किन्तु हृदय की अनल यों नहीं बुझेगी स्वल्प!"

( २४ )

करुणामय आश्चर्य्यमय जैसा यह सुचरित्र।
वैसाही यह चित्र है रविवर्म्मा-कृत मित्र॥

---

## २२—मालती-महिमा।

( १ )

"है आज तो दिवस कृष्ण-चतुर्दशी का,
पूरा विकाश फिर क्यों यह है शशी का"।
यों चित्त को चकित जो कर डालती है,
ऐसी मयङ्क वदनी यह मालती है॥

( २ )

मन्त्री सु भूरिवसु* की यह है कुमारी,
श्रीदेवरात† सुत-माधव-प्राणप्यारी।
हारो विलोक इनकी छवि देव नारी,
पूजार्थ आज हरि-मन्दिर में पधारी॥

( ३ )

सारी सुरङ्ग पहने अति मोद-दात्री,
प्यारी किसे न लगती यह चारु गात्री
मानो तड़ित् तज अनस्थिरता अशेष,
है सोहती अमल अम्बुद में विशेष॥

* भूरिवसु=पद्मावती के राजा का मंत्री और मालती का पिता।

† देवरात=विदर्भ [illegible] का मंत्री और माधव का पिता तथा भूरिवसु का [illegible]।

( ४ )
पुष्पादि से ग्रथित सुन्दर रूप-राशी,
आलोक आज इसकी यह केशपाशी।
रक्खे हुए मणि-फणोपरि कान्तिमान,
होता किसे असित पन्नग का न ध्यान ?

( ५ )
ये केश देख इसके मृदु माँगदार,
हे विश्व दर्शक ! कहो तुमही विचार।
सिन्दूर रेख-मिस क्या चिकुरान्धकार *
जिह्वा ललाट-विधु पै न रहा पसार ?

( ६ )
कन्दर्प के धनुष का गुण गान सारा,
प्यारा तभी तक सखे ! रहता हमारा।
होते हमें स्मरण हैं जबलो न नीके,
भ्रू-चाप ये युगल मञ्जुल मालती के॥

( ७ )
आलोक नेत्र इसके मृग से विशाल,
डूबे सलज्ज जल में झष† कञ्ज-जाल।
जो बात आप यह सत्य नहीं बताते,
तो क्यों बिना सलिल वे अति ताप पाते ?

( ८ )
निष्कम्प-दीपक शिखा सम दीप्तिमान,
है नाक जो न यह कीर-मुखोपमान।
तो द्वार बन्द कर ओष्ठ-कपाट से यों,
तद्दन्त-दाडिम मुखालय में छिपे क्यों ?

( ९ )
गोरे, गुलाब-दल से अति गोल गोल,
कैसे मनोज्ञ युग ये इसके कपोल।
मानो शरीर-गृह में विधि के बनाये,
कन्दर्प के मुकुर मञ्जुल हैं सुहाये॥

( १० )
ताम्बूल से अधर लाल नहीं बने हैं,
योंहीं स्वभाव-वश सुन्दरता-सने हैं।
दृष्टान्त हैं प्रकट ये इसके प्रधान,
"हैं चाहते न कुछ भूषण रूपवान"॥

( ११ )
भ्रू-चाप और दृग-बाण विपाक्त जान,
पाता न राहु मन में भय जो महान।
तो पूर्ण-चन्द्र-भ्रम से वह दैत्य पापी,
क्या मालती-वदन को तजता कदापि ?

( १२ )
है दाहिने कर-सरोरुह में निराली,
शोभायमान शिव-पूजन वस्तु-थाली।
लम्बायमान जघनो तक बाहु वाम,
है योग कञ्ज-कदली-द्रुम सा ललाम॥

( १३ )
निःशेष सुन्दर वधू कुल में मनोज्ञ,
पाई गई जब यही बलि दान-योग्य‡।
कैसी ललाम फिर है यह मञ्जुदेही,
कीजे विचार इसका इस बात से ही॥

( १४ )
प्रख्यात जो कवि हुआ भवभूति§ नाम,
गाया चरित्र इसका उसने ललाम।
नाना-रसार्द्र इसका वह सच्चरित्र,
है सर्वथा मनन-योग्य बड़ा पवित्र॥

‡ अघोरघण्ट नामक एक कापालिक था। उसे मन्त्रसिद्धि के लिए एक अलौकिक रूपवती सुन्दरी अपनी आराध्य देवता कराला देवी को बलि देनी थी। बेचारी मालती ही बलिदान के योग्य मानी गई। अतएव रात में सोती हुई वह मन्त्र द्वारा उक्त देवी के मन्दिर में लाई गई। जागने पर उसने जब अपने को इस विपत्ति में देखा तब वह निज जनों को पुकार पुकार कर बड़े आर्त्त-स्वर से रोने-चिल्लाने लगी। इसी समय मालती की प्राप्ति से निराश होकर ( निराश होने का कारण १५-१६ और १७ वें पद्य में वर्णित है ) श्मशान में शरीर त्यागने के लिए माधव घूम रहा था। वहा से थोड़ी ही दूर पर कराला देवी का वह मन्दिर था। उसने मालती का रोना सुन कर मन्दिर में जाके अघोरघण्ट का वध किया और मालती को बचाया। उस समय अघोरघण्ट की शिष्या कपालकुण्डला माधव से बदला लेने की चिन्ता करती हुई वहाँ से भाग गई।

§ महाकवि भवभूति—"मालती-माधव" नामक नाटक का रचयिता।

* चिकुर + अन्धकार = केशरूपी अन्धकार। † झष = मीन।

( १५ )
धर्म्मानुसार* जब ब्राह्म-विवाह द्वारा,
थी होनहार यह माधव धर्म्मदारा।
आपत्ति एक उस काल हुई महान,
सत्कार्य्य मे प्रकट विघ्न हुए कहाँ न?

( १६ )
पद्मावती-नृपति का सु कृपाधिकारी,
था एक जो मनुज नन्दन-नामधारी।
अन्याय-पूर्ण उसने कर यत्न नाना,
चाहा इसे निज वधू सहसा बनाना॥

( १७ )
भूपाल भी कर सका न उसे निराश,
की मन्त्रि-भूरिवसु से स्वमति प्रकाश।
दुःखी हुआ वह उसे सुन के महान,
नाहीं नही कर सका निज स्वामि जान॥

( १८ )
ज्योंही चरित्र यह माधव ने निहारा,
होके हताश उसने मरना बिचारा।
होता न दुःसह शरीर वियोग वैसा,
होता निज-प्रिय-वियोग असह्य जैसा॥

( १९ )
ऐसे व्यथा समय में तप की विहाय,
"कामन्दकी†" अति हुई इनकी सहाय।
चातुर्य्य-युक्त उसने सब कार्य्य साधा,
उद्योग दूर करता सब विघ्न-बाधा॥

( २० )
जो निन्द्य नन्दन मनोहर मालती से,
था चाहता निज विवाह प्रबन्ध जी से।
खोनी पडी स्व भगिनी उलटी उसी को,
देते सदा जय जगत्-प्रभु सत्य ही को॥

( २१ )
उद्वाह उत्सव-अनन्तर भी न माना,
चाहा विपक्ष-कुल ने इनको सताना।
होती परन्तु जिस पे प्रभु की दया है,
होता अनिष्ट उसका किसका किया है॥

( २२ )
रच कर जिसने ये मालती का सुचित्र,
ललित कर दिया है और भी तच्चरित्र।
वह नृप रविवर्म्मा, चित्रकार-प्रधान,
अहह! अब नहीं हैं, विश्व मे विद्यमान!

---

## २३—भीष्म-प्रतिज्ञा।

( १ )
विलोक शोभा विविध प्रकार
जी मे सुखी हो कर एक बार।
यशोधनी शान्तनु भूप प्यारे
थे घूमते श्रीयमुना-किनारे॥

( २ )
वहाँ उन्होंने अति ही विचित्र
आघ्राण की एक सुगन्ध मित्र!
थी चित्तहारी वह गन्ध ऐसी
पाई गई पूर्व कभी न जैसी॥

( ३ )
भूपाल ऐसे उसके लुभाने,
शरीर की भी सुधि को भुलाने।
चले [illegible] से नहाने,
पता ठिकाना उसका लगाने॥

---

* देवरात और भूरिवसु जब गुरु-गृह में विद्याभ्यास करते थे तब इन दोनों का यह विचार हुआ कि यदि हम दो में से किसी एक को पुत्र और दूसरे को पुत्री हुई, तो हम उनका परस्पर विवाह करेंगे। इसी प्रतिज्ञानुसार मालती माधव की व्याही जानेवाली थी। इसी लिए "धर्म्मानुसार" कहा गया।

† कामन्दकी एक बाल-ब्रह्मचारिणी तपस्विनी तथा देवरात और भूरिवसु की गुरु भगिनी थी। कुछ काल से वह पद्मावती पुरी में ही रहने लगी थी। इसने लड़कपन में इन दोनों के साथ विद्याध्ययन किया था और इन दोनों ने परस्पर सम्बन्धी होने की प्रतिज्ञा भी इसके सामने ही की थी। इसको इस प्रतिज्ञा का [illegible] ध्यान था और वह [illegible] [illegible] प्रीति करती थी। इसने इसके नाना प्रकार के [illegible] से मालती का माधव से, और नन्दन की [illegible] मदयन्तिका का माधव के मित्र मकरन्द से गान्धर्व विवाह [illegible] था।

( ४ )
देखी उन्होंने तब एक बाला,
जो कान्ति से थी करती उजाला।
मलिन्द ने फुल्ल तथा विशाला,
मानो निहारी अरविन्द-माला॥

( ५ )
कैवर्त्त-कन्या वह सुन्दरी थी,
बिम्बाधरी और कृशोदरी थी।
मनोभिरामा मृगलोचनी थी,
मनोज-रामा मद-मोचनी थी॥

( ६ )
सुवर्ण गात्रोद्भव-गन्ध द्वारा
फैलाय कोसों निज नाम प्यारा।
रम्भोरु मानो वह थी दिखाती—
सुवर्ण में भी मृदु गन्ध आती!

( ७ )
तत्काल जी को वह मोह लेती
थी दर्शकों को अति मोद देती।
विलोक तद्रूप विचित्र कान्ति
थी दूर होती सब शान्ति दान्ति* ॥

( ८ )
यों देख शोभा उस की गभीर,
तत्काल भूपाल हुए अधीर।
क्या देख पूर्णेन्दु नितान्त कान्त,
कभी रहा है सलिलेश शान्त?

( ९ )
पुनः उन्होंने उससे सकाम
हो मुग्ध पूछा जब नाम, धाम।
बोली अहा! सो प्रमदा प्रवीणा,
मानो बजी मञ्जुल मिष्ट वीणा॥

( १० )
"हो आपका मङ्गल सर्व काल,
जानो मुझे सत्यवती नृपाल!
नौका चलाती सुकृतार्थ-काज,
पिता महात्मा मम दास-राज"॥

* जितेन्द्रियता।

( ११ )
थी मिष्ट वाणी उसकी विशेष,
हुए अतः और सुखी नरेश।
रसाल-शाखा पिक-गान-सङ्ग
देती नहीं क्या दुगनी उमङ्ग?

( १२ )
पुनः उन्होंने उसके पिता से
माँगा उसे जाकर नम्रता से।
किन्तु प्रतिज्ञा अति स्वार्थ-सानी
यों पूर्व चाही उसने करानी॥

( १३ )
"सन्तान जो सत्यवती जनेगी
राज्याधिकारी वह ही बनेगी"।
कामार्त थे यद्यपि वे, तथापि,
न की प्रतिज्ञा नृप ने कदापि॥

( १४ )
लौटे अतः सत्यवती बिना ही,
पाया उन्होंने दुख चित्त-दाही।
पावें व्यथा क्यों न सदा अनन्त,
अकार्य्य तो भी करते न सन्त॥

( १५ )
पीनस्तनी, योजन-गन्ध-दात्री,
कैवर्त-पुत्री वह प्रेम-पात्री।
कैसे मुझे हा! अब प्राप्त होगी?
क्या हो सकूँगा उसका वियोगी!

( १६ )
प्राणान्तकारी उसका वियोग
हुआ मुझे निश्चय काल-रोग।
अवश्य ही मैं उससे मरूँगा,
न किन्तु वैसा प्रण मैं करूँगा॥

( १७ )
वैसी प्रतिज्ञा कर दुःख खोना,
पुत्रघ्न मानो जग बीच होना।
क्या तात देवव्रत का रहा मैं
जो मान लूँ धीवर का कहा मैं!॥

( १८ )

चाहे मरूँ मैं दुख से भले ही,
　　चाहे बनूँ भस्म बिना जले ही।
स्वीकार है मृत्यु मुझे घनिष्ट,
　　न किन्तु देवव्रत का अनिष्ट ॥

( १९ )

है पुत्र देवव्रत वीर मेरा,
　　गुणी, प्रतापी, रणधीर मेरा।
वही अकेला मम वंश-वृक्ष
　　न पुत्र लाखो उसके समक्ष ॥

( २० )

सारे गुणो मे वह अद्वितीय
　　आज्ञानुकारी सुत है मदीय।
गाऊँ कहाँ लो उसकी कथा मैं,
　　होने न दूँगा उसको व्यथा मै ॥

( २१ )

असह्य ज्यो सत्यवती-वियोग,
　　त्यो इष्ट देवव्रत-राज्य-भोग।
न किन्तु दोनो सुख ये मिलेंगे,
　　न प्राण मेरे सुख से खिलेंगे ॥

( २२ )

कैवर्त्त से सत्यवती सही मैं
　　लूँ छीन, चाहूँ यदि आज ही मैं।
परन्तु ऐसा करना अनीति,
　　अन्याय, दुष्कर्म, अधर्म-रीति ॥

( २३ )

हो पूर्ण न मनोरथ आज नष्ट,
　　दूँगा प्रजा को न परन्तु कष्ट।
सदा प्रजा-पालन राज-धर्म
　　कैसे तजूँ मैं यह मुख्य कर्म ?

( २४ )

हैं पञ्चबाण स्मर, काम, मार,
　　नृ प्राण चाहे जितने प्रहार।
[illegible] नहीं करूँगा,
　　[illegible] का हरूँगा ॥

( २५ )

यों नित्य चिन्ता कर के नरेश,
　　न चित्त मे पाकर शान्ति-लेश।
ग्रीष्मार्त-पद्माकर के समान,
　　होने लगे क्षीण, दुखी महान ॥

( २६ )

भूपाल की व्याकुलता विलोक,
　　कुमार गाङ्गेय हुए सशोक।
अतः उन्होने नृप मन्त्रि द्वारा
　　जाना पिता का दुख हेतु सारा ॥

( २७ )

"स्वयं दुखी तात हुए मदर्थ
　　वात्सल्य ऐसा उनका समर्थ।
मै किन्तु ऐसा अति हूँ निकृष्ट,
　　जो देखता हूँ उनका अरिष्ट!"

( २८ )

यों सोच देवव्रत स्वार्थ त्याग
　　प्यारे पिता के हित सानुराग।
तुरन्त मन्त्री-वर के समेत
　　गये स्वयं धीवर के निकेत ॥

( २९ )

आया उन्हें धीवर गेह देख,
　　अभ्यर्थना की उनकी विशेष।
सवंश पूजा करके तुरन्त,
　　सौभाग्य माना अपना अनन्त ॥

( ३० )

सप्रेम बोला तब राज-मन्त्री—
　　माँगी सुता शान्तनु-शोक-हर्त्री।
परन्तु हा! धीवर ने न मानी,
　　चाही प्रतिज्ञा वह ही करानी ॥

( ३१ )

अमात्य ने खूब उसे मनाया,
　　अन्यान्य अर्थादि तथा सुनाया।
न किन्तु माना वह [illegible],
　　[illegible]

( ३२ )
परन्तु सो कोप अयोग्य जान,
गाङ्गेय ने शान्त किया प्रधान।
पुनः स्वयं वे निज वश-केतु
बोले पिता के दुख-नाश-हेतु॥

( ३३ )
"प्यारे पिता के हित दासराज!
दीजे स्वकन्या तज सोच आज।
है कामनायें जितनी तुम्हारी
हैं वे मुझे स्वीकृत मान्य सारी"॥

( ३४ )
पुनः उन्होंने कर को उठाके,
औदार्य निःस्वार्थ-भरा दिखा के।
प्यारे पिता के हित मोद पाके,
की यो प्रतिज्ञा सब को सुना के॥

( ३५ )
"है नाम देवव्रत सत्य मेरा,
है सत्य का ही व्रत नित्य मेरा।
अतः पिता के दुख-नाशनार्थ,
मैं हूँ प्रतिज्ञा करता यथार्थ॥

( ३६ )
मैं राज्य की चाह नहीं करूँगा,
है जो तुम्हें इष्ट वही करूँगा।
सन्तान जो सत्यवती जनेगी,
राज्याधिकारी वह ही बनेगी॥

( ३७ )
विवाह भी मैं न कभी करूँगा,
आजन्म आद्याश्रम* में रहूँगा।
निश्चिन्त यो सत्यवती सुखी हो,
सन्तान से भी न कभी दुखी हो॥

( ३८ )
जो चाहते थे तुम दासराज,
मैंने किये सो प्रण सर्व आज।
जो जो कहो और वही करूँ मैं,
व्यथा पिता की जड से हरूँ मैं"।

* ब्रह्मचर्याश्रम।

( ३९ )
भीष्म-प्रतिज्ञा सुन भीष्म ऐसी,
हुई अवस्था जिसकी सु जैसी।
उसे दिखाना निज शब्द द्वारा
सामर्थ्य है मित्र! नहीं हमारा।

( ४० )
वे हाथ ऊँचा अपना उठाये,
दुर्धर्ष मुद्रा मुख की बनाये।
देखो महासागर से गभीर,
हैं भीष्म देवव्रत धीर, वीर॥

( ४१ )
पीछे उन्हीं के वह वाम ओर,
है जो खडा चित्त किये कठोर।
है राज-मंत्री वह स्वामि-भक्त,
विभ्रान्त, आश्चर्यित, वा विरक्त॥

( ४२ )
बायें उसी के करबद्ध, प्रार्थी,
खड़ा हुआ है वह दास स्वार्थी।
दृढत्व देवव्रत का विलोक,
हुए उसे क्या नहिं लाज, शोक?

( ४३ )
स्व-गेह आगे वह मुक्त-केशी,
है देखिए, सत्यवती सुवेशी।
दशा न जाती उसकी बखानी,
हुई उसे क्या कुछ आत्म-ग्लानी?

( ४४ )
जो तर्जनी को अधरस्थ धारे,
सो धीवर-स्त्री निज-गेह-द्वारे।
सन्तान को साथ लिये खडी है,
आश्चर्य्य के सागर में पड़ी है॥

( ४५ )
अपूर्व कैसा यह है चरित्र,
भीष्म प्रतिज्ञा अति ही पवित्र।
देखो उसी का यह दिव्य चित्र
विचित्र है चित्र विचित्र मित्र!

## ४-राधाकृष्ण की आँख-मिचौनी।

( १ )

ञ्जुल मयङ्क और भव्य भानु एक साथ
मानो हुए उदित अतीव अभिराम ये।
नो हैं कान्तिमान नलिनी और इन्दीवर
मानो मिले चम्पक-तमाल छविधाम ये॥
ो मणि-काञ्चन का योग मनोहारी यह
चञ्चला-पयोद मानो सोहते ललाम ये।
नों रति-काम, मानो प्रकटे हैं माया-ब्रह्म,
देखो, पूर्ण-काम शुभ-नाम श्यामा-श्याम ये॥

( २ )

यमुना-किनारे शिला-ऊपर प्रसन्न चित्त
बैठे देख एक बार राधा सुकुमारी को।
छिपे छिपे आये श्याम मूँदने प्रिया के दृग
हो गई परन्तु ज्ञात सारी घात प्यारी को॥
तब हँस बोलीं "चलो देखी चतुराई, रहो,"
ऊँचे किये हाथ तथा भेंटने बिहारी को।
खो मित्र! सरस्वती ने राजा रविवर्म्मा के
अङ्कित किया है इसी दृश्य मनोहारी को॥

( ३ )

खते ही बनती है चित्र की मनोहरता
वर्णन न हो सकती सुखमा अपार है।
ाते रति-काम अङ्ग अङ्ग पै निछावर हैं
और उपमानों की कथा का क्या विचार है?
ाता है तृप्ति मन रञ्चक भी इससे नहीं
दीखता नया ही यह दृश्य बार बार है।
ात हो नवीन नित्य सोई रमणीयता है,
सोई सुखमा है, सोई रूप शोभागार है॥

( ४ )

तपने में किया अञ्चल जिन्होंने दूर
धारण किये जो महा अनुपम ओज है।
कञ्चुक, कलश और कुञ्जर के कुम्भ तथा
रञ्जित विशेष जिन्हें सम्पुट सरोज हैं।
मिलती है एक भी न उपमा अनुकूल कहीं
हार गये यद्यपि कवीन्द्र कर खोज हैं।
शोभित अतीव कञ्चुकी में चन्द्रहार-युक्त
राधा के उरोजों से ये राधा के उरोज हैं।

( ५ )

त्याग पूर्ण चन्द्रमा से आज क्या विरोध-भाव
मेल करते हैं कञ्ज-संयुत मृणाल ये।
फूली हुई किंवा कल्पवृक्ष की लताएँ युग
लिपट रही हैं देख निकट तमाल ये॥
किंवा रसराज के गले में प्रेम-पाश निज
हर्षित हो आज रही शोभा-वधू डाल ये।
किंवा हुए ऊँचे भेटने को नन्द-नन्दन को
भूषणों से भूषित प्रिया के बाहु-जाल ये॥

( ६ )

फूले हुए कञ्चन के कञ्ज-कोष-मध्य यह
मानों जड़ी मोतियों की पंक्ति कान्तिमान है।
मानो शुभ्र शरद-सुधाकर के अङ्क-मध्य
तारावली शोभित महान रूपवान है॥
किंवा महा-शोभा-सुन्दरी के दिव्य दर्पण में
दामिनी के बिम्ब का विकास भासमान है।
देखिए, ब्रजेश्वरी के प्यारे मुख-मण्डल में
कैसी दीप्तिमान मन्द मन्द मुसकान है॥

( ७ )

मञ्जु मनोरञ्जन जो अञ्जन से रञ्जित हैं
भञ्जन किये जो मान खञ्जनों का हाल हैं।
होती मृगलोचनों में ऐसी महा शोभा कहाँ,
होते कहाँ ऐसे कमनीय मीन-जाल हैं॥
देखिए विचार वृषभानुनन्दनी के ये
क्या ही प्रेम-रस-भरे लोचन विशाल हैं।
मेरे जान मानो रूपसिन्धु के खिले ये कञ्ज
हरि-दृग-भृङ्ग जहाँ घूमते निहाल हैं॥

( ८ )

छावेंगे न नील-मणियों के तेज भूतल में
जल में भी सघन सिवार जल जावेंगे।
गावेंगे न गीत मदमत्त हो मलिन्द वृन्द
पक्षों को उभार के मयूर न सजावेंगे॥
आवेंगे न बाहर भुजङ्ग निज बाँबी से
गड़े गड़े वारिद न अंगों में समावेंगे।
पावेंगे न कोई ब्रजनारि के सिरोरुहों को
सारे उपमान एक साथ ही लजावेंगे।

( ९ )

रक्खे हुए हाथ पिया कन्धे पर पीछे खडे
देख रहे शोभा व्रजराज ये सुहाते है।
हटती है दृष्टि नही नेक मुखमण्डल से
जैसे चक्षु चन्द्र से चकोर न हटाते है॥
होते हैं जिसमे सभी लोक अनायास लीन
बार बार वेद जिसे सर्वाधार गाते है।
देखो उनके ही उसी हर्षित शरीर-मध्य
प्यारी-स्पर्श-दर्शन के हर्ष न समाते है॥

( १० )

दृग-फलदायी आहा! कैसे दिव्य दर्शन हैं
सुषमा अलौकिक न दृष्टि किसे आती है।
करते हैं प्रवेश मन, प्राण मानों आँखो में
किसकी न दृष्टि यहाँ नित्य ललचाती है॥
भूल जाता सुधि बुधि शरीर की भी कौन नहीं
किसके न अङ्गो मे उमङ्ग भर जाती है॥
चञ्चला-समेत घन श्याम देख मोर की सी
किसीकी न होती दशा मोद-मदमाती है?

---

## २५—रुक्माङ्गद और मोहिनी।

अथवा

प्रण-पालन।

( १ )

न्यायी, प्रजापालक, शूर, सन्मति,
था एक रुक्माङ्गद नाम भूपति।
सर्वत्र फैला उस का प्रताप था,
न राज्य मे रञ्चक मात्र पाप था॥

( २ )

लेने परीक्षा उस के सुकर्म की
वेदोक्त भूपोचित धैर्य्य-धर्म्म की।
भेजी सुरो ने मिल एक अप्सरा,
थी मोहिनी नामक जो मनोहरा॥

( ३ )

अपूर्व शोभा उस की निहार के
दिव्याङ्गना भूप उसे विचार के।
सराह जी मे विधि-कौशलाद्भुत
हो मुग्ध बोले यह प्रेम सयुत—

( ४ )

"लज्जाभिनम्रे! प्रियदर्शने! अहो!
क्या चाहती हो तुम, कौन हो कहो।
कुलीनता वा गुरुता, पवित्रता,
बता रहा है तव रूप ही स्वतः॥

( ५ )

"अवश्य कोई तुम दिव्य सुन्दरी,
रहो हमारे गृह सद्गुणागरी।
जो जो कहोगी तुम चन्द्रिकोपम!
पूरी करेंगे तव कामना हम,,॥

( ६ )

वाग्दान यो देकर, योग्य रीति से
लाये उसे वे निज गेह प्रीति से।
सन्तुष्ट होके तब प्रेम मे पगे
सानन्द दोनो सुख भोगने लगे॥

( ७ )

एकादशी के दिन एक बार हा!
यो मोहिनी ने नरपाल से कहा—
"दिव्यान्न है षडरस-युक्त प्रस्तुत,
आओ करें भोजन प्रीति-सयुत"

( ८ )

यो मोहिनी की सुन बात दुस्सह,
तत्काल रुक्माङ्गद ने कहा यह—
"एकादशी का व्रत आज नैगम,
कैसे चलें भोजन को कहो हम"?

( ९ )

महीप ने यो उससे कहा जब
हो रुष्ट बोली वह सुन्दरी तब,
"था क्या तुम्हारा प्रण भूपते! यही,
न याद किवा उस को तुम्हें रही!!

( १० )

"सोचो कहा था तुम ने नरोत्तम !
पूरी करेंगे तव कामना हम"।
सो हो प्रतिज्ञा तुम टालते अब.
है क्या अहो ! धार्मिकता यही तव ?

( ११ )

"या तो अभी भोजन आप कीजिये,
कुमार का या सिर काट दीजिये।
प्यारा नहीं तो निज धर्म्म त्यागिये,
न हूजिये मोहित भूप ! जागिये" ॥

( १२ )

ये मर्म्म-भेदी सुन वाक्य भूपति
वे दग्ध की भाँति दुखी हुए अति।
बैठे मही में निज थाम के सिर,
यों मोहिनी से कहने लगे फिर— ॥

( १३ )

"यों क्रूर वाणी कहते हुए मुझे,
दया न आई सुकुमारि ! क्या तुझे ?
अवश्य ही तू डर-हीन है अहो !
क्यों अन्यथा यों कहती कठोर हो ॥

( १४ )

"तू देखने में अति दिव्य, कोमल,
है किन्तु तेरे मन में हलाहल !
हुआ मुझे हा ! यह आज ज्ञात है
सुधांशु में भी गरल-प्रपात है ॥

( १५ )

"जो प्राण ही की अति चाह हो तुझे,
न और की जो परवाह हो तुझे।
हा रक्त की ही तुझ को तृषा यहाँ,
तो [illegible] लेती मम शीश क्यों नहीं ?

( १६ )

"कुमार मेरा सुकुमार-गात्र है
[illegible] यह एक मात्र है।
[illegible]
[illegible]

( १७ )

"अल्पायु है, किन्तु मदर्थ निश्चय
सहर्ष देगा वह शीश निर्भय।
परन्तु हा ! हा ! यह कार्य्य दुष्कर,
स्वयं करेंगे मम पाणि क्यों कर ?

( १८ )

"एकादशी के दिन आर्य्य-भक्त को
है देखना भी नहिं योग्य रक्त को।
परन्तु हा ! रक्त बहा स्वयं घना
मुझे पड़ेगा सुत शीश काटना !

( १९ )

"क्या हाय ! मेरे इस दीर्घ भाल में
यही लिखा था विधि ! जन्म-काल में !
दुर्दैव ! मैंने अपराध क्या किया ?
यों प्राण से भी गुरु दण्ड जो दिया।

( २० )

"चाहे बिना ही अयि मृत्यु तू सदा
है प्राप्त होती सब को स्वयं यदा।
तू चाहने से फिर है दयावती !
क्यों प्राप्त होती मुझ को न सम्प्रति ?"

( २१ )

हुई उन्हें यों कहते अचेतना
होती महा घोर अनिष्ट चिन्तना।
जाना सभी ने इस बात को तुरत,
होते बुरे वृत्त तुरन्त विश्रुत ॥

( २२ )

अचेत होने पर भी नृपाल को
मिली अहो ! शान्ति न दीर्घ काल को !
किये गये जो उपचार सत्वर
मानों हुये वे अपकार दुष्कर ॥

( २३ )

सुने समाचार कुमार ने जब
अत्यन्त आनन्द हुआ उसे तब।
माता पिता के हित शीश दान के
[illegible] दे।

( ९ )

रक्खे हुए हाथ पिया कन्धे पर पीछे खडे
देख रहे शोभा व्रजराज ये सुहाते हैं।
हटती है दृष्टि नहीं नेक मुखमण्डल से
जैसे चक्षु चन्द्र से चकोर न हटाते हैं॥
होते हैं जिसमे सभी लोक अनायास लीन
बार बार वेद जिसे सर्वाधार गाते हैं।
देखो उनके ही उसी हर्षित शरीर-मध्य
प्यारी-स्पर्श-दर्शन के हर्ष न समाते हैं॥

( १० )

दृग-फलदायी आहा! कैसे दिव्य दर्शन हैं
सुषमा अलौकिक न दृष्टि किसे आती है।
करते हैं प्रवेश मन, प्राण मानों आँखो मे
किसकी न दृष्टि यहाँ नित्य ललचाती है॥
भूल जाता सुधि बुधि शरीर की भी कौन नहीं
किसके न अङ्गो में उमङ्ग भर जाती है॥
चञ्चला-समेत घन श्याम देख मोर की सी
किसीकी न होती दशा मोद-मदमाती है?

---

## २५—रुक्माङ्गद और मोहिनी।

अथवा

प्रण-पालन।

---

( १ )

न्यायी, प्रजापालक, शूर, सन्मति,
था एक रुक्माङ्गद नाम भूपति।
सर्वत्र फैला उस का प्रताप था,
न राज्य में रञ्चक मात्र पाप था॥

( २ )

लेने परीक्षा उस के सुकर्म की
वेदोक्त भूपोचित धैर्य्य-धर्म्म की।
भेजी सुरो ने मिल एक अप्सरा,
श्री मोहिनी नामक जो मनोहरा॥

( ३ )

अपूर्व शोभा उस की निहार के
दिव्याङ्गना भूप उसे विचार के।
सराह जी में विधि-कौशलाद्भुत
हो मुग्ध बोले यह प्रेम सयुत—

( ४ )

"लज्जाभिनम्रे! प्रियदर्शने! अहो!
क्या चाहती हो तुम, कौन हो कहो
कुलीनता वा गुरुता, पवित्रता,
बता रहा है तव रूप ही स्वतः॥

( ५ )

"अवश्य कोई तुम दिव्य सुन्दरी,
रहो हमारे गृह सद्गुणागरी।
जो जो कहोगी तुम चन्द्रिकोपम!
पूरी करेंगे तव कामना हम,,॥

( ६ )

वाग्दान यो देकर, योग्य रीति से
लाये उसे वे निज गेह प्रीति से।
सन्तुष्ट होके तब प्रेम मे पगे
सानन्द दोनो सुख भोगने लगे॥

( ७ )

एकादशी के दिन एक बार हा!
यो मोहिनी ने नरपाल से कहा—
" दिव्यान्न हैं षड्रस-युक्त प्रस्तुत,
आओ करें भोजन प्रीति-सयुत

( ८ )

यों मोहिनी की सुन बात दुस्सह,
तत्काल रुक्माङ्गद ने कहा यह—
"एकादशी का व्रत आज नैगम,
कैसे चलें भोजन को कहो हम"?

( ९ )

महीप ने यो उससे कहा जब
हो रुष्ट बोली वह सुन्दरी तब,
"था क्या तुम्हारा प्रण भूपते! यही,
न याद किंवा उस की तुम्हें रही!

( १० )

"सोचो कहा था तुम ने नरोत्तम !
पूरी करेंगे तव कामना हम"।
सो हो प्रतिज्ञा तुम टालते अब,
है क्या अहो ! धार्मिकता यही तव ?

( ११ )

"या तो अभी भोजन आप कीजिये,
कुमार का या सिर काट दीजिये।
प्यारा नहीं तो निज धर्म्म त्यागिये,
न हूजिये मोहित भूप ! जागिये" ॥

( १२ )

ये मर्म्म-भेदी सुन वाक्य भूपति
वे दग्ध की भाँति दुखी हुए अति।
बैठे मही मे निज थाम के सिर,
यो मोहिनी से कहने लगे फिर— ॥

( १३ )

"यो क्रूर वाणी कहते हुए मुझे,
दया न आई सुकुमारि ! क्या तुझे ?
अवश्य ही तू उर-हीन है अहो !
क्यो अन्यथा यो कहती कठोर हो ॥

( १४ )

"तू देखने में अति दिव्य, कोमल,
है किन्तु तेरे मन में हलाहल !
हुआ मुझे हा ! यह आज ज्ञात है,
सुधांशु में भी गरल-प्रपात है ॥

( १५ )

"जो प्राण ही की अति चाह हो तुझे,
न और की जो परवाह हो तुझे।
हो रक्त की ही तुझ को तृषा कहीं,
तो माँग लेती मम शीश क्यो नहीं ?

( १६ )

"कुमार मेरा सुकुमार-गात्र है,
राज्याधिकारी वह एक मात्र है।
अत्यन्त ही अल्प-वयस्क, छात्र है
कैसे हुआ सो तव कोप-पात्र है ?

( १७ )

"अल्पायु है, किन्तु मदर्थ निश्चय
सहर्ष देगा वह शीश निर्भय।
परन्तु हा ! हा ! यह कार्य्य दुष्कर,
स्वय करेंगे मम पाणि क्यो कर ?

( १८ )

"एकादशी के दिन आर्य्य-भक्त को
है देखना भी नहिं योग्य रक्त को।
परन्तु हा ! रक्त बहा स्वयं घना
मुझे पड़ेगा सुत शीश काटना !

( १९ )

"क्या हाय ! मेरे इस दीर्घ भाल में
यही लिखा था विधि ! जन्म-काल मे !
दुर्दैव ! मैने अपराध क्या किया ?
यो प्राण से भी गुरु दण्ड जो दिया।

( २० )

"चाहे बिना ही अयि मृत्यु तू सदा
है प्राप्त होती सब को स्वय यदा।
तू चाहने से फिर हे दयावती !
क्यों प्राप्त होती मुझ को न सम्प्रति ?"

( २१ )

हुई उन्हें यो कहते अचेतना
होती महा घोर अनिष्ट चिन्तना।
जाना सभी ने इस बात को द्रुत,
होते बुरे वृत्त तुरन्त विश्रुत ॥

( २२ )

अचेत होने पर भी नृपाल को
मिली अहो ! शान्ति न दीर्घ काल को !
किये गये जो उपचार सत्वर
मानें हुवे वे अपकार दुष्कर ॥

( २३ )

सुने समाचार कुमार ने जब,
अत्यन्त आनन्द हुआ उसे तब।
जाता पिता के हित शीश जान के
सौभाग्य माना अति मोद मान के ॥

( २४ )

"होगा पिता का प्रण पूर्ण सर्वथा,
भागी बनेंगे हम मोक्ष के तथा"।
यों सोच बोला वह हो सुखी मन,
आया बड़े काम अनित्य जीवन"!॥

( २५ )

स्वधर्म्म-रक्षार्थ महीप भी फिर
देते हुए प्रस्तुत पुत्र का सिर।
हैं त्यागते सज्जन प्राण तत्क्षण,
न त्यागते किन्तु कदापि है प्रण॥

( २६ )

हे मित्र देखो इस चित्र में सही
गया दिखाया सब दृश्य है यही।
धर्म्मार्थ देने सुत शीश देखिये
वे भूप रुक्माङ्गद खड्ग हैं लिये॥

( २७ )

समक्ष ही स्वस्थ खड़ा कुमार है,
वात्सल्य-आगार महा उदार है।
जो हो रही मूर्च्छित दर्शनीय है,
वीर-प्रसू सो जननी तदीय है॥

( २८ )

जो भामिनी भूप-समीप है खड़ी
है मोहिनी ही वह निष्ठुरा बड़ी।
वाग्बाण-द्वारा उन का दुखी मन
पुनः पुनः है करती विभेदन॥

( २९ )

"विलम्ब का है नृप काम क्या अब?
पूरा करोगे तुम धर्म्म को कब?
था जो तुम्हारा इस भाँति का हिया,
तो व्यर्थ ही क्यों प्रण पूर्व था किया?"

( ३० )

यों छोडते देख उसे गिरा-शिखा,
हो तात के सन्मुख कण्ठ को दिखा।
सानन्द मानो मुख से सुधा बहा,
कुमार ने यों नरपाल से कहा—॥

( ३१ )

"हे तात! दुःखी मन हूजिये हिये,
स्वधर्म्म-रक्षा कर पुण्य लीजिये।
"शुभस्य शीघ्रम्" यह याद कीजिये,
सानन्द मेरा सिर-दान दीजिये॥

( ३२ )

"अनित्य है जीवन, देह नश्य है,
कभी सभी को मरना अवश्य है।
धर्म्मार्थ देते सिर-दान सम्मुख,
तो चाहिये क्यों करना वृथा दुख"?

( ३३ )

कुमार से यों सुन के महीपति,
हो और भी व्याकुल चित्त मे अति।
विशाल-वक्षोपरि हाथ धार के,
बोले किसी भाँति दशा विसार के॥

( ३४ )

"जो धर्म्म ही को निज बन्धु जानते,
जो सत्य को ईश्वर तुल्य मानते।
न त्यागते जो जन वेद-पद्धति,
होती हरे! क्या उनकी यही गति!!!"

( ३५ )

हो शान्त ऐसा कह एक बार,
ज्यों ही लगे वे करने प्रहार।
हो व्यक्त त्यों ही हरि रोक हाथ,
बोले 'वरं ब्रूहि" धराधिनाथ॥

---

## २६—सलज्जा।

( १ )

कर धरे चिबुक पर रुचिर महा,
सङ्कुचित हुई सो खड़ी यहाँ।
अवलोक तुझे लज्जिते प्रिये!
लज्जित लज्जा भी आज हिये॥

( २ )

रसना-विहीन है दृष्टि यदा,
है रसना दृष्टि-विहीन सदा।
फिर तेरा अनुपम रूप अहा!
क्यों कर यथार्थ जा सके कहा? ॥

( ३ )

हो पुष्प-भार से नम्र लता
धारण करती जो सुन्दरता।
यह तेरी मञ्जुल-मूर्त्ति-छटा
देती है उसका मान घटा॥

( ४ )

कर ओट वदन को अञ्चल की
तूने जो दृष्टि अचञ्चल की।
जिसने यह रूप निहार लिया
मानों अपना मन हार दिया॥

( ५ )

लम्बित नितम्ब-पर्यन्त पड़े
हैं मानो काले नाग अड़े।
ये तेरे कोमल बाल बड़े
हर लेते हैं मन खड़े खड़े॥

( ६ )

होकर जब चन्द्र कलङ्कित भी
प्रकटित होते रुकता न कभी।
फिर तव मनोज्ञ मुख देख कहीं
आश्चर्य कौन जो छिपे नहीं॥

( ७ )

कुछ मुँदे और कुछ खुले हुए
सम-भाव परस्पर तुले हुए।
ये देख दिलोचन बड़े बड़े
शतपत्र सड़ेंगे पड़े पड़े॥

( ८ )

पाई न प्रभा पङ्कज गण में
देखी न लालिमा दर्पण में।
इन गोल कपोलों की सुषमा
रखती है एक नहीं उपमा॥

( ९ )

निकला प्रकोष्ट भर जो पट से
सटता सा कुछ जङ्घा-तट से।
शोभित तेरा दक्षिण कर यों
सरिता-तट सुन्दर पुष्कर ज्यों॥

( १० )

भेदन कर के आच्छादन को
तन की द्युति मोह रही मन को।
अति निपुण सघन-तम-नाशन में
छिपती न यथा चपला घन में॥

( ११ )

अवलोकन करती हुई मही
तू तो नीचे को देख रही।
जा सकता नहीं परन्तु कहा
जो कुछ तेरा मन देख रहा॥

( १२ )

यों देख तुझे हे मनोहरे!
आश्चर्य्य नहीं यदि जी न भरे।
सुखकर सुधांशु पर दृष्टि दिये
होते क्या तृप्त चकोर हिये?

---

## २७—सती सावित्री।

( १ )

सती सभी कुछ कर सकती हैं,
मरण-भीति तक हर सकती हैं।
सावित्री का चरित पवित्र,
इसका उदाहरण है मित्र!॥

( २ )

सुता अश्वपति नृप की प्यारी,
सावित्री थी अति सुकुमारी।
उस भूपति ने कर तप भारी,
पाई थी यह एक कुमारी॥

( ३ )

वह विवाह के योग्य हुई जब,
दी आज्ञा उसको नृप ने तब।
गुणी, प्रतापी और मनोहर,
बरै स्वयं सावित्री ही वर॥

( ४ )

पूज्य पिता की आज्ञा पाकर,
खोजा उसने निज समान वर।
सत्यवान कुल-शील-उजागर,
सर्व-गुणालङ्कृत नव नागर॥

( ५ )

राज्यच्युत निज अन्ध-पिता-युत,
सोच समय की गति अति अद्भुत।
गौतम मुनि के आश्रम वन में,
रहता था वह चिन्तित मन मे॥

( ६ )

थे उसमें सारे गुण शोभित,
जिन पर वह थी हुई प्रलोभित।
था पर वह अल्पायु विशेष,
एक वर्ष था जीवन शेष॥

( ७ )

पर सावित्री का चित इससे
हुआ न कुछ भी विचलित उससे।
कुल-कन्या अघ से डरती हैं,
एक वार ही वर बरती हैं॥

( ८ )

एक एक रमणी ज्यों सम्प्रति
कर सकती ग्यारह ग्यारह पति!
थी उस समय न सुलभ रीति यह,
क्यों रहती अन्यथा अटल वह?

( ९ )

फिर विवाह इसका विधान से,
शीघ्र हो गया सत्यवान से।
सेवा सास, ससुर, पति की नित,
तब यह करने लगी यथोचित॥

( १० )

एक दिवस वन में दम्पति जब,
समिधि ले रहे थे सहसा तब।
व्याकुल शिरोरोग से होकर,
सत्यवान गिर पड़े मही पर॥

( ११ )

सावित्री तत्क्षण ही पति को,
(एक मात्र उस अपनी गति को)
सावधान गोदी में रख कर,
हुई बहुत ही दुख से कातर॥

( १२ )

उसी समय अति भीम, भयङ्कर,
आ पहुचे यमराज वहाँ पर।
उसने देव जान कर उनको,
किया प्रणाम जोड़ कर उनको॥

( १३ )

फिर निज परिचय पूछे जाकर,
बोले यम यों उससे सादर।
सत्यवान को लेने आज
आया हूँ, मैं हूँ यमराज॥

( १४ )

धर्म्मात्मा जीवो को लेने,
उनको स्वर्ग-भोग सुख देने।
हे सुभगे! मै ही आता हूँ,
सादर उनको ले जाता हूँ॥

( १५ )

यों कह, सत्यवान के प्राण
लेकर, यम ने किया प्रयाण।
सावित्री भी हृदय थाम कर,
उनके पीछे चली धैर्य धर॥

( १६ )

देख उसे यम ने समझाया,
कई तरह से ज्ञान सुनाया'
पति-ऋण से जब मुक्त बताया,
बोली सत्यवान की जाया

( १७ )

पति ही स्त्री का धर्म्म, कर्म्म है,
　　पति ही जीवन-प्राण मर्म है।
पति-विहीन फिर हम अबला जन
　　रह सकती हैं क्योंकर भगवन्?

( १८ )

वारि-विहीन मीन रह सकती,
　　विधु-वियोग जोत्स्ना सह सकती।
रूपबिना रह सकती छाया,
　　रह सकती पति बिना न जाया॥

( १९ )

अर्द्धाङ्गी नर की नारी है,
　　वह न कभी उससे न्यारी है।
निगमागम कहते हैं ऐसे,
　　फिर पति सङ्ग तजूँ मैं कैसे?

( २० )

सुन कर उसके वचन मनोहर,
　　हुए बहुत सन्तुष्ट दण्ड-धर।
सत्यवान का जीव छोड कर,
　　उससे कहा माँगने को वर॥

( २१ )

अन्ध ससुर के लिये दृष्टि-कर
　　माँगा तब सावित्री ने वर।
एक बार यों ही सब गुण-युत,
　　माँगे उसने सौ औरस सुत॥

( २२ )

वचन बद्ध यमने, इस कारण,
　　की उसकी पति-मृत्यु-निवारण।
यों अनेक वर पाये उसने,
　　पति के प्राण बचाये उसने॥

---

## २८—प्राण-घातक माला।

( रघुवंश से अनुवादित )

( १ )

कर प्रजा-निरीक्षण एकबार सानन्द
　　वर-पुत्रवान अज प्रिया-सङ्ग स्वच्छन्द।
करने विहार यों लगे नगर-उपवन में
　　ज्यों शची-सङ्ग सुरपति नन्दन-कानन में॥

( २ )

　　गोकर्ण-निवासी शिव को गान सुनाने
दक्षिण-सागर तट वीणामृत बरसाने।
　　उस समय सूर्य्य का उदय अस्त-पथ-धारे
नारद मुनि दूजे सूर्य्य समान सिधारे॥

( ३ )

उनकी वीणा पर दिव्य प्रसूनों वाली
　　रक्खी थी माला एक महा छविशाली।
द्रुत मारुत ने की हरण उसे अविलम्बित
　　मानो अपने को सुरभित करने के हित॥

( ४ )

पुष्पों के पीछे चले मधुप जो लोभित
　　उनसे महती* उस समय हुई यों शोभित।
मानो समीर से व्यथित हुई दुख पाती
　　कज्जल से काले अश्रु गिराती जाती॥

( ५ )

सो दिव्य माल अति मधु सुगन्धि के द्वारा
　　कर मन्द लताओं का ऋतु-वैभव सारा।
अति उन्नत इन्दुमती के वक्षस्थल पर
　　दुर्दैव योग से गिरी अचानक आकर॥

( ६ )

अति रुचिर हृदय की क्षणिक सखी वह माला
　　अवलोकन कर नृप प्रिया हुई बेहाला।
फिर नष्ट हुई जीवन-प्रदीप की ज्योती
　　ज्यों राहु-ग्रसित-राकेश-कोमुदी होती॥

* महती=नारदमुनि की वीणा।

(७)

दी त्याग इन्द्रियों ने जिस की मृदु काया
उस गिरती ने पति को भी साथ गिराया।
भू-पतित तैल के बिन्दु-सङ्ग तत्काला
गिरती क्या भूपर नहीं दीप की ज्वाला?

(८)

उन दोनों के अनुचर लोगों का भारी
सुन रुदन अचानक हृदय-प्रकम्पन-कारी।
हंसादिक खग भी डर कर सरवर में सब
आत्मीय जनो के सदृश लगे रोने तब॥

(९)

व्यजनादिक समुचित उपचारों के कारण
नृप अज का तो हो गया मोह-विनिवारण।
पर इन्दुमती स्थित रही उसी विध निश्चल
देती है औषध आयु-शेष में ही फल॥

(१०)

तब हुई ज्ञात चैतन्य-बिना जो ऐसी
वेतार चढ़ी तन्त्री होती है जैसी।
उस प्राण-प्रिया को प्रकृत-प्रणयि ने कर से
रक्खा गोदी में यथा-स्थान आदर से॥

(११)

इन्द्रियाभाव से कान्ति-रहित कान्ता-युत
दृग्गोचर ऐसे हुआ भूप सो विश्रुत।
मृग-चिह्न-लिये अति मलिन महा दुख पाता
जैसे प्रभात के समय चन्द्र दिखलाता॥

(१२)

तज सहज धैर्य्य भी गद्गद हो कर दुख से
करने विलाप तब लगे महीपति मुख से।
हो तप्त लोह भी द्रवित आर्द्र होता है
फिर देह-धारियो का कहना ही क्या है?

(१३)

"जब देह-संग से दिव्य सुमन भी पल में
कर सकते आयु-विनाश अहो! भूतल में।
फिर ऐसा कौन पदार्थ हाय! त्रिभुवन में
आसक्त न घातक विधि के जो साधन में?

(१४)

"अथवा अन्तक जो सब का लय करता है
कोमल का कोमल ही से क्षय करता है।
पाले की मारी यहाँ पद्मिनी प्यारी
है मैंने अग्रिम उदाहरण निर्धारी॥

(१५)

"यह माला ही यदि जीवन को है हरती
तो हृदय-स्थित क्यो मेरा नाश न करती?
दुखकर विष भी हो सुधा कहीं दुख खोता
प्रभु की इच्छा से कहीं सुधा विष होता॥

(१६)

"मेरे अभाग्य से अथवा यह मृदु माला
कर दी है विधिने कुलिश-कठोर कराला।
करके जिसने तरु का न हाय! संहारा
उस तरु की आश्रित ललित लता को मारा॥

(१७)

"करने पर भी अपराध निरन्तर तेरा
है किया न तूने तिरस्कार जब मेरा।
फिर अब सहसा अपराध-हीन इस जन से
क्यों नहीं बोलती प्रिये! वचन आनन से?

(१८)

"हे शुभ्र-हासिनी, अनुपम-रूप-निधाना,
तूने ध्रुव मुझ को कपट-प्रणयि शठ जाना।
तब तो न पूछ कर कुछ मुझ से जाने को
तू चली गई परलोक न फिर आने को॥

(१९)

"प्यारी के पीछे हत जीवन यह मेरा
जो चला गया था उचित प्रेम का प्रेरा।
तो क्यो फिर उसके बिना लौट आया यह?
अतएव सहो अब कर्म-वेदना दुस्सह॥

(२०)

"ये सुरत-परिश्रम-जन्य स्वेद-कण प्यारे
तेरे आनन पर विद्यमान हैं सारे।
हो नष्ट तथा तू प्राप्त हुई परता को
धिक्कार प्राणियो की इस नश्वरता को॥

( २१ )

"मन से भी मैंने किया न विप्रिय तेरा
फिर करती है क्यों त्याग प्रिये ! तू मेरा।
हूँ पृथिवी का तो नाम मात्र को पति मैं
रखता तुझ में ही किन्तु हृदय की रति मैं॥

( २२ )

"पुष्पों से पूरित कुटिल और अति काली
कर कर के कम्पित यह तेरी अलकाली।
करभोरु ! पुनः तेरे आजाने का सा
करता है सूचन पवन मुझे दे आशा॥

( २३ )

"हे प्राणप्रिये ! इसलिये न करके देरी
है व्यथा मिटानी योग्य तुझे यों मेरी।
हेम-शैल-गुहा की तमोराशि भर पूर
करती ज्यों निशि में ज्वलित औषधी दूर॥

( २४ )

"मूँदे भीतर निशि में मिलिन्द रव-हीन
संकुचित अकेले कमल-समान मलीन।
बिखरी अलकों के सहित रहित-सम्भाषण
देता यह तेरा मुख मुझको दुख क्षण क्षण॥

( २५ )

"विधु को विभावरी और कोक को कोकी
फिर भी नित मिलती हुई गई अवलोकी।
सह सकने इस से वे वियोग-विपदा को
क्यों मुझे न मारेगी तू गई सदा को ?

( २६ )

"नव-पल्लव-शय्या पर भी बारम्बार
दुखती थी तेरी देह-लता सुकुमार।
वामोरु ! बता फिर जो द्रुत दहन करेगी
किस भाँति चिता का चढ़ना सहन करेगी ?

( २७ )

"क्रीडा-अभाव में मौन हुई कुछ वस ना
तेरी पहली एकान्त सखी यह रसना*।
अति निद्रित तेरे कठिन शोक की मारी
क्या नहीं दीखती मृतक हुई सी प्यारी ?

* रसना = तागड़ी ( कँ.नी )

( २८ )

"आलाप पिकों में गया मधुरताधारी
कलहंसी-गण में मन्द-गमन मनहारी।
मृगियों मे चञ्चल दृष्टि गई सुखकारी
कम्पित लतिकाओं में विलास-विधि सारी।

( २९ )

"यह सत्य, स्वर्ग की इच्छा करके जी में
तूने मेरे हित ये गुण तजे मही में।
पर तव वियोग ने जिसकी सुधि बुधि खोई
उस मेरे उर तक पहुँच न सकते कोई॥

( ३० )

"इस आम्र और इस रुचिर प्रियङ्गु-लता को
माना था तूने जोड़ सोच समता को।
सो किये बिना इनका विवाह मनमाना
इस भाँति प्रिये ! है उचित न तेरा जाना॥

( ३१ )

"यह तेरा पोषित किया अशोक मनोहर
उत्पन्न करेगा हाय ! सुमन जो सुन्दर।
वह तेरा अलकाभरणरूप कोमलतर
तव दाहाञ्जलि मे रक्खूँगा मै क्यों कर ?

( ३२ )

"मुखरित-नूपुर-युत दुर्लभ औरों को अति
तव चरण-अनुग्रह को विचार कर सम्प्रति।
पुष्पाश्रु गिराता हुआ प्रीति का प्रेरा
करता अशोक यह शोक सुतनु ! है तेरा॥

( ३३ )

"निज श्वासों के अनुकरणशील सुखदायी
वर-बकुल-प्रसूनों की रसना मनभाई।
कलकण्ठि ! गूँथ कर मेरे सङ्ग अधूरी
सोती है कैसे किये बिना ही पूरी ?

( ३४ )

"सुख-दुख के साथी सदा सखी जन सारे
सित-पक्ष-चन्द्र सम सुत यह शोभाधारे।
मैं अनुरागी हूँ एकमात्र तेरा ही
व्यवहार तदपि तेरा कठोर उरदाही॥

( ३५ )

"होगया धैर्य्य सब आज विनष्ट हमारा,
रति-क्रीडा निबटी, मिटा ऋतूत्सव प्यारा।
गहनों का पूरा हुआ प्रयोजन सारा
शय्या सूनी होगई, गेह अँधियारा॥

( ३६ )

"गृहिणी, मन्त्री, एकान्त-सखी, अति कान्ता,
सङ्गीत-कला की प्रिय शिष्या शुचि शान्ता।
कर निर्दयता से हरण मृत्यु ने तुझ को
क्या किया न मेरा हरण बता तू मुझ को?

( ३७ )

"मम मुख मे अर्पित हास-विलास-प्रकाशी
मद-लोचनि! पीकर मधुरासव श्रमनाशी।
दृग-जल से दूषित जलाञ्जली निज मुख से
किस भाँति पियेगी अन्य लोक में सुख से?

( ३८ )

"रहने पर भी ऐश्वर्य्य बिना तेरे अब
अज-सुख गिनना चाहिए यहाँ तक ही सब।
आकृष्ट अन्य विषयो से निश्चय मेरे
थे आश्रित सारे भोग सर्वदा तेरे"॥

---

## २६—कीचक की नीचता।

( १ )

करने को अज्ञात-वास अपना पूरा जब
नृप विराट के यहाँ रहे छिप कर पाण्डव सब।
एक समय तब देख द्रौपदी की शोभा अति,
उस पर मोहित हुआ नीच कीचक सेनापति।
यो हुई प्रकट उसकी दशा
दृग्गोचर कर रूप वर—
होता अधीर ग्रीष्मार्त गज
पुष्करणी ज्यो देख कर॥

( २ )

यद्यपि दासी बनी वस्त्र पहने साधारण,
मलिन वेश द्रौपदी किये रहती थी धारण।
वस्त्रानल सम किन्तु छिपी रह सकी न शोभा,
दर्शक जन का चित्त और भी उस पर लोभा।
अति लिपटी भी शैवाल म
कमल-कली है सोहती।
घन सघन घटा मे भी घिरी
चन्द्रकला मन मोहती॥

( ३ )

"हे अनुपम सौन्दर्य-राशि! कृशतनु, अति प्यारी,
बलिहारी यह रुचिर रूप की छटा तुम्हारी।
हो दासी के योग्य अहो! क्या तुम सुकुमारी?
सुधि बुधि जाती रही देख कर जिसे हमारी।
इन दृग बाणों से विद्ध यह
मन मेरा जब से हुआ।
है खान, पान, शयनादि सब
विप समान तब से हुआ॥

( ४ )

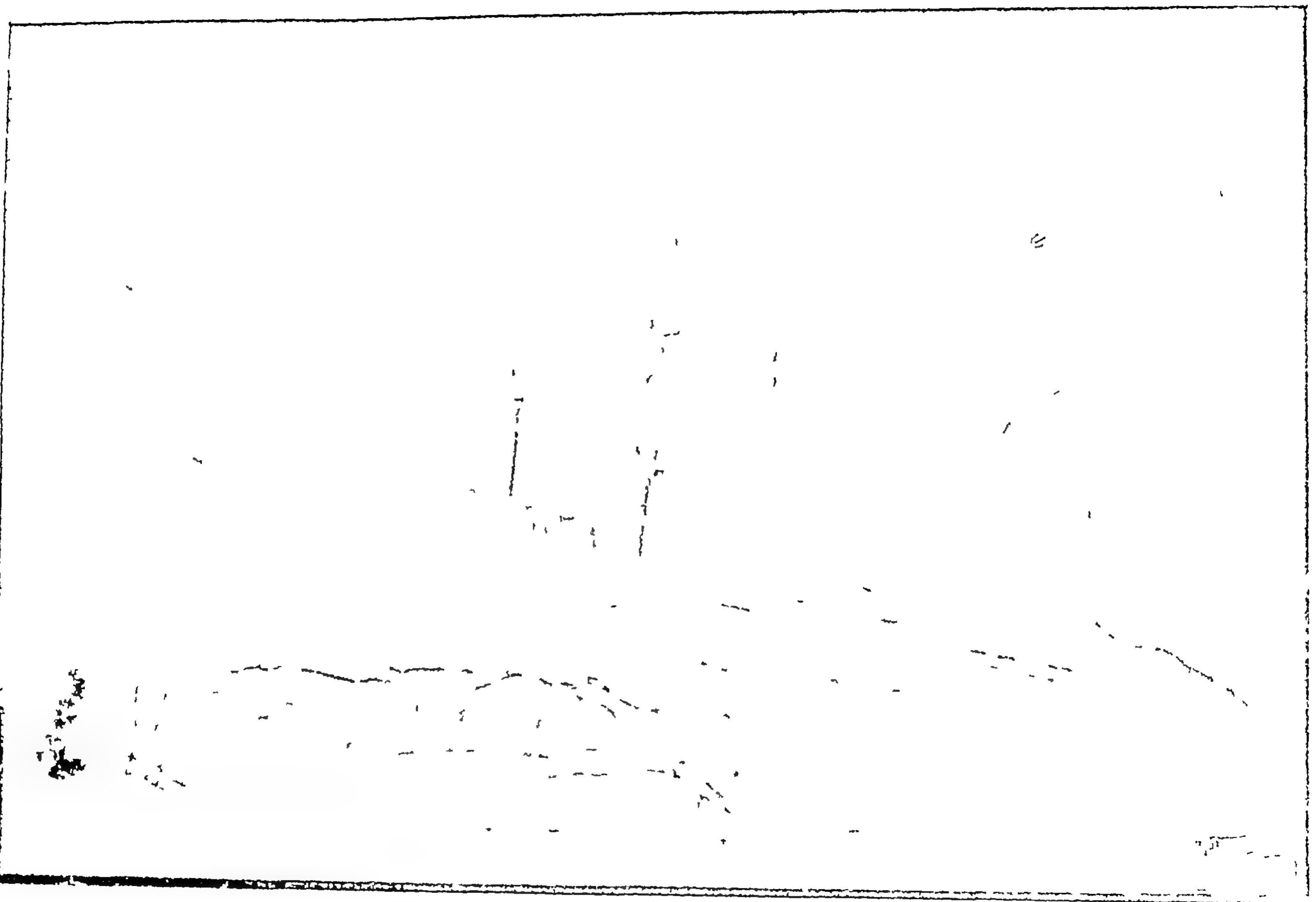
"अब हे रमणी-रत्न! दया कर नेक निहारो,
अपने पर छल-रहित हमारी प्रीति विचारो।
हमे सदा निज दास जान हम पर अनुरागो,
रानी बन कर रहो वेश दासी का त्यागो।
है होती यद्यपि खान मे
किन्तु न रहती है वहाँ।
मणि, मञ्जु मुकुट ही मे उचित
पाती है शोभा महा"।

( ५ )

उसके ऐसे वचन श्रवण कर राजसदन में,
जलने कृष्णा लगी रोप से अपने मन में।
किन्तु समय के देख किसी विध धीरज धरके,
कहने उससे लगी शान्ति से शिक्षा करके।
है वेग यदपि अनिवार्य अति
होता मनोविकार में।
समयानुसार ही कार्य्य बुध
करते है ससार में॥

( ६ )

"अहो सूत-सुत शूर! वचन ये विपधारा से
है क्या कहने योग्य तुम्हें मुझ पर दारा से?



**कीचक की नीचता।**

विराट पृथ्वीपति की सभा में, भ्रलुण्ठिता, कीचक की सताई।
न्यायार्थ, देखो, नृप के समक्ष, प्रार्थी हुई है यह याज्ञसेनी॥

जो तुम से ही लोग कहीं अनरीति करेंगे,
तो फिर कौन मनुष्य धर्म्म का ध्यान धरेंगे ?
नर होकर इन्द्रिय गण-विवश
करते नाना पाप हैं।
निज अहित-हेतु अविवेकि जन
होते अपने आप हैं॥

( ७ )

"राजोचित सुख-भोग तुम्हीं को हो सुखदाता
कर्म्मों के अनुसार जीव जग में फल पाता।
रानी ही यदि किया चाहता मुझे विधाता,
तो दासी-कुल-मध्य प्रथम ही क्यों प्रकटाता।
है धर्म्म-सहित रहना भला
सेवक बन कर भी सदा।
यदि मिले पाप से राज्य भी
त्यागनीय है सर्वदा॥

( ८ )

"इस कारण हे वीर! न तुम यों मुझे निहारो,
पाप कर्म्म की ओर न अपना हाथ पसारो।
निज माँ बहिन समान सदा पर-दार विचारो,
होवे तव कल्याण, धर्म्म पथ पर पद धारो।
इस अपने अनुचित कर्म्म को
माँगो ईश्वर से क्षमा।
है वह कृपालु कलि-कलुष-हर
करुणामय परमातमा"॥

( ९ )

कृष्णा ने इस भाँति उसे बहु विध समझाया,
किन्तु एक भी वचन न उसके हृदय समाया।
मदमत्तों को यथायोग्य उपदेश सुनाना—
है ज्यों ऊसर-भूमि-मध्य पानी बरसाना।
हैं कर सकते जो जन नहीं
मनो-दमन अपना कभी।
उनके समक्ष शिक्षा कथन
निष्फल होता है सभी॥

( १० )

"रहने दो यह ज्ञान, ध्यान ग्रन्थों की बातें
आती बारम्बार न यौवन की दिन-रातें।
करिये जग में वही काम जो हो मनमाना;
क्या होगा मरणोपरान्त किसने है जाना ?
जो भावी की आशा किये
वर्त्तमान सुख छोड़ते।
वे मानो अपने आप ही
निज हित से मुँह मोड़ते"॥

( ११ )

कह कर ऐसे वचन वेग से बिना विचारे,
हो आतुर अत्यन्त काम-वश दशा-बिसारे।
सहसा उसने पकड़ लिया कृष्णा के कर को,
मानो कर से मत्त नाग ने पङ्कज-वर को॥
यह लख कीचक की नीचता
कृष्णा अति क्षोभित हुई।
कर चख चञ्चलता से चकित
शम्पा सम शोभित हुई॥

( १२ )

"अरे नराधम नीच! लाज कुछ तुझे न आती;
निश्चय तेरी मृत्यु निकट आई दिखलाती"।
कह कर यों, निज हाथ छुड़ाने को उस खल से,
तत्क्षण उसने दिया एक झटका अति बल से॥
तब सहसा मुँह के बल वहाँ
मदोन्मत्त वह गिर पड़ा।
ज्यों प्रबल वायु के वेग से
गिर पड़ता है तरु बड़ा॥

( १३ )

तब विराट की सभा मध्य निज विनय सुनाने,
उस पापी को कुटिल कर्म्म का दण्ड दिलाने।
कच, कुच और नितम्ब भार से खेदित होती,
गई किसी विध शीघ्र द्रौपदी रोती रोती।
उस अबला द्वारा भूमि पर
गिरने से क्रोधित महा।
झट उसे पकड़ने के लिए
दौड़ा कीचक भी वहाँ॥

( १४ )

कृष्णा पर कर कोप शीघ्र झपटा वह ऐसे—
चन्द्रकला की ओर राहु झपटा हो जैसे।

सभा मध्य ही लात उसे उस खल ने मारी
छिन्न लता सम गिरी भूमि पर वह सुकुमारी।
यह घटना पाण्डव देख कर
व्याकुल हुए नितान्त ही।
पर प्रण पालन हित वीर वे
रहे किसी विध शान्त ही॥

( १५ )

सम्बोधन कर सभा मध्य फिर मत्स्यराज को,
बोली कृष्णा वचन सुनाकर सब समाज को।
सरस कण्ठ से त्वेष पूर्ण कहती वर वाणी,
अद्भुत छवि को प्राप्त हुई तब वह कल्याणी।
थी ध्वनि यद्यपि आवेगमय
थी परन्तु कर्कश नहीं।
मानों उसने बातें सभी
वीणा के द्वारा कहीं॥

( १६ )

"पाती है दुख जहाँ राजगृह मे ही नारी,
करते अत्याचार अधम जन उन पर भारी।
सब प्रकार विपरीत जहाँ की रीति निहारी,
अधिकारी ही स्वय जहाँ हैं पापाचारी।
है लज्जा रहनी अति कठिन
भले मानसो की जहाँ।
हे मत्स्यराज! किस भाँति तुम
बने प्रजापालक वहाँ?॥

( १७ )

"छोड धर्म्म की रीति, तोड मर्यादा सारी,
भरी सभा में लात मुझे कीचक ने मारी।
उसका यह अन्याय देख कर भी दुखदायी,
न्यायासन पर रहे मौन जो बन कर न्यायी।
हे वयोवृद्ध नरनाथ! क्या
यही तुम्हारा धर्म्म है?
क्या यही तुम्हारी कीर्त्तिमय
राजनीति का मर्म्म है?॥

( १८ )

"प्राणो से भी अधिक पाण्डवो की जो प्यारी,
दासी हूँ मै उसी द्रौपदी की प्रियकारी।
हाय! आज दुर्दैव विवश फिरती हूँ मारी,
वचन-बद्ध हो रहे वीर-वर वे व्रतधारी।
करता प्रहार उन पर न यो
हतविधि जो कर्कश कशा।
तो होती मेरी क्यो यहाँ
इस प्रकार यह दुर्दशा॥

( १९ )

"अहो दयामय धर्म्मराज! तुम आज कहाँ हो?
पाण्डु वंश के कल्पवृक्ष महाराज कहाँ हो?
विना तुम्हारे आज यहाँ अनुचरी तुम्हारी
हो कर यों असहाय हाय! पाती दुख भारी।
जो सर्व गुणो के शरण तुम
विद्यमान होते यहाँ।
तो इस दासी पर देव! क्यो
पड़ती यह विपदा महा?

( २० )

"तुम से प्रभु की कृपा-पात्र होकर भी दासी,
मै अनाथिनी सदृश यहाँ जाती हूँ त्रासी।
जब अजातरिपु! बात याद मुझको यह आती,
जाती छाती फटी दु:ख दूना मैं पाती।
है करदी जिसने लोप सी
इन्द्रायुध की भी कथा।
हा! रहते उस गाण्डीव के
हो मुझको ऐसी व्यथा!

( २१ )

"जिस प्रकार है यहाँ मुझे कीचक ने घेरा,
होता जो वृत्तान्त विदित तुमको यह मेरा।
तो क्या दुर्जन, दुष्ट, दुराचारी यह कामी,
रहता जीवित कभी तुम्हारे कर से स्वामी!
तुम इस अधर्म्म-अन्याय को
देख नहीं सकते कभी।
हे वीर! तुम्हारी नीति की
उपमा देते हैं सभी॥

( २२ )

'है अभाग्य ने दूर कर दिया तुम से जिसको,
मुझे छोड़ कर और विपद होती यो किसको?

यह सब दुर्दैव-योग, इसका क्या कहना,
कुछ अपने लिये न मेरा यहाँ उलहना।
पर जो मेरे सम्बन्ध से
होता तव अपमान है।
हे कृतलक्षण* ! केवल यही
चिन्ता मुझे महान है" ॥

( २३ )

न कर वचन विचित्र याज्ञसेनी के ऐसे,
सी ही रह गई सभा चित्रित हो जैसे।
ग्र भाव से कथित गिरा उसकी विशुद्ध वर,
क साथ ही गूँज गई उस समय वहाँ पर।
तब ज्यों त्यों कर के शीघ्र हो
अपने मन को रोक के।
यों धर्म्मराज कहने लगे
उसकी ओर विलोक के—॥

( २४ )

: सैरिन्ध्री ! व्यग्र न होकर धीरज धारो,
विराट प्रति वचन न यों निष्ठुर उच्चारो।
य मिलेगा तुम्हें शीघ्र महलों मे जाओ;
 विदित है जिन्हें न नृप को दोष लगाओ।
है शक्ति पाण्डवो की किसे
ज्ञात नहीं संसार में।
चलता परन्तु किसका कहो
वश विधि के व्यापार में" ?

( २५ )

र्मराज का मर्म्म समझ, हो नत मुखवाली,
न्तःपुर मे चली गई तत्क्षण पाञ्चाली।
ग समय फिर दूर हुआ उसका दुख सारा,
मसेन ने महा नीच कीचक को मारा।
हो चाहे कैसा ही प्रबल
यह अति निश्चित नीति है—।
है मारा जाता शीघ्र ही
करता जो अनरीति है॥

---

* कृतलक्षण=गुणो से पामर।

## ३०—अर्जुन और सुभद्रा।

( १ )

अर्जुन और सुभद्रा का यह चित्र मनोहर,
"सरस्वती" है आज प्रकाशित करती सुन्दर।
रविवर्म्मा का रुचिर चित्र-चातुर्य-नमूना,
किसी अंश मे नहीं जान पडता यह ऊना॥

( २ )

"जो हो जैसे दृश्य प्रकट जिस जिस प्रसङ्ग पर,
उन्हें दिखावे ज्यो के त्यो जो वही चित्रकर।"
है जो यह प्रख्यात चित्रकारो का लक्षण,
उसका है दृष्टान्त मित्र! यह चित्र विलक्षण॥

( ३ )

लिखनी चहिये बात जहाँ पर जो थी जैसी,
ठीक ठीक वह लिखी गई है देखो कैसी।
कोई मनोविकार छूटने यहाँ न पाया,
किस प्रकार से चित्रकार ने उन्हे दिखाया॥

( ४ )

कई वर्ष तक नाना तीर्थों में विचरण कर,
गये द्वारका मुदित चित्त जब पार्थ वीर-वर।
वहाँ कृष्ण भगवान सङ्ग रैवतक शैल पर,
करने लगे विहार विविध विध नये निरन्तर॥

( ५ )

वहाँ एक दिन एक दूसरे को निहार कर,
अर्जुन और सुभद्रा मोहित हुए परस्पर।
होते कैसे नही रूप गुण में वे सम थे,
किसी बात में नहीं किसी से कोई कम थे॥

( ६ )

राम कृष्ण की बहिन सुभद्रा अति प्यारी थी,
रूपवती गुणवती रती-सम सुकुमारी थी।
थी जैसी उस विधु-वदनी की अद्भुत सुखमा,
हार गये कवि खोज खोज पर मिली न उपमा॥

( ७ )

जान गये भगवान प्रेम दोनो का मन में,
अन्तर्यामी से क्या छिप सकता त्रिभुवन मे?
थी अथवा उनकी हो यह इच्छा सुखकारी,
वही जान सकते है अपने भेद मुरारी॥

( ८ )

तदनन्तर अर्जुन ने श्रीहरि की सम्मति से,
बिठला कर उनके ही रथ में अतिद्रुतगति से।
किया सुभद्रा-हरण मार्ग से ही बलपूर्वक,
उसी समय का चारु चित्र यह है सुखदायक॥

( ९ )

गमनशील उस गजगामिनि की राह रोक कर,
भुज-पञ्जर में लिया पार्थ ने जब सहसा भर।
भय, लज्जा, सङ्कोच, प्रेम, सात्विक समयोचित,
हुए सुभद्रा-मुख पर नाना भाव सुशोभित॥

( १० )

नगर ओर उस समय सुभद्रा घर जाती थी,
देव-विप्र-रैवतक पूज कर वह आती थी।
मन्द चाल से वह मराल को सकुचाती थी,
बार बार कच-भार लङ्क लच लच जाती थी॥

( ११ )

हलधर ने सब हाल किन्तु जब यह सुन पाया,
विद्युद् वेग समान रोष सत्वर हो आया।
मदिरारुण-दृग हुए और भी अति अरुणारे,
जवा-पुष्प पद्म में मानो प्रकट निहारे॥

( १२ )

सुधि बुधि जाती रही कोप के कारण सारी,
अर्जुन-वध के लिए हुए वे व्याकुल भारी।
दुर्योधन के साथ सुभद्रा व्याह प्रीति से,
थे करना चाहते शीघ्र वे यथारीति से॥

( १३ )

देख हाल यह वासुदेव ने उन्हें मनाया,
सब प्रकार से उन्हें विनय-पूर्वक समझाया।
फिर अर्जुन को प्रेम सहित हरि ने लौटाया,
विधिपूर्वक कर दिया व्याह उनका मनभाया॥

( १४ )

करने लगी विलास मोद से फिर वह जोड़ी
विविध भांति सुख-भोग प्रीति-रस-रीति निचोड़ी।
महावीर अभिमन्यु पुत्र उसने उपजाया,
महारथी वीरों का जिसने गर्व गिराया॥

---

# ३१—दमयन्ती और हंस।

( १ )

प्रियवर! यह देखो मञ्जुलालोक-माला,
अनुपम दमयन्ती भीम-भूपाल-बाला।
नल-विषयक बातें छोड़ के काम सारे,
श्रवण कर रही है हंस से ध्यान धारे॥

( २ )

वह अपर खगों सा है न सामान्य हंस;
विदित यह वही है ब्रह्म-यान-प्रशंस।
नल पर करता है प्रेम अत्यन्त जी से;
प्रणय-वश यहाँ है आज आया इसी से॥

( ३ )

प्रकट मनुज-वाणी बोलता कीर जैसे
नल-गुण वह भी है गा रहा ठीक वैसे।
सहज सरस होती हंस-वाणी प्रतीत
तिस पर सुखकारी है महत्कीर्त्ति-गीत॥

( ४ )

प्रिय-गुण सुनने में चित्र सी ध्यानलग्ना
किस विध दमयन्ती हो रही प्रेममग्ना।
सुकवि इस दशा में जान पाते यही हैं—
श्रुति-गत सब मानो इन्द्रियाँ हो रही हैं॥

( ५ )

इस मुकुरमुखी से हंस ने जो कहा है
वह सुन इस का जी मुग्ध सा हो रहा है।
निज शुभ सुनने में कौन होता विरक्त?
प्रिय-ललित-कथा का कौन श्रोता न भक्त

( ६ )

"सचमुच दमयन्ती! तू मही-मध्य धन्य
जिस पर नल की है प्रीति ऐसी अनन्य।
निषध-नृपति भी त्यों सर्वथा भाग्यवान
विकल जिस बिना तू हो रही यों महान

( ७ )

गुण-गण तुझ में जो दिव्य दुष्प्राप्य सारे
नृप-वर नल में भी सो सभी हैं निहारे।
रति-मनसिज की सी लोचनानन्दकारी
सकुशल चिरजीवे योग्य जोड़ी तुम्हारी॥

( ८ )

व्यथित उस बिना ज्यो हो रही तू मलीन
तुझ बिन वह भी त्यो हो रहा क्षीण दीन।
विरह-दुख न देता एक ही ओर दैव,
प्रकट प्रणय दोनो ओर होता सदैव॥

( ९ )

वह नृपति यथा है रूप में दर्शनीय,
सकल शुभ गुणो में है तथा अद्वितीय।
सदयहृदय, न्यायी, साहसी, शूर, शुद्ध,
रथ-पथ उस का त्यो है कहीं भी न रुद्ध॥

( १० )

पतत हृदय हारी रूप मे अन्य काम,
विधु सम छवि में है नित्य नेत्राभिराम।
नृप-विभव में त्यो तेज मे भानु जैसा,
नल नृप बल में है आप ही आप ऐसा॥

( ११ )

स विपुल धरा मे हैं अनेको महीप;
पर नल सम कोई है न लोक-प्रदीप।
उदित बहुत होते व्योम में नित्य तारा,
पर तम हरता है सोम ही एक सारा॥

( १२ )

मिल कर रहती हैं शारदा-श्री न सङ्ग,
प्रकटित उन का है सर्वदा प्रीति-भङ्ग।
पर नल-सुकृतो से तुष्ट हो, मोद मान,
उस पर रखतीं वे प्रेम दोनों समान॥

( १३ )

वह मुख सुखकारी दिव्य ऊँचा ललाट
सुगठित वह नासा पीन वक्ष, कपाट।
वह दृग युग तारा बाहु आजानुलम्ब,
नल सम न कहीं है, रूप-शोभावलम्ब॥

( १४ )

नल-नृप-छवि जाती चित्र से भी न जानी
फिर सुन कर कैसे जा सके पूर्ण मानी?
समुचित उस को तू जानती है न खेद,
श्रवनि-गगन सा है श्रोत्र-दृष्टि-प्रभेद॥

( १५ )

अतिशय सुकुमारी, सुन्दरी, दिव्यदेही,
नल पर दमयन्ती मुग्ध थी पूर्व से ही।
कर अब उस की यो और भी प्रेम-वृद्धि,
इस द्विज-वर ने की शीघ्र ही कार्य्य-सिद्धि॥

---

## ३२—रण-निमन्त्रण।

( १ )

कौरव तथा पाण्डव परस्पर विजय की आशा किये
होने लगे जब प्रकट प्रस्तुत युद्ध करने के लिये।
उस समय निज निज पक्ष के राजा बुलाने को वहाँ
भेजे गये दोनों तरफ़ से दक्ष दूत जहाँ तहाँ॥

( २ )

फिर शीघ्र ही श्रीकृष्ण को निज ओर करने युद्ध में
देने उन्हें रण का निमन्त्रण निज-विपक्ष-विरुद्ध में।
लेने तथा साहाय्य उनसे और सर्व प्रकार का
दैवात् सुयोधन और अर्जुन सङ्ग पहुँचे द्वारका॥

( ३ )

उस समय सुन्दर सेज ऊपर सो रहे भगवान थे
गम्भीर, नीरव, शान्त, सुस्थिर, सिन्धु सम छविमान थे।
ओढ़े मनोहर पीत पट अति भव्य रूपनिधान थे
प्रत्यूष-आतप-सहित शुचि यमुना-सलिल उपमान थे॥

( ४ )

मुकुलित विलोचन युग्म उनके इस प्रकार ललाम थे
भीतर मधुप मूँदे हुए ज्यों सुभ सरसिज श्याम थे।
कच-निचय मुखमण्डल सहित यों सोहते अभिराम थे
घेरे हुए ज्यों सूर्य्य को घन सघन शोभा-धाम थे॥

( ५ )

नीलारविन्द समान तनु की अति मनोहर कान्ति से
शुचि हार-मुक्ता दीखते थे नीलमणि ज्यों भ्रान्ति से।
थे चिह्न कन्धों में विविध यों कुण्डलों के सोहते
मन्मथ-लिखित मानो वशीकर मन्त्र थे मन-मोहते॥

( ६ )

निःश्वास नैसर्गिक सुरभि यों फैल उनकी थी रही
ज्यों सुकृत-कीर्त्ति गुणी जनों की फैलती है लहलही।
सुकपोल करतल पर ललित यों दर्शनीय विशेष था
मृदु-नवल-पल्लव-सेज पर ज्यों पड़ा नक्षत्रेश था॥

( ७ )

शय्या वसन-सङ्घर्ष से जो हो रहे अति क्षीण थे
उन अङ्गरागों से रुचिर यों अङ्ग उनके पीन थे।
ज्यों शरद ऋतु में धवल घन के विरल खण्डों से सदा
होती सुनिर्मल नील नभ की छवि छटा मोदप्रदा॥

( ८ )

था शयन पाटाम्बर अरुण, झालर लगी जिसमें हरी
उस पर तनिक तिरछे पड़े थे पीतपट ओढ़े हरी।
वह दिव्य शोभा देख करके ज्ञात होता था यही-
मानों पुरन्दर-चाप सुन्दर कर रहा शोभित मही॥

( ९ )

ऐसे समय में शीघ्रता से पहुँच दुर्योधन वहाँ
श्रीकृष्ण के सिर ओर बैठा रुचिर आसन था जहाँ।
कुछ देर पीछे फिर वहाँ आकर बिना ही कुछ कहे
हरि के पदों की ओर अर्जुन नम्रता से स्थित रहे॥

( १० )

उस काल उन दोनों सहित शोभित हुए अति विष्णु यों
कन्दर्प और वसन्त-सेवित सो रहे हों जिष्णु* ज्यों।
फिर एक दूजे को परस्पर तुच्छ मन में लेखते
हरि जागरण की राह दोनों रहे ज्यों त्यों देखते॥

( ११ )

उस समय दोनों के हृदय में भाव बहु उठने लगे
पर कह सके कुछ भी न वे जब तक न पुरुषोत्तम जगे।
दो ओर से आते हुए युग जल-प्रवाह बहे बहे
मानो मनोरम शैल से हो बीचही में रुक रहे॥

( १२ )

कुछ देर में जब भक्तवत्सल देवकीनन्दन जगे
तब देख अर्जुन को प्रथम बोले वचन प्रियता-पगे।
"हे कुशल तो सब भाँति भारत! कहो आये हो कहाँ?
हो कार्य्य मेरे योग्य जो प्रस्तुत सदा मैं हूँ यहाँ"॥

* जिष्णु=इन्द्र

( १३ )

कहते हुए यों सेज पर निज पूर्व-तनु के भाग से
पर्यङ्क-तकिये के सहारे बैठ कर अनुराग से।
सब जान कर भी पार्थ को निज वचन कहने के लिये
दृग-कमल उनकी ओर हरि ने मुदित हो प्रेरित किये॥

( १४ )

तब देख उनकी ओर हँस कर कुछ विचित्र विनोद से
निज सिर झुकाते हुए उनको नम्र हो कर मोद से।
करते हुए कुरुनाथ का मुख-तेज निष्प्रभ सा तथा
यों कह सुनाई पार्थ ने संक्षेप में अपनी कथा—॥

( १५ )

"होते सुलभ सुख भोग जिससे भागते भव-रोग हैं
सो कृपा जिन पर आप की सकुशल सदा हम लोग हैं।
सम्प्रति समर-साहाय्य-हित, कर विनय, सुख पाकर महा
मैं हुआ देने 'रण-निमन्त्रण' प्राप्त सेवा में यहाँ"॥

( १६ )

कर्त्तव्य ही कुरुनाथ अपना सोचता जब तक रहा
कर लिया तब तक पार्थ ने यों कार्य्य निज ऊपर कहा।
यह शीघ्र घटना देख कर अति चकित सा वह रह गया
सब गर्व उसका उस समय नैराश्य-नद में बह गया॥

( १७ )

धिक्कार तब देता हुआ वह प्रथम आने के लिये
मन के विकारों को किसी विध रोक कर अपने हिये।
श्रीकृष्ण से मिल कर तथा पा कर उचित सत्कार को
कहने लगा इस भाँति उनसे त्याग सोच विचार को॥

( १८ )

"आया प्रथम गोविन्द! हूँ मैं आप के शुभ-धाम में
अतएव मुझको दीजिये साहाय्य इस संग्राम में।
मैं और अर्जुन आप को दोनों सदैव समान हैं
पै प्रथम आये को अधिकतर मानते मतिमान हैं"॥

( १९ )

श्रीकृष्ण बोले—"कहे तुमने उचित वचन विवेक से
तुम और पाण्डव हैं हमें दोनों सदा ही एक से।
तब प्रथम आने के वचन भी सब प्रकार यथार्थ हैं
पर हुए दृग्गोचर प्रथम मुझको यहाँ पर पार्थ हैं॥

( २० )

"जो हो, करूँगा युद्ध में साहाय्य दोनो ओर मैं
"लन करूँगा यह किसी विध आत्मकर्म कठोर मैं।
कोटि निज सेना करूँगा एक ओर सशस्त्र मैं
ऽ अकेला ही रहूँगा एक ओर निरस्त्र मैं॥

( २१ )

भाग निज साहाय्य के इस भाँति है मैं ने किये
ाकार तुम दोनो करो, हो जो जिसे रुचिकर हिये।
ण-खेत मे निज ओर से सेना लडेगी सब कहीं
र युद्ध की है बात क्या, मैं शस्त्र भी लूँगा नहीं"॥

( २२ )

सुनकर वचन यों पार्थ ने स्वीकार श्रीहरि को किया
कुरुनाथ ने नारायणी दश कोटि सेना को लिया।
व पार्थ से हँसकर वचन कहने लगे भगवान यो—
स्वीकृत मुझे तुमने किया है त्याग सैन्य महान क्यो?"

( २३ )

म्भीर होकर पार्थ ने तब यह उचित उत्तर दिया—
था चाहिए करना मुझे जो, है वही मैंने किया।
सैन्य क्या, मुझको जगत भी तुम बिना स्वीकृत नहीं
कृष्ण रहते हैं जहाँ सब सिद्धियाँ रहतीं वहीं"॥

---

## ३३—द्रौपदी-हरण।

( १ )

ज्जित हो अनुकूल वेश से अस्त्र शस्त्र सब धारे
बार वन-वासी पाण्डव थे मृगयार्थ सिधारे॥
समय उनके आश्रम में सिन्धु देश का स्वामी
र कृष्णा से यो बोला नृपति जयद्रथ कामी॥

( २ )

ासाद-निवासिनि भामिनि, कृशोदरी सुकुमारी,
-विदीर्ण इस कानन में क्यो सहती हो दुख भारी!
शित-कमल-अमल-जल-पूरित मानस से हो न्यारी
सकती क्यो मरुस्थली में राजहंसिनी प्यारी?

( ३ )

"दुर्लभ भोग-योग्य यौवन की तरुणावस्था ही में
"सुमन-सेज के योग्य देख यो तुमको विपिन-मही में।
"किस पाषाण-हृदय में तत्क्षण करुणा उदित न होगी?
"अहो! देवि, यह मूर्त्ति तुम्हारी क्या फिर मुदित न होगी

( ४ )

"चूडामणि-विहीन, रूखे से, रहे न जो घुँघराले,
"क्षीण-वीर्य्य मणि हीन सर्प की समता करने वाले।
"इन अपने उलझे केशो से तुम अनुपम अभिरामा
"शैवल-शेष ग्रीष्म-सरिता सी दिखलाती हो क्षामा॥

( ५ )

"लाक्षा-रस से राजभवन को रञ्जित करनेवाले,
"रुचिर नूपुरों के शब्दो से मन को हरनेवाले।
"हाय! तुम्हारे पाद पद्म ये क्षत-विक्षत कुछ द्वारा
"करते है अब नित्य रक्तमय दुर्गम वन पथ सारा॥

( ६ )

"दुस्सह विपिन-वास के कारण विविध कष्ट की मारी
"आभूषण-विहीन यह सुन्दर कोमल देह तुम्हारी।
"दीन, मलीन, व्यथित, व्याकुल है हाय! हो रही ऐसी
"हो जाती है हिम की मारी मृदुल कमलिनी जैसी॥

( ७ )

"खोकर राज पाट सब अपना पाण्डव हुए भिखारी,
"अहो! इसी कारण से तुम पर पडा दुःख यह भारी।
"फिर भी उन अज्ञानो को तुम प्रीतिसहित भजती हो
"हतभाग्यों को लक्ष्मी के सम क्यों न उन्हें तजती हो?

( ८ )

"हे कृष्णे! भ्रू-भङ्ग न करके सोचो बात हमारी,
"हार चुके जो द्यूत-दाव में तुम सी प्यारी नारी।
"अज्ञ नहीं तो और कौन हैं पाण्डव, तुम्हीं बताओ,
अहो कष्ट फिर भी जो उन पर निज अनुराग दिखाओ॥

( ९ )

"सिन्धुराज हम विदित जयद्रथ शूर, वीर, सेनानी,
"सदा तुम्हारे दास रहेंगे बनो हमारी रानी।
"दुखदायी वनवास छोड कर राज्य करो सुख पाके,
"होंगे सारे काम हमारे अब से तव इच्छा के"॥

( १० )

खडी हुई नीचे कदम्ब के सुग्रीवा कृष्णा से—
कह कर ऐसे वचन मुग्ध हो बढ़ी हुई तृष्णा से।
उसने उसे भेटने के हित दोनो हाथ बढाये ;
एक कपोती पर मानो दो दुर्द्धर विषधर धाये ॥

( ११ )

उसके ऐसे दुराचरण से डरी बहुत पाञ्चाली ,
क्रोधित भी अति हुई चित्त में पद-ताडित ज्यों व्याली।
करके तब तनु-लता सङ्कुचित हो कुञ्चित-भ्रूवाली
पीछे हटती हुई शीघ्र वह बोली वर-वचनाली ॥

( १२ )

"अवनीपति होकर भी एरे, नीच, नराधम, घाती,
"कहते हुए वचन ये तेरी जीभ क्यों न जल जाती।
"न्याय-दण्ड के अधिकारी मुझ पर-दारा को घेरे
"गिर पड़ते क्यो नहीं भूमि पर कट कर कर-युग तेरे॥

( १३ )

"निकट विनाश-काल आने से बुद्धि भ्रष्ट हो जाती ;
"नीतिज्ञों की उक्ति मुझे यह बहुत ठीक दिखलाती।
अति विश्रुत यह कथन जो कहीं नहीं युक्तियुत होता
"तो यों दुराचरण करने को तू क्यो प्रस्तुत होता ?

( १४ )

"कर मुझ से बर्ताव निन्द्य यह होकर अति अभिमानी,
निश्चय ही निज मृत्यु बुलाई तूने है अज्ञानी !
"कुपित फणी के फण की मणि को हाथ बढ़ानेवाला
"कौन मूर्ख जीवित रह सकता सहकर विष की ज्वाला ?

( १५ )

"अभी ज्ञात होगा जैसा तू शूर, वीर, बलधारी,
"आतेही होंगे मृगया से पाण्डव रिपु-संहारी।
"जब गाण्डीव बाण का तेरा प्राण लक्ष्य होवेगा
"सच कहती हूँ निज करनी पर अभी अभी रोवेगा ॥

( १६ )

"तज कर भी सर्वस्व जिन्होने तजा न धर्म्म कदापि
"ऐसे धर्म्मराज की निन्दा क्यो न करे तू पापी।
"(सत्पुरुषों के चरित अलौकिक मूर्ख बुरा बतलाते"
"क्योंकि चरित्रहेतु ही उनकी नहीं समझ में आते)" *

* इस पद्य का उत्तरार्द्ध कुमारसम्भवसार से उद्धृत किया गया है।

( १७ )

सुन कर वचन द्रौपदी के यो क्रोधित होकर जी में
तत्क्षणही बलपूर्वक उसने उस पुण्याश्रम ही में।
व्याकुल पतिस्मरण-रत उसको हरण कर लिया ऐसे
हरण किया था लङ्केश्वर ने जनकसुता को जैसे ॥

( १८ )

अति ही शीघ्र पाण्डवों ने फिर आकर उसे उबारा
किन्तु जयद्रथ को दयालु हो नहीं उन्होने मारा।
छोड़ दिया यह देख कि उसके स्वजन विकल रोते हैं
सज्जन स्वभावही से अतिशय क्षमावान होते हैं ॥

---

# ३४—शकुन्तला-पत्र-लेखन।

( १ )

शकुन्तला की चाह में होकर अधिक अधीर
फिरते थे दुष्यन्त नृप मञ्जु मालिनी-तीर।
मञ्जु मालिनी-तीर विरह के दुख के मारे
करते विविध विलाप मिलन की आशा धारे
होती है ज्यो चाह दीन जन को कमला की,
थी चिन्ता गम्भीर चित्त में शकुन्तला की ॥

( २ )

" होता जिसका ध्यान ही अति अप्रिय सब काल
अनुभव ऐसे विरह का क्यो न करे बेहाल!
क्यो न करे बेहाल बिरह की पीड़ा भारी,
जान पड़ें क्यों भार न जग की बातें सारी।
प्रिय-मिलनातुर कहो कौन सुधिबुधि नहि खोता
अहो! विरह का समय बड़ा ही भीषण होता

( ३ )

दुखदायी हो आज यह सुखकर त्रिविध समीर
प्रिया बिना करता व्यथित मेरा कृशित शरीर
मेरा कृशित शरीर न सुख इससे पाता है,
उलटा आग समान उसे यह झुलसाता है।
विज्ञोंने यह बात बहुत ही ठीक बताई—
बन जाता है कभी सुधा भी विष दुखदायी ॥

(४)

करता है तू पञ्चशर! विद्ध यदपि मम चित्त
हूँ कृतज्ञ तेरा तदपि मैं इस कार्य्य-निमित्त।
मैं इस कार्य्य-निमित्त मानता हूँ गुण तेरा,
इस प्रकार उपकार मार! होता है मेरा।
जिस सुमुखी का विरह धैर्य्य मेरा हरता है,
उससे ही मिलनार्थ प्रेरणा तू करता है॥"

(५)

इस प्रकार से घूमते छोड़ काम सब ओर;
देखी नृप ने निज प्रिया एक मनोहर ठौर।
एक मनोहर ठौर पड़ी पल्लव-शय्या पर,
कृशित-कलाधर-कला सदृश तो भी अति सुन्दर।
लगे देखने उसे नृपति तब बडे प्यार से,
देख न कोई सके खडे हो इस प्रकार से॥

(६)

जैसे उस के विरह में थे व्याकुल दुष्यन्त
थी वह भी उन के बिना व्यग्र विकल अत्यन्त।
व्यग्र विकल अत्यन्त नहीं धीरज धरती थी;
प्रेम-सिन्धु-वडवाग्नि बीच जल जल मरती थी।
सब शीतल उपचार दहन करते थे ऐसे—
नव नलिनी को तुहिन दहन करता है जैसे॥

(७)

होती ज्यों निशि में विकल कोकी कोक-विहीन
थी त्यों ही वह प्रिय बिना विरह-विकल अति दीन।
विरह-विकल अति दीन न कल पाती थी पल भर,
दोनो सखियाँ यदपि यत्न में थीं अति तत्पर।
क्षण क्षण में मदनाग्नि धैर्य्य उसका थी खोती,
ओषधियों से दूर मानसिक व्याधि न होती॥

(८)

इस दुख से ही दुखित हो सखियो का मत मान,
उस मृग-नयनी ने लिखा प्रीति पत्र सुखदान।
प्रीति-पत्र सुखदान लिखा दुष्यन्त भूप को,
लोकोत्तर-लावण्य मनोमोहन सुरूप को।
मानो उससे कहा स्वयं आशा ने मुख से,
है बस यही उपाय मुक्ति-दाता इस दुख से॥

(९)

प्रेम-पत्र वह जिस समय लिखती थी धर ध्यान,
उसी समय के दृश्य का है यह चित्र प्रधान।
है यह चित्र प्रधान देखिए इसे रसिक जन!
रविवर्म्मा का कृत्य न हरता यह किसका मन?
पति-स्नेह से मुग्ध भूल सब पीडा दुस्सह,
किस प्रकार लिख रही देखिये प्रेम-पत्र वह॥

(१०)

सुषमा इस की इस समय अकथनीय है मित्र!
अनुपम-मुद्रा-वेश त्यों सुन्दर भाव विचित्र॥
सुन्दर भाव विचित्र रूप रमणीय मनोहर,
गुरु नितम्ब, कटि क्षीण, पीन कुच, कृष्ण केशवर।
पुष्पाभरण मनोज्ञ योग्य वनदेवी उपमा,
दर्शनीय अति दिव्य अलौकिक मुख की सुषमा॥

(११)

करते रचना पत्र की धरे हुए प्रिय-ध्यान;
यह वियोगिनी हो रही संयोगिनी समान।
संयोगिनी समान प्रफुल्लित दिखलाती है;
शब्द सोचती हुई अलौकिक छवि पाती है।
उन्नत कुछ भ्रूलता नयन निश्चल मन हरते;
पुलकित युगल कपोल प्रकट पति में रति करते॥

(१२)

"प्रियवर! मैं तव हृदय की नहीं जानती बात,
संतापित करता मुझे पुष्पायुध दिन रात।
पुष्पायुध दिन रात घात करता रहता है,
तव मिलनातुर गात दाह दुस्सह सहता है।
विधु-वियोग से व्यथित कुमुदिनी होती सत्वर,
पर विधु-मन की किसे ज्ञात है निर्दय प्रियवर!"

(१३)

प्यारे पति को पद्य में लिखकर यों सब हाल,
लगी सुनाने वह उसे सखियों को जिस काल।
सखियों को जिस काल पत्र वह लगी सुनाने,
चन्द्र-वदन से प्रेम-सुधा-धारा बरसाने।
सफल मान दुष्यन्त सुकृत इसमें निज सारे,
होकर झट पट प्रकट वचन बोले यों प्यारे॥

(१४)

"देता है कृशतनु! तुझे ताप मात्र ही काम,
किन्तु भस्म करता मुझे निशि दिन आठो याम।
निशि दिन आठो याम काम है मुझे जलाता,
दहन-दुःख अनुभवी तदपि वह दया न लाता।
कुमुदिनि का तो दिवस हास्य ही हर लेता है,
किन्तु शशी को क्षीण दीन वह कर देता है।।"

(१५)

सहसा ऐसे मिलन से हुए भाव जो व्यक्त;
उनके कहने मे सखे है हम सदा अशक्त।
हैं हम सदा अशक्त मिलन-सुख समझाने में,
प्रणयि जनो का चरित न आसकता गाने मे।
कार्य्य-कथन-सादृश्य किया जा सकता कैसे?
वही जानते इसे मिले जो सहसा ऐसे।।

---

## ३५—गर्विता।

(१)

विद्वानों के निकट अपना नाम मैं क्या बताऊं?
शम्पा, चम्पा-कनकलतिका आदि क्या क्या गिनाऊँ?
होता है जो रुचिकर जिसे ज्ञात इच्छानुसार
रक्खे मेरे अलग सब हैं नाम नाना प्रकार॥

(२)

काव्य-द्वारा कविजन मुझे "गर्विता" हैं बताते;
जाने क्या वे प्रकट मुझ में गर्व का चिह्न पाते।
लाता मेरा चरित उनके काव्य में दिव्य स्वाद—
देते होंगे यह इस लिये वे मुझे साधुवाद!

(३)

होती जाती अब जब सभी लुप्त है जाति-पाँति,
"सद्वंशा हूँ"-कथन फिर यों योग्य है कौन भाँति?
माने जाते सब सम जहाँ काक, केकी, मराल;
विज्ञो को है समुचित वहाँ मोन ही सर्वकाल॥

(४)

है शृङ्गार-प्रमुख जितने और शीतांशु-भाग*
भोगे मैंने निज वयस के वर्ष है सानुराग।
जाना तो भी अब तक कभी रोग मैंने न कोई;
दैवेच्छा से मुदित सुख की नींद है नित्य सोई॥

(५)

"होता कार्य्य प्रकटित कहीं कारणाभाव मे भी"—
काव्यज्ञो के इस कथन मे हूँ हुई वाच्य मैं भी।
है कोई भी गुण न मुझ मे मान-सम्मान-योग्य,
तो भी मेरे स्वजन मुझको मानते हैं मनोज्ञ॥

(६)

हो के पत्नी प्रवर पति की चित्त से नित्य प्यारी,
पाऊँगी मैं सब सुख सदा कामना-पूर्णकारी।
होंगे नित्य स्वजन मुझ से तुष्ट वात्सल्यधारे—
दैवज्ञो के वचन मुझको ये हुए सत्य सारे॥

(७)

नीतिज्ञो का यह कथन है "भूल जाते सभी हैं"—
कैसे मानूं फिर न मुझसे दोष होते कभी हैं?
तो भी स्वामी मुझ पर सदा हैं कृपा ही दिखाते,
प्रेमज्ञों को प्रणयिजन के दोष भी हैं सुहाते॥

(८)

"मैंने ऐसा मृदुल-तनु! क्या दोष तेरा किया है?
प्यारी! जो यों गुण†-वश मुझे बाँध तूने लिया है"
स्वामी के यों वचन सुनती जो सदा प्रेम-जन्य,
मानूँ मैं क्यो न इस जग में आपको धन्य धन्य॥

(९)

सोती पीछे यदपि पति से मैं गये भूरि रात,
होती किन्तु प्रथम सब से भङ्ग निद्रा प्रभात।
तो भी ग्लानि, श्रम, मद तथा है न आलस्य आता,
हो जाती है प्रकृति उसकी जो किया नित्य जाता॥

(१०)

"अज्ञानो के मलिन मन में है न होता विवेक"—
पाती हूँ मैं सतत इसका आप दृष्टान्त एक।

* सोलह।

† गुण=सुशीलता, पति-भक्ति आदि गुण और रस्सी।



गर्विता ।

हो जाती है निष्प्रभ जिसको कौमुदी-कान्ति फीकी देखो कैसी सरस छवि है गर्विता सुन्दरी की।
देती [illegible] [illegible] मधु [illegible] के पात्र में से होता गर्व प्रकट इसके स्वर्ण के गात्र में से॥



सीता जी का पृथिवी-प्रवेश ।

ये अवनी-अङ्कस्थ लगाये दृष्टि राम थे—है प्रविष्ट हो रही जानकी धरा-धाम में ।
सिंहासन से झुके हुए आगे को दुख से—'नहीं, नहीं" कह रहे राम हैं विस्मित मुख से ॥

जाती लेने सुमन जब मैं बाग में पूजनार्थ,
देते त्रास भ्रमर मुझ को जान वल्ली यथार्थ॥

( ११ )

"भाते जैसे सरस हमको पाक तेरे बनाये—
वैसे मीठे, रुचिकर, वधू! दूसरे के न पाये।
है तू पद्मा* सच मुच सदा गेह-लक्ष्मी हमारी"—
होते मेरे श्वशुर मुझ से नित्य यों तुष्ट भारी॥

( १२ )

"आई ज्योत्स्ना* जिस दिवस से गेह मे तू हमारे,
माला धारे भजन करती छोड मैं काम सारे।
पाये मैंने सब सुख, वधू! हो बड़ी आयु तेरी"—
यों वात्सल्य प्रकट करती सर्वदा सास मेरी॥

( १३ )

"आली! तू तो विदित सबको है सदा निष्कलङ्क;
ग्रन्थों से भी प्रकटित तथा है कलङ्की मयङ्क।
भाखें कैसे फिर हम तुझे चारुचन्द्रा नवेली"—
है यों मेरी सतत कहती स्नेहशीला सहेली॥

( १४ )

प्यारा जी से बहुत मुझको पालतू मोर मेरा,
मेरे आगे सतत वह है नाचता प्रेम-प्रेरा।
उत्कण्ठा से चिकुर मम ये चोंच से खींचता है†
योंही मेरी प्रणय-लतिका हर्ष से सींचता है॥

( १५ )

सीखी मैंने निज जननि से सत्कलायें अशेष,
भाती किन्तु प्रथित मुझको चित्रविद्या विशेष।
लेती हूँ मैं सरुचि कर में लेखनी स्वस्थ ज्यों ही,
हो जाती है पुलकित सदा देह सम्पूर्ण त्योंही॥

( १६ )

कान्ताओं को सहज रहती भूषणेच्छा महान,
किन्तु स्वर्णादिक न गहना मानती मैं प्रधान।

* पद्मा, ज्योत्स्ना प्रभृति नामों से पहले पद्य में कही हुई बात का समर्थन होता है।

† मर्मज्ञ पाठकों को यह बतलाने की आवश्यकता नहीं है कि क्यों "गर्विता" का पालतू मोर उसके बालों को खींचता है। जब कवियों को केशों में मेघ और भुजङ्गों की भ्रान्ति होती है तब मयूर का तो कहना ही क्या है।

विद्या आदि प्रवर गुण ही है अलङ्कार-सार;
होते सारे कनक-मणि के ये परिष्कार भार॥

( १७ )

शोभा ही है वह न जिसको हो अलङ्कार इष्ट,
भाता है जो स्वयमपि वही रूप होता वरिष्ठ।
पाते हैं क्या प्रकृत गुण को कृत्रिम श्रेष्ठता मे?
देखो जाती द्युति न विधु की दीप की चेष्टता मे॥

( १८ )

है स्वामी को सुखित करना नारि-धर्म्म प्रधान;
होते किन्तु प्रिय न वश में देख भूषा-विधान।
चाहे जैसे रुचिर गहने हो न क्यों विद्यमान;
होते हैं वे सब गुण बिना व्यर्थ शोभायमान॥

( १९ )

"होता कोई मनुज जग में है नहीं दोष-हीन;
देते हो क्यों फिर तुम मुझे दोष कोई कभी न?"
स्वामी मेरे वचन सुन यों दोष देते यही हैं—
श्यामा! दोष प्रकट तुझ मे दूषणाभाव ही है॥

( २० )

मानें जाते इस जगत मे सौख्य जो श्रेष्ठ सार,
हैं सो सारे सतत मुझको प्राप्त सर्व प्रकार।
पृथ्वी में है मुझ पर कृपा ईश की आज जैसी—
प्रार्थी हूँ मैं, सब पर करे नित्य विश्वेश वैसी॥

---

## ३६—सीताजी का पृथ्वी-प्रवेश।

( १ )

सगर्भा सीता को तज कर प्रजा-रञ्जन-हित,
हुए अन्तर्यामी रघुपति महा-व्यग्र व्यथित।
तथा सीता देवी प्रिय-विरह से दग्ध मन में
रहीं ज्यों त्यों जीती विधि-विहित वाल्मीकि-वन में॥

( २ )

वहाँ जन्मे प्यारे लव-कुश यथाकाल उनसे;
हुए वे दोनोंही निज जनक ज्यों रूप-गुण से।
महा शोभा-शाली विदित उनसे भी तप-वन
दिखाता था मानो प्रकटित हुआ राज-भवन॥

( ३ )

स्वपुत्रों के जैसा समझ मन से आदि-कवि ने
महा ब्रह्मज्ञानी तप-सदन ज्यों चंद-रवि ने।
स्वयं शिक्षा दे के समुचित उन्हें प्रेम-सहित,
पढ़ाया पीछे से निज-रचित श्रीराम-चरित॥

( ४ )

बड़ी श्रद्धा से वे विधि-युत उसे गान करके,
लगे श्रोताओं को चकित करने चित्त हरके।
सुहाता है योंही सतत सब को गान हित हो,
कथा ही क्या है जो शुभ-चरित से सँगठित हो॥

( ५ )

किये वैदेही की कनक-प्रतिमा स्थापित, फिर,
लगे रामस्वामी सविधि करने यज्ञ रुचिर।
दिया था रानी को तज कुछ उन्होंने न मन से,
किया था सम्बन्ध प्रकट नृप का लोक-जन से॥

( ६ )

अतः आये थे जो मुदित मुनि के संग मख में,
लगे दो चन्द्रों से लवकुश वहाँ लोक-चख में।
प्रशंसा विज्ञों से श्रवण करके रूप गुण की,
परीक्षा लेने में तब रत हुए राम उनकी॥

( ७ )

सभा में आये वे जिस समय आमन्त्रित हुए,
खुले नेत्रों वाले सकल जन आश्चर्यित हुए।
मनोहारी दोनों, कर न सकते साम्य सुर थे,
किशोरावस्था की रघुवर-छटा के मुकुर थे॥

( ८ )

हुए नाना भाव स्फुरित उनको देख करके,
रहे तो भी राम प्रकृत मन में धैर्य धरके।
भले ही हो सिन्धु द्रवित विधु के अभ्युदय से,
कभी मर्यादा को न वह तजता है हृदय से॥

( ९ )

सुरीले कण्ठों के लघु वयस के किन्नर यथा,
लगे गाने दोनों जिस समय रामायण कथा।
सभी के नेत्रों से जल वह चला प्रेम-मय यों,
खिले अम्भोजों से हिम-सलिल प्रातः समय ज्यों॥

( १० )

अनिच्छा दोनों की लख फिर पुरस्कार-धन में,
हुआ जो सभ्यों को उन पर महाश्चर्य मन में।
हुआ विद्या से भी प्रकट उतना विस्मय नहीं,
बड़ाई पाती है प्रकृति गुण से भी सब कहीं॥

( ११ )

"सुधा से भी मीठी किस सुकवि की है यह कृति?
तुम्हारा गाने में गुरुवर तथा कौन सुकृती?"
स्वयं पूछे जाके हित-सहित यों राम मुख से,
बताया दोनों ने प्रथम-कवि का नाम सुख से॥

( १२ )

सदा शुद्धाचारी भुवन-भयहारी रघुपति,
हुए भ्राताओं के सहित तब उत्कण्ठित अति।
तथा जाके शीघ्र श्रुत-सुकृत वाल्मीकि-निकट,
लगे देने सारा सविनय उन्हें राज्य प्रकट॥

( १३ )

सती सीता के वे सुत युग उन्हीं के कह कर,
पुनः बोले होके सदय उनसे यों मुनिवर।
"विशुद्धा वैदेही तव भजन ही काम उसको,
करो अङ्गीकार प्रणय युत हे राम! उसको"।

( १४ )

दशग्रीवाराति श्रवण कर प्यारे वचन यों,
हुए कारुण्यार्द्र द्रुत जल भरे नम्र घन ज्यों।
लगे देने पीछे सविनय उन्हें उत्तर यथा—
धरा में सो दृश्य प्रचुरतर आश्चर्यमय था॥

( १५ )

"अमर्त्यों के आगे, मम निकट, रत्नाकर-तट,
हुई वह्नि-द्वारा जनकतनया शुद्ध प्रकट।
न की तो भी श्रद्धा उस पर प्रजा ने हृदय से;
तजा है सो मैंने विवश उसको धर्म्म-भय से॥

( १६ )

"दिखा के लोगों को सब विध विशुद्धात्मचरित,
करावे विश्वास प्रकट अब जो भक्ति-भरित।
तुम्हारी आज्ञा से उस सुतवती को सदन में
करूँ तो हे तात! ग्रहण फिर हो तुष्ट मन में"॥



सुकेशी अर्थात् मलावार-सुन्दरी ।

केरल की यह नारी है सुकेशा नाम की सुकुमारी ।
छवि इसकी सुखकारी लगती किसको नहीं प्यारी ?

भृकुटी और लोचनो मे दृढ सम्बन्ध देखा
दोनो एक दूसरे के भूषण प्रधान ये।
बाण के समान यदि लोचन ललाम है तो
भृकुटी कमान के समान रूपवान ये॥

(५)
कैसे कहें बिम्बा के फलो मे है सुधा का स्वाद
कैसे कहें पल्लवो मे ऐसी सुघराई है।
यद्यपि प्रबाल और पद्मराग लाल होते
किन्तु हमें उनकी कठोरता न भाई है॥
विद्रुम-विनिन्दित ये अरुण स्वभाव ही से
तिस पै भी पान की यो छाई अरुणाई है।
सारे उपमान खोज हारे कवि कोविद पै
ऐसे अधरो की कहीं उपमा न पाई है॥

(६)
मानो करि-कुम्भो से, उरोजो से खिसका हुआ
वसन सँभालती जो सुन्दर स्वदेशी है।
कञ्ज पै गुलाब मानों, कर पै कपोल दिये,
मोहती हुई जो चित्त सोहती सुवेशी है॥
बैठी है स्वस्थ और शान्त भाव धारण किये
मानो आप शारदा ने शान्ति उपदेशी है।
सूरत है भोली और बोली कोकिला सी मञ्जु
होली की शिखासी खासी कामिनी सुकेशी है॥

(७)
लोचन सुखद मानों मूर्तिमती सुन्दरता
जैसी यह सुन्दरी सुकेशी सुकुमारी है।
वैसी ही प्रवीणा और सरला सुशीला तथा
विमल-चरित्रा निज प्रीतम की प्यारी है॥
गृहिणी के योग्य श्रेष्ठ गुण इसमें हैं सभी
अपने सब कामों में दक्ष यह भारी है।
सोने में सुगन्ध वाली बात जो सुनी थी कभी
वह सुखकारी इस नारी में निहारी है॥

(८)
कञ्चन से कान्तिमान कञ्ज से कलेवर का
कैसा रमणीय रूप देखिये विचार के।
अङ्ग अङ्ग सुन्दर सुडौल शुभ्र शोभित हैं
शोभित न होते कौन लोचन निहार के॥
अद्भुत सुकेश-देश भव्य वेश-भूषण त्यों
चन्दनी दुकूल भाव मन के विकार के।
बातें सभी चित्र मे दिखाती हैं विचित्र मित्र!
कौशल अपार गुणागार चित्रकार के॥

---

## ३६—गौरी।

(१)
पर्वतपति-मेना की प्यारी,
है यह शैलसुता सुकुमारी।
रूप अति रुचिर इसने पाया,
विधि ने स्वयं इसे निर्म्माया॥

(२)
हिमकर मे जो सुन्दरता है,
कमलों मे जो कोमलता है।
जहाँ जहाँ लावण्यलता है,
जिसमें जितनी गुण गुरुता है॥

(३)
जब एकत्र उन्हें कर पाया,
तब विधिने अभ्यास बढाया।
फिर उनसे यह रूप बनाया,
सुन्दरता-समूह उपजाया॥

(४)
हर को इसने वरना चाहा,
मोहित उनको करना चाहा।
बहु विध हाव-भाव कर हारी,
विफल हुई पर इच्छा सारी॥

(५)
शिव ने काम भस्म कर डाला,
बहुत निराश हुई तब बाला।
कठिन तपस्या तब विस्तारी
गौरी गौरी शिखर सिधारी॥

(६)
बरसों वहीं बिताया इसने
क्लेश कठोर उठाया इसने।
तप से मान सुखाया इसने
मुनियों को शरमाया इसने॥

( ७ )

इसकी देख तपस्या भारी,
हुए द्रवित कैलाशविहारी।
की तब सब इसकी मनभाई;
कुछ दिन में यह हर-घर आई॥

( ८ )

मृत्युञ्जय पति इसने पाया;
प्रेमपाश से बद्ध बनाया।
तन पति का आधा अपनाया:
अपना अति सौभाग्य बढ़ाया॥

( ९ )

तब से त्रिभुवन में विख्याता
गौरी हुई जगत की माता।
दिन दिन महिमा अधिकाती है;
घर घर में पूजी जाती है॥

( १० )

इसका चित्र मनोहारी है;
कौशल इसमें अति भारी है।
रविवर्म्मा की बलिहारी है,
जिसकी ऐसी कृतिकारी है॥

---

## ४०—गङ्गा भीष्म।

( १ )

पाठक, सुनिए कथा पुरानी;
थे मुनिवर वसिष्ठ विज्ञानी।
पास अष्ट वसु उनके आये;
उनसे गये मुनीश सताये॥

( २ )

क्रोध उन्हें इससे हो आया,
वसुओं को यह शाप सुनाया।
"जन्म जगत् में लो तुम सारे,
वचन अन्यथा नहीं हमारे"॥

( ३ )

यह सुन कर वे सब घबराये;
कम्पित हुए, होश में आये।
भागीरथी-समीप सिधाये;
वचन विशेष विनीत सुनाये॥

( ४ )

"हे सुरसरि! विपत्ति के मारे;
आये हैं हम पास तुम्हारे।
जग में जननी बनो हमारी;
करो हमें निज कृपाधिकारी"॥

( ५ )

सुरसरि ने इनको स्वीकारा;
वसु-गण अपनी पुरी पधारा।
हुई जन्हुतनया तब नारी;
रूप-राशि अद्भुत विस्तारी॥

( ६ )

देखा नृप शान्तनु ने उसको;
मदन-विमर्दित तनु ने उसको।
तब वह उस नरेश की रानी
हुई, बहुत उसके मनमानी॥

( ७ )

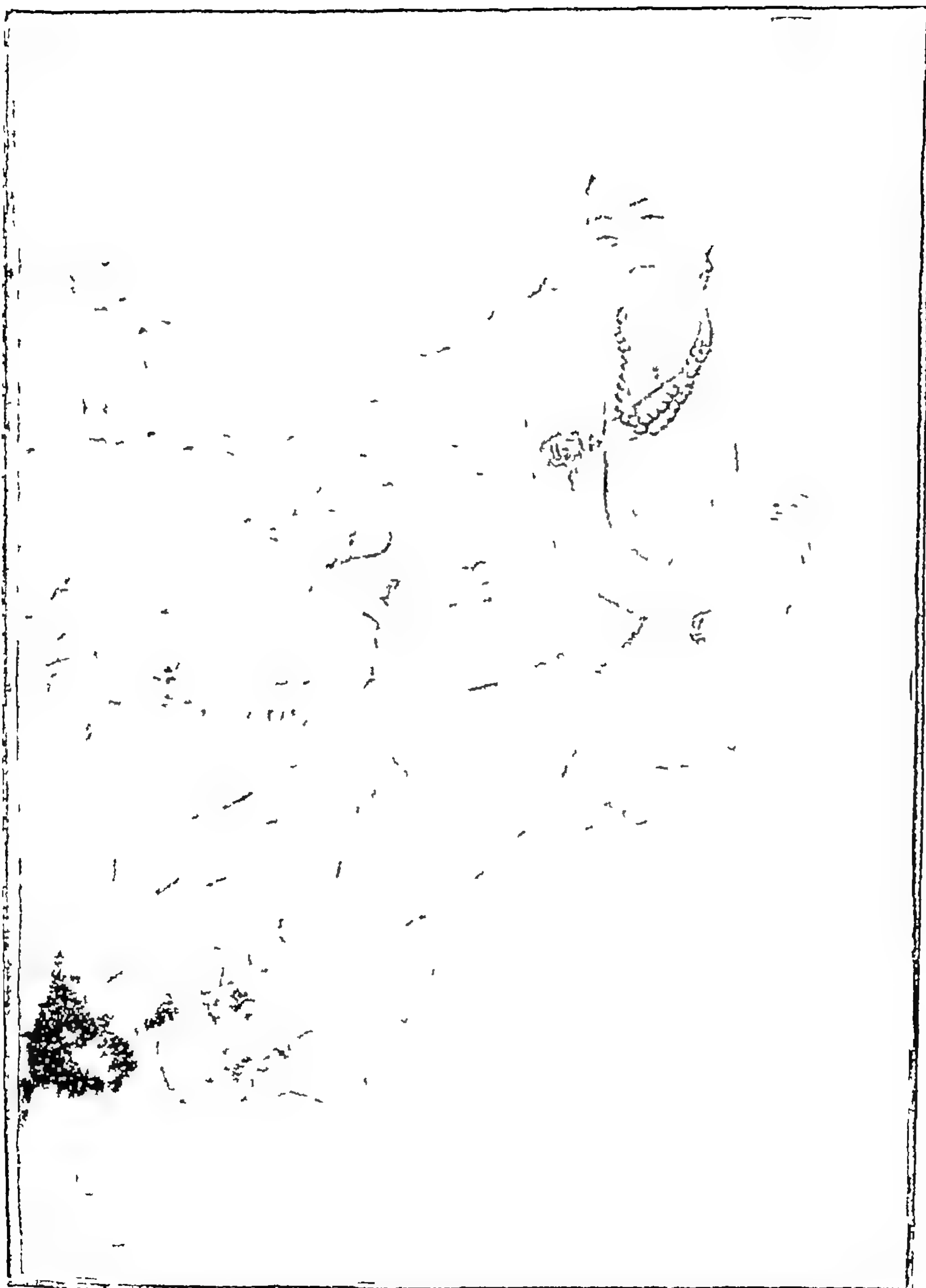
हुए सात उसके सुत सुन्दर;
वसुओं के अवतार मनोहर।
उनको उसने जल में डाला;
पहले किया हुआ प्रण पाला॥

( ८ )

जब देवव्रत अष्टम बालक
प्रकटा भीष्म प्रतिज्ञा-पालक।
सुतस्नेह से नृप घबराया;
सुरसरि को बहुविध समझाया॥

( ९ )

युक्ति-युक्त सुन उसकी वाणी,
द्रवित हो गई गङ्गा रानी।
उसने वह सुत हाथ उठाया
इस प्रकार वर वचन सुनाया॥



गङ्गा भीष्म ।



महाश्वेता ।

( १० )

" हे नृप मुझ को सुरसरि जानो ,
बात सत्य यह मेरी मानो ।
कारण-वश जग मे आई मै ,
यहाँ तुम्हारे मन भाई मैं ॥

( ११ )

"अब मैं अपने घर जाती हूं ;
नहीं यहाँ रहने पाती हूं ।
सुनो बात जो बतलाती हूं ,
यह सुत तुम्हे दिये जाती हूं ॥

( १२ )

"वैरी इससे घबरावेंगे ,
पार नहीं इससे पावेंगे ।
यदि कोई सम्मुख आवेंगे ;
तत्क्षण ही मारे जावेंगे ॥

( १३ )

"ब्रह्मचर्य्य व्रत इसका होगा ;
यश न कभी मृत इसका होगा ।
पण्डित होगा , सच कहती हूं ,
अनुमति चलने की चहती हूं ॥

( १४ )

"जो कोई जग में है आता ;
सुख-दुख वह दोनों ही पाता ।
विधिही यह जोड़ा निर्म्माता ,
यह न किसी से तोड़ा जाता' ॥

( १५ )

यह कह सुरसरि ने सुत दिया ,
सुरपुर का पथ उसने लिया ।
उसका चित्र विचित्र बना है ;
नृप रविवर्म्मा की रचना है ॥

## ४१—महाश्वेता ।

( १ )

यह सुन्दरी कहाँ से आई ;
सुन्दरता अति अद्भुत पाई ।
सूरत इसकी अति भोली है ;
और न इसकी हमजोली है ॥

( २ )

इसका चरित बाण ने गाया ;
जिसने कादम्बरी बनाया ।
यह कोमल किन्नर-कन्या है ;
रूप-राशि गुण-गण-धन्या है ॥

( ३ )

हेमकूट पर्व्वत के ऊपर
उपवन एक चैत्ररथ सुन्दर ।
वहाँ विमल अच्छोद सरोवर ,
उसके तट शिव-भवन मनोहर ॥

( ४ )

वहाँ एक दिन यह जाती थी ,
मग में निज छवि छिटकाती थी ।
युवा तपस्वी पुण्डरीक ने
( कुसुम कली को चञ्चरीक ने )

( ५ )

देख इसे सब सुधि बुधि खोई ;
शुद्ध-शीलता सारी धोई ।
इसने भी अनुराग दिखाया ,
हार उसे अपना पहनाया ॥

( ६ )

लौट गेह निज जब यह आई ;
पीडा पुण्डरीक ने पाई ।
विरह-वह्नि ने उसे जलाया ,
इससे वह परलोक सिधाया ॥

( ७ )

इस विपत्ति से यह अकुलानी ;
हुई उसी क्षण से दीवानी ।
पिता और माता को छोडा
सब सम्बन्ध जगत से तोड़ा ॥

( ८ )

प्रिय से प्रेम लगाया इसने ;
अङ्ग विभूति रमाया इसने।
जटा-जूट लटकाया इसने ,
मुनि-वर-वेश बनाया इसने॥

( ९ )

पहनी पुण्डरीक की माला ;
आई उसी विपिन में बाला।
पशुपति की पूजा आराधी ;
महा कठोर साधना साधी॥

( १० )

कर वीणा ले नित्य बजाती ,
हर-गिरिजा को नित्य रिझाती।
नित्य नये उनके गुण गाती ,
कन्द-मूल खाकर रह जाती॥

( ११ )

वहाँ इसी विध यह सुकुमारी
करती रही तपस्या भारी।
बहुत दिनों में इसका प्यारा
मिला इसे, खोया दुख सारा॥

( १२ )

उसे शशी ने शाप दिया था ,
चन्द्रलोक में खींच लिया था।
अन्त उसीने उसे पठाया ,
दोनों का सन्ताप मिटाया॥

( १३ )

चित्र महाश्वेता का सुन्दर
रविवर्म्मा ने विशद बनाकर।
अतिशय कौशल दिखलाया है ,
भाव ख़ूबही बतलाया है॥

---

## ४२—कुमुदसुन्दरी।

( १ )

यह है कुमुदसुन्दरी बाला ;
है इसका सब ठाठ निराला।
घर इसका गुजरात देश है ,
देखो कैसा सुभग वेश है॥

( २ )

चारु-चन्द्रमा सम मुख मण्डल;
भूतल में शोभा-आखण्डल।
कञ्चन कर्णफूल पहने है ;
नहीं और कोई गहने है॥

( ३ )

काम कामिनी की ले छाया ;
जिसे चतुर्मुख ने निर्म्माया।
भूषण उसकी विड ना है ,
महा-अनूपम रूप बना है॥

( ४ )

इसके देख केश घुघराले,
सुमन-सुवासित सुन्दर काले।
नाग नारियाँ छिप जाती हैं ;
मुँह न सामने दिखलाती हैं॥

( ५ )

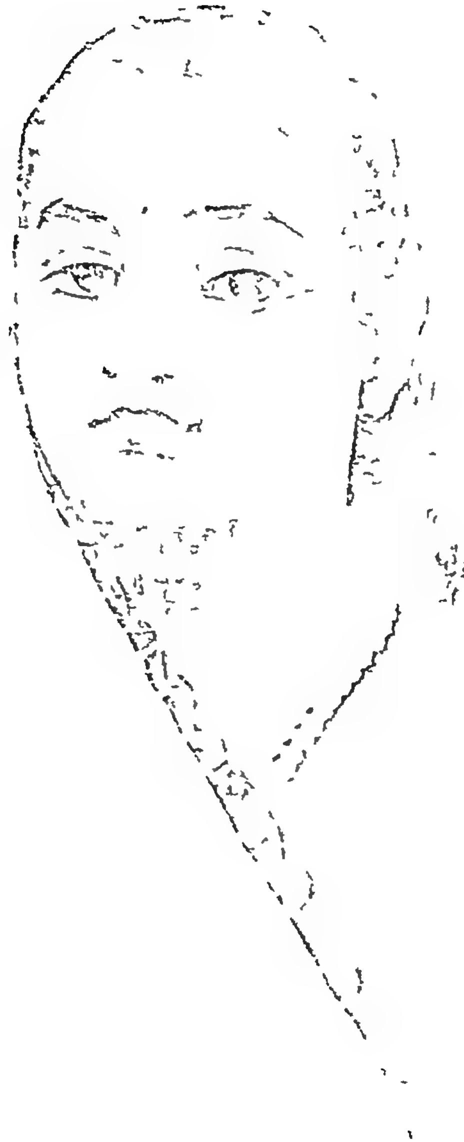
नयन नील नीरज-छविहारी ,
श्रुति-पर्य्यन्त पर्य्यटनकारी।
इसके भृकुटी भय का मारा
लोप शरासन है बेचारा॥

( ६ )

इसके अधर देख जब पाते
शुष्क गुलाब फूल होजाते।
कोमल इसकी देह-लता है ,
मूर्तिमती यह सुन्दरता है॥

( ७ )

बाहर सायङ्काल हमेशा
फिरती यह पति साथ हमेशा।
कडे छडे की चाह नहीं है ,
परदे की परवाह नही है॥



কুমুদসুন্দরী।



रम्भा।

( ८ )

पढ़ती भी, लिखती भी है यह,
घर सज्जित रखती भी है यह।
जब यह सूई हाथ उठाती
नये नये कौशल दिखलाती ॥

( ९ )

घर मे सब को भाती है यह;
पति का चित्त चुराती है यह।
सखियों मे जब जाती है यह,
मधु मीठा टपकाती है यह ॥

( १० )

यह शिक्षिता गुर्जरी नारी
इसको प्रिय है नीली सारी।
इसकी छवि लोचन-सुखकारी
रविवर्म्मा ने ख़ूब उतारी।

---

## ४३—रम्भा ।

( १ )

रूपवती यह रम्भा नारी;
सुरपति तक को यह अति प्यारी।
रति, धृति भी, दोनो बेचारी
इसे देख मन में हैं हारी ॥

( २ )

इसके हाव हृदयहारी हैं,
हारी इससे सुरनारी हैं।
गति इसकी सबसे न्यारी है,
छवि नयनो को सुखकारी है ॥

( ३ )

जब यह अद्भुत भाव बताती,
वसन इधर से उधर हटाती ॥
नाभि-नवल-नीरज दिखलाती,
स्तनतट से पट को खिसकाती ॥

( ४ )

मुनि भी मोहित हो जाते हैं;
प्रचुर ताप तन में पाते है।
इसकी लीला कही न जाती;
गति इसकी न समझ में आती ॥

( ५ )

पहनी पारिजात की माला;
हरित वस्त्र सिर ऊपर डाला।
कर-पल्लव किस भाँति उछाला;
श्रुति-कुण्डल क्या ख़ूब निकाला ॥

( ६ )

वेश विचित्र बनाया इसने;
मुख-मयङ्क दिखलाया इसने।
भृकुटी धनुषाकार मनोहर;
अरुण दुकूल बहुत ही सुन्दर ॥

( ७ )

मञ्जु-मृणाल-पराजयकारी
वाम बाहु आभूषणधारी।
किस प्रकार लटकाया इसने,
कमलो को शरमाया इसने ॥

( ८ )

कटि इसकी न भङ्ग हो जावे,
चलते कहीं न यह गिर जावे।
इससे त्रिवली-वन्ध बनाया,
विधिने यह चातुर्य्य दिखाया ॥

( ९ )

इसका कुच-नितम्ब विस्तार
सचमुच है अत्यन्त अपार।
दृष्टि युवकजन को जो जाती,
थक कर वहीं पडी रह जाती ॥

( १० )

शुक के सम्मुख जानेवाली
सरस भाव बतलानेवाली।
नव-यौवन मद मे मतवाली
सुर-नर-मुनि मन हरनेवाली ॥

(११)

इसका चित्र सभी को भाया ;
रविवर्म्मा ने विशद बनाया ।
कौशल उस मे ख़ूब दिखाया ,
रुचिर रूप अच्छा उपजाया ॥

---

## ४४—प्रियंवदा।

( १ )

यह है प्रियंवदा पति-प्यारी ,
कुलकामिनी पारसी-नारी ।
इसकी रुचिर रेशमी सारी
तन की द्युति दूनी विस्तारी ॥

( २ )

नित सरितापति-तट को जाती ;
नित आमोद प्रमोद मचाती ।
नित यह गीत मनोहर गाती ;
कलकण्ठो को ख़ूब लजाती ।

( ३ )

मधुर "पियानो" नित्य बजाती ;
जौहर नये नये दिखलाती ।
"गौहर" का ग़ुरूर गिर जावे ,
यदि इसका गाना सुन पावे ॥

( ४ )

परदे का कुछ काम नहीं है ,
कहीं सकुच का नाम नहीं है ।
चम्पकवर्णी, श्याम नहीं है ;
इसमें जरा कलाम नहीं है ॥

( ५ )

सीखा चित्र बनाना इसने ;
कर के कौशल नाना इसने ।
पढ़ना ग्रौर पढ़ाना इसने ,
पति का चित्त चुराना इसने ॥

( ६ )

पुरुषों मे भी जाना इसने
मन्द मन्द मुसकाना इसने ।
सुधा-सलिल बरसाना इसने ;
जरा नहीं शरमाना इसने ॥

( ७ )

इसके कुण्डल श्रुति सुखकारी ;
देख अनस्थिरता-रत भारी ।
चित्त हुआ उनका अनुयायी ;
चञ्चलता की पदवी पाई ॥

( ८ )

कच-कलाप बिखराये कैसे ?
सम्मुख सुघर बनाये कैसे ?
दर्शक-दृग यदि उन पर जाते ,
फिर वे नहीं लौटने पाते ॥

( ९ )

सरस्वती से जो वर पावे ,
इस पर कविता वही बनावे ।
इससे श्रम क्यो वृथा उठावें ?
क्यो न यहीं अब हम रुक जावें ?

(१०)

अङ्ग अङ्ग सुन्दरताशाली ;
सूरत क्या ही भोली भाली ।
नहीं ग्रौर इसकी हमजोली ;
रूप-राशि की हद बस हो ली ॥

(११)

जिसने इसका चित्र बनाया ,
मनोमुग्धकर भाव दिखाया ।
नृप रविवर्म्मा सब के प्यारे ,
हाय हाय ! सो स्वर्ग सिधारे ॥

---




प्रियवदा।

## ४५—ऊषा-स्वप्न।

( १ )

बाणासुर की सुता सयानी ;
रति भी जिसको देख लजानी।
रुचिर नाम ऊषा उसका है ;
विशद वेश-भूषा उसका है॥

( २ )

जब वह हुई षोड़शी बाला ;
पड़ा काम से उसका पाला।
मन्मथ ने शायक सन्धाना ·
ऊषा उसका हुई निशाना।

( ३ )

दुर्निवार मनसिज की मारी
व्यथित हुई जब वह सुकुमारी।
उससे और न लड़ना चाहा ;
पति का पाणि पकड़ना चाहा॥

( ४ )

बिम्बाधर-रस चखनेवाला,
तनु में जीवन रखनेवाला।
जल्द नहीं जो पाऊँगी मैं,
हे महेश, मर जाऊँगी मैं॥

( ५ )

यों कह कर घबराने तब वह—
लगी गिरीश मनाने तब वह।
दुःख अति अधिक पाने तब वह ;
तनु को कृशित बनाने तब वह॥

( ६ )

बहुत रात खोने पर उसको
एक बार सोने पर उसको।
हुआ स्वप्न सुखदायक उसको
मिला एक नव-नायक उसको॥

( ७ )

यदुवंशी अनिरुद्ध कुमार,
रूप-राशि शोभा आगार।
पास स्वप्न में उसके आया,
जी से वह ऊषा को भाया॥

( ८ )

सुन्दरता भी शरमा जावे,
यदि वह उसके सम्मुख आवे।
वदन नील-नीरद सम काला,
अति विशाल गल-मुक्ता-माला॥

( ९ )

उसे देख मन बहुत सँभाला ;
तदपि हो गई मोहित बाला।
यदपि न मुँह से वचन निकाला ;
दिल अपना उसने दे डाला॥

( १० )

ऊषा को जब ऐसा पाया,
युवा पास उसके तब आया।
बैठ गया, मन-मोद बढाया,
विधु-वदनी का हाथ उठाया॥

( ११ )

रस इस तरह बढाया उसने ;
मनोमुकुल विकसाया उसने।
सुधा-सलिल बरसाया उसने ;
तनु कण्टकित बनाया उसने॥

( १२ )

कि वह भूल अपने को गई,
सत्य समझ सपने को गई।
कर-स्पर्श सुख-सिन्धु समानी,
रतिपति के वह हाथ बिकानी॥

( १३ )

उसके मुख-मयङ्क की शोभा
देख युवा का भी मन लोभा।
सुषमा-सर उसने अवगाहा,
अरुणाधर-रस चखना चाहा॥

( १४ )

ऊषा ने भी की मन-भाई
उत्सुकता अतिशय दिखलाई।
पर ज्योंहीं वह भुजा उठाने
चली, युवा को गले लगाने॥

( १५ )

नींद दृगों से त्योंही भागी ;
कहीं नहीं कुछ, जब वह जागी।
इससे जो दुख उसने पाया ;
गया पुराणों में है गाया ॥

( १६ )

चित्रकार-वर रविवर्म्मा है ;
निज गुण में अनन्यकर्म्मा है।
उसने ऊषा-स्वप्न उतारा ,
ख़ूब सुयश अपना विस्तारा ॥

---

## ४६—कुन्ती और कर्ण।

जब दुर्योधन किये बिना संग्राम सरासर,
देने लगा न भूमि सुई की नोक बराबर।
जब न एक भी बात सन्धि की उसने मानी,
तब विग्रह को विवश हुए पाण्डव विज्ञानी ॥

( २ )

सुन कर यह सब हाल युद्ध होना निश्चित कर,
कुन्ती कर्ण-समीप गई गङ्गा के तट पर।
था उसका उद्देश कर्ण को समझाने का,
तथा मना कर आत्म-पक्ष में कर लाने का ॥

( ३ )

वहाँ कर्ण आकण्ठ-मग्न सुरसरी-नीर में,
कर युग ऊँचे किये लग्न था तप गभीर में।
जप से हुआ निवृत्त न वह बल-गर्वित जौलों,
राह देखती रही खड़ी उसकी यह तौलों ॥

( ४ )

किये चित्त एकाग्र सूर्य्य में दृष्टि लगाये,
अस्फुट स्वर से वेद-मन्त्र पढता मन भाये।
सलिल मग्न आकण्ठ सुहाता था वह ऐसे,
अलि-कुल-कलकल-कलित कमल फूला हो जैसे ॥

( ५ )

गङ्गा-गर्भ-प्रविष्ट सूर्य्य-सुत शोभाशाली,
दिखलाता था छटा एक वह नई निराली।
सूर्य्योन्मुख था दृश्य अचल यों मुख-मण्डल का—
जल में ज्यों प्रतिबिम्ब सूर्य्य का ही हो झलका ॥

( ६ )

कर के पूरा ध्यान देख कुन्ती को आगे,
बोला वह यों वचन विनयपूर्वक अनुरागे।
"अधिरथ-सुत यह कर्ण तुम्हें करता प्रणाम है;
हो आर्य्ये! आदेश, कौन मम योग्य काम है?"

( ७ )

देकर तब आशीष उसे समुचित हितकारी,
बोली कुन्ती गिरा प्रकट उससे यों प्यारी।
"बढ़े तुम्हारी कीर्ति वत्स! नित भूमण्डल में;
आखण्डल* सम कहें सकल जन तुम को बल में

( ८ )

"अधिरथ सुत की बात वदन से तुम न बखानो,
शुद्ध सूर्य्य-सुत श्रेष्ठ सदा अपने को जानो।
"राधा-सुत तुम नहीं, पुत्र मेरे हो प्यारे,
मानो मेरे वचन सत्य ये निश्चय सारे ॥

( ९ )

"आमन्त्रित कर सूर्य्य देव को मैंने मन में,
मन्त्र-शक्ति से तुम्हें जना था पिता-भवन में।
आत्म-विषय में विज्ञ न होने से तुम सम्प्रति,
रखते हो रिपु-रूप कौरवों में अनुचित रति ॥

( १० )

" अहो दैव! उत्पन्न किया था जिसको मैंने,
सुर-सम्भव नर जन्म दिया था जिसको मैंने।
वही आज तुम वैर पाण्डवों से रखते हो,
कर्तव्याकर्तव्य नहीं कुछ भी लखते हो।

( ११ )

" होता तुम से सदा पाण्डवों का अनहित है,
सोचो तो हे वत्स! तुम्हें क्या यही उचित है?
सुत-सेवा-उपहार दिया जाता क्या योंही?
माता-ऋण-प्रतिकार किया जाता क्या योंही?

* इन्द्र

(१२)

"जननी का सन्तोष पूर्ण करना मन माना,
धर्म्मज्ञो ने यही धर्म्म का मर्म्म बखाना।
सो हे धार्म्मिक-धीर! तुम्हारा है सब जाना,
फिर क्या समुचित नहीं पाण्डवो को अपनाना?

(१३)

"सदाचरण-रत सदा युधिष्ठिर अनुज तुम्हारे,
भीम, नकुल, सहदेव, पार्थ अनुगामी सारे।
हो तुम मम सुत प्रथम पाण्डवो के प्रिय भ्राता,
सो सब सोच विचार बनो अब उनके त्राता॥

(१४)

"पार्थ-भुजों से हुई उपार्जित सब सुखकारी,
दुर्योधन से हरी गई जो छल से सारी।
धर्म्मराज की वही राजलक्ष्मी अति प्यारी,
भोगो अरि संहार स्वय तुम हे बलधारी॥

(१५)

" तुम लोगों को देख भेटते बन्धु-भाव से,
प्रेम और आनन्द सहित अत्यन्त चाव से।
पामर कौरव जलें, स्वजन सारे सुख पावें,
मन चीते सब काम तभी मेरे हो जावें॥

(१६)

"राम-कृष्ण का नाम लिया जाता है जैसे,
सूर्य्य-चन्द्र को याद किया जाता हे जैसे।
वैसे ही सब लोग कहें कर्णार्जुन मुख से,
करो वीर तुम वही छुडा कर मुझको दुख से॥

(१७)

'कर्णार्जुन-सम्मिलन जगत को आज बता दो
बन्धु-बन्धु-सम्बन्ध सभी को प्रकट जता दो।
प्रेम-सिन्धु में स्वजन-वर्ग को शीघ्र नहा दो,
शत्रु-जनों का गर्व खर्व कर सर्व वहा दो॥

(१८)

राम-भरत की भेट हुई थी पहले जैसे।
कर्ण युधिष्ठिर-मिलन आज देखें सब तैसे।
मार्ई हूँ मै इसी लिये इस समय यहा पर,
करो पुत्र स्वीकार वचन मेरे ये हितकर॥"

(१९)

मर्म-स्पर्शी वचन श्रवण कर भी कुन्ती के,
बदले नहीं विचार कर्ण के निश्चल जी के।
प्रत्युत्तर फिर लगा उसे देने वह ऐसे—
मुरज मधुर गम्भीर घोष करता है जैसे॥

(२०)

" हे वर-वीरप्रसू! वचन ये सत्य तुम्हारे,
जन्म-कथा निज जान अङ्ग पुलकित मम सारे।
सूत-वश में हुए किन्तु सस्कार हमारे,
अधिरथ-राधा विदित हमारे पालक प्यारे॥

(२१)

"दुर्योधन ने सदा हमारा मान किया है,
प्रेमसहित धन-धान्य-पूर्ण बहु राज्य दिया है।
किये सतत उपकार जिन्हो ने ऐसे ऐसे,
त्यागें उनका सङ्ग कहो फिर हम अब कैसे?

(२२)

"टाले नहीं कदापि जिन्होंने वचन हमारे,
बन्धु-भाव जो रहे सदा ही हम पर धारे।
उनका ऐसे समय साथ कैसे हम छोडें?
तोड़ पूर्व-सम्बन्ध वैर कैसे हम जोड़ें?

(२३)

"किये भरोसा सदा हमारा ही निज मनमें,
दुर्योधन ने सकल कार्य हे किये भुवन में।
फिर भी जो साहाय्य करें उनका न कहीं हम,
यही कहेंगे विज्ञ मही मे मनुज नहीं हम॥

(२४)

"इस कारण हे जननि! रहेंगे जीवित जौलों,
होने देंगे अहित न दुर्योधन का तौलों।
लेंगे हम आमरण पक्ष उस बलधारी का,
करना क्या अपकार चाहिये उपकारी का?

(२५)

"कौरवपति की ओर धर्म्म को हम पालेंगे,
किन्तु तुम्हारे भी न वचन को हम टालेंगे।
एक पार्थ को छोड तुम्हारे हित-कारण से,
मारेंगे हम नहीं किसी पाण्डव को रण मे॥

[illegible] जन नना का यह मन[illegible]
[illegible]ज नाव! चातुर्य्य चरम तुमने!
[illegible] कौन जन
[illegible]रना गो न विचार है—
[illegible] संसार म
एक धर्म्म ही सार है ॥"



(२६)

"अर्जुन हो या हमीं एक जन लड़ स्वपक्ष में,
पावेंगे यदि विमल वीरगति को समक्ष में।
तो भी सुत हे जननि! रहेंगे पाँच तुम्हारे,
होंगे मिथ्या नहीं कभी ये वचन हमारे॥"

(२७)

दृढ़-प्रतिज्ञ यों देख कर्ण को कुन्ती रानी,
बोल सकी इस हेतु न उससे फिर कुछ वाणी।
इसी विपत्ति [illegible] चित्र बना कर यह मनः
[illegible]ज बाबू! चातुर्य-चरम तुमने
यह [illegible] कौन जन
करता यों न विचार है—
"इस क्षण-भङ्गुर संसार में
एक धर्म्म ही सार है॥"



मैं, अपने दिल मे नवाब की हिम्मत पर आफरीन करने लगी। वाह री हिम्मत, क्या कहना ? खानदानी रईस हैं ना ?

बिस्मिल्ला की बेमुरव्वती देखिये। नवाब से भी वही छुट्टन जान के घर जाने का बहाना करके, उनको सवेरे से रुखसत कर दिया। खुदा जाने किस से वादा था। इस वाकये के दूसरे तीसरे दिन का जिक्र है, मैं खानम के पास बैठी हूँ, इतने मे एक बूढी सी औरत आई। खानम साहब को झुक-झुक के सलाम किये। खानम ने बैठने का इशारा किया। सामने बैठ गई।

खानम 'कहाँ से आई हो ?'

बुढिया 'क्या बताऊँ कहाँ से आई हूँ ? कोई है तो नही, क्यो ?'

खानम 'बुआ यहाँ कौन है ? मैं हूँ, तुम हो और यह छोकरी, इसको बात समझने की तमीज नही, कहो।'

बुढिया 'मुझे नवाब फखरुन्निसा बेगम ने भेजा है।'

खानम 'कौन फखरुन्निसा बेगम साहबा ?'

बुढिया 'ए, तो तुम नही जानती, नवाब छब्बन साहब '

खानम 'समझी, कहो '

बुढिया 'बेगम साहबा ने मुझे भेजा है। आप बिस्मिल्ला जान की अम्माँ है न ?'

खानम 'हाँ, बात कहो।'

बुढिया 'बेगम साहबा ने कहा है, कि छब्बन साहब मेरा इकलौता लडका है। मैं भी उस पर परवाना हूँ और उसका बाप भी परवाना था। मेरे नाजो का पाला है, और उसका चचा भी दुश्मन नही है। अपनी औलाद से बढकर समझता है। उसकी भी एक इकलौती लडकी है, छब्बन की मँगेतर। लडकी पर गाली चढ चुकी है। छब्बन ने शादी से इन्कार कर दिया है। इसी पर चचा को बुरा मालूम हुआ। मैंने दखल नही दिया। सब नसीहत के लिये किया गया है। तुम्हारी लडकी का उम्र भर का घर है। जो तनख्वाह लडका देता था, उससे दस ऊपर मुझ से लेना। मगर इतना एहसान मुझ पर करो कि शादी पर राजी कर दो। शादी के बाद, सब जायदाद इसी की है। सिवा इस

के और कौन है। मेरी, और चचा की जानोमाल का मालिक है। मगर इतना ख़्याल रखो, कि यह घर तबाह न होने पाये। इसमें तुम्हारा भी भला है और हमारा भी। आइन्दा, तुम को अख्तियार है।'

ख़ानम 'बेगम साहबा को मेरी तरफ से आदाब तस्लीमात कहना, और अर्ज करना, कि जो कुछ आपने इर्शाद फरमाया है, खुदा चाहे, तो वही होगा। मैं आपकी उम्र भर की लौंडी हूँ। मुझसे कोई अमर खिलाफ न होगा, ख़ातिर जमा रखिये।'

बुढ़िया 'मगर बेगम साहबा ने कहा है, कि छब्बन को इसकी खबर न होने पाये। बड़ा ज़िद्दी लड़का है। अगर कहीं मालूम हो गया, तो हरगिज न मानेगा।'

ख़ानम (मामा से) 'क्या मजाल। (मुझसे) देख छोकरी, कहीं किसी से यह यह किस्सा न ले बैठना।'

मैं जी नहीं।'

इसके बाद बुढ़िया ने अलहदा ले जा के, ख़ानम से चुपके-चुपके बातें की, वह मैंने नहीं सुनी। मामा के रुख़सत के वक्त ख़ानम को इतना कहते सुना।

ख़ानम 'मेरी तरफ से अर्ज़ करना, इसकी क्या ज़रूरत थी। हम लोग तो क़दीमी नमकख़्वार हैं।'

बुढ़िया के जाने के बाद, ख़ानम ने बिस्मिल्ला को बुला भेजा और कुछ ऐसे दो अक्षर कान में फूँक दिये, कि अब जो नवाब साहब आये, तो वह आवभगत हुई, कि मुलाजमत के जमाने में भी कभी न हुई थी।

नवाब साहब बैठे हैं। बिस्मिल्ला से मुहब्बत की बातें हो रही हैं। मैं भी मौजूद हूँ। इतने में ख़ानम साहबा बिस्मिल्ला के कमरे के दरवाज़े पर जा के खड़ी हुई।

ख़ानम 'ए लोगो हम भी आवें ?'

बिस्मिल्ला (नवाब से) 'ज़रा सरक के बैठो, अम्माँ आती. (ख़ानम से) आइए।'

ख़ानम ने सामने आते ही नवाब को तीन तस्लीमें कीं। मैंने आज के दिन

के सिवा, खानम को इस तरह मुअदब होकर सलाम करते न देखा था।

खानम (नवाब से) 'हुजूर का मिजाज कैसा है ?'

नवाब (गर्दन झुका के) 'खुदा का शुक्र है।'

खानम 'खुदा खुश रखे, हम लोग तो दुआ-गो है। हजार बढ़ जाये, मगर फिर भी वही टके की मालजादी, आपके हाथ को देखने वाले। आपको खुदा ने रईस किया है, इस वक्त एक अर्ज ले के हाजिर हुई हूँ। यूँ तो बिस्मिल्ला, खुदा रखे साल भर से आपकी खिदमत मे है, मगर मैंने कभी आपको तक-लीफ नही दी। बल्कि हुजूर के सलाम को बहुत कम हाजिर होने का इत्तिफाक हुआ होगा। इस वक्त ऐसी ही जरूरत थी, जो चली आई।'

खानम तो यह बाते कर रही है, बिस्मिल्ला उनका मुँह देख रही हैं, कि क्या कह रही हैं। मैं किसी कदर बात का पहलू समझे हुए थी। नवाब उसकी तरफ देख रहे थे। नवाब का यह हाल है, कि चेहरे से एक रग जाता है, एक आता है। आँखे झेपी जाती हैं, मगर चुपके बैठे हैं।

खानम 'तो फिर अर्ज करूँ ?'

नवाब (बहुत ही मुश्किल से) 'कहिये।'

खानम (मुझ से) 'जरा बुआ हुसैनी को बुला लेना।'

मैं गई और बुआ हुसैनी को बुला लाई।

खानम (बुआ हुसैनी से) बुआ, जरा दुशाले की जोडी तो उठा लाना। वही, जो कल बिकने को आई है।'

'बिकने को आई है।' इन लफ्जो ने नवाब पर वही असर किया जैसे किसी पर यकायक बिजली गिरे, मगर बहुत जब्त करके चुपके बैठे रहे। इतने मे बुआ हुसैनी दुशाला ले आई। कैसा बढिया कढा हुआ दुशाला, कि बहुत कम देखने मे आता है।

खानम (नवाब को दुशाला दिखा के) 'देखिये, यह दुशाला कल बिकने आया है। सौदागर दो हजार कहता है। पन्द्रह सौ तक लोगो ने लगा दिये है, वह नही देता। मेरी निगाह मे, सत्तरह बल्कि अठारह तक भी महँगा नही है। अगर हुजूर परवरिश करे तो इस बुढापे मे आपकी बदौलत एक दुशाला तो

और ओढ़ लूँ।'

नवाब खामोश बैठे रहे। बिस्मिल्ला कुछ बोला ही चाहती थी कि खानम ने कहा,

खानम 'ठहर लड़की, तू हमारे बीच मे न बोलना। तू तो आये दिन फरमाइश किया करती है, एक फरमाइश हमारी भी सही।'

नवाब फिर चुपके बैठे है।

खानम 'उई नवाब! सखी से सूम भला जो तुरत दे जवाब। कुछ तो इरशाद कीजिये। चुप रहने से तो बन्दी को तसकीन न होगी। हाँ न सही, ना सही, कुछ तो कह दीजिये। मेरे दिल का अरमान तो निकल जाये।'

नवाब अब भी चुप है।

खानम 'लिल्लाह हुजूर! जवाब दीजिये। यूँ तो मेरी हकीकत ही क्या है। मुई बाजारी कस्बी, मगर आप ही लोगो की इज्जत दी हुई है। बराए खुदा इन छोकरियो के सामने तो मुझ बुढ़िया को जलील न कीजिये।'

नवाब (आबदीदा होकर) 'खानम साहब! इस दुशाले की कोई असल नही है, मगर तुमको शायद मेरा हाल मालूम नही। क्या बिस्मिल्ला जान ने कुछ नही कहा? और उमराव जान भी तो उस दिन थी।'

खानम 'मुझसे किसी ने भी कुछ नही कहा। क्यो? खैर तो है?'

बिस्मिल्ला फिर कुछ बोलने को थी, कि खानम ने आँख का इशारा किया, वह चुप रही। टाल के इधर-उधर देखने लगी। मैं पहले ही से बुत बनी बैठी थी।

नवाब 'अब हम इस काबिल नही रहे, जो आपकी फरमाइशो को पूरा कर सकें।'

खानम 'आपके दुश्मन इस काबिल न रहे हो, और मैं भी ऐसी छिछोरी नही, जो रोज फरमाइश किया करूँ। फरमाइशे करे न करे बिस्मिल्ला करें। भला म बुढ़ी आदी, मेरी फरमाइशे क्या और मैं क्या?'

यह कह के खानम ने एक आह सर्द भरी, फिर कहा 'हाय तकदीर अब हम हम इस लायक हो गये, कि ऐसे ऐसे रईस एक जरा से चीथडे के लिये हम से

मुँह छिपाते हैं ।'

मैं देख रही थी, कि खानम का एक एक फिकरा नवाब के दिल पर नश्तर का काम दे रहा था ।

नवाब 'खानम साहब, आप सब लायक हैं। मैं सच कहता हूँ, मैं अब इस लायक नहीं रहा, जो किसी की फरमाइश पूरी करूँ'।

इसके बाद नवाब ने अपनी तबाही का मुख्तसिर हाल कहा ।

खानम 'खैर मियाँ ! इस लायक तो आप नहीं रहे कि एक अदना सी फरमाइश पूरी करें, तो फिर लौंडी के मकान पर आना क्या फर्ज था । हुज़ूर को नहीं मालूम, कि वेश्याएँ तो चार पैसे की मीत होती हैं । क्या आपने यह मिसल नहीं सुनी, कि रंडी किसकी जोरू ? हम लोग मुरव्वत करें, तो खायें क्या ? यूँ आईये, आपका घर है । मैं मना नहीं करती, मगर आपको अपनी इज्जत का खुद ही ख्याल करना चाहिये ।

यह कह के खानम फौरन कमरे से चली गई ।

नवाब 'वाकई मुझ से बड़ी गलती हुई, अब इनशाअल्लाह न आऊँगा ।'

यह कह के वह उठने को थे, कि बिस्मिल्ला ने दामन पकड़ के बिठा लिया ।

बिस्मिल्ला 'अच्छा, तो इस कड़े की जोड़ी के बारे में क्या कहते हो ।'

नवाब (किसी कदर चिढ़ कर) 'मैं नहीं जानता ।'

बिस्मिल्ला 'ए वाह, तो तुम बिलकुल ही खफा हो गये । जाते कहाँ हो, ठहरो ।'

नवाब नहीं बिस्मिल्ला जान, अब मुझको जाने दो । अब मेरा आना बेकार है । जब खुदा हमारे दिन फेरेगा, तो देखा जायेगा । और अब क्या दिन फिरेंगे ?'

बिस्मिल्ला 'मैं तो न जाने दूँगी ।'

नवाब 'तो क्या अपनी अम्माँ से जूतियाँ खिलवाओगी ?'

बिस्मिल्ला (मुझसे) 'हाँ सच तो है बहन उमराव ! आज यह बड़ी बी को हुआ क्या था । बरसों हो गये, मेरे कमरे में आज तक झाँकी नहीं । आज

आई भी, तो कयामत बरपा कर गई । भई अम्माँ चाहे खफा हो जाये, चाहे खुश हो, मैं नवाब से रस्म नहीं तर्क कर सकती । आज नहीं है इनके पास, न सही । ऐसी भी क्या आँखों पर ठीकरी रख लेना चाहिये । आखिर वही नवाब हैं, जिनकी बदौलत हजारों रुपये अम्माँ जान ने पाये । आज जमाना इनसे फिर गया, तो क्या हम भी तोते की तरह आँखें फेर ले ? घर से निकाल दे ? यह हरगिज नहीं हो सकता । अब अगर अम्माँ ज्यादा तग करेगी तो बहन उमराव, मैं सच कहती हूँ, नवाब साहब का हाथ पकड के किसी तरफ को निकल जाऊँगी । लो मैंने तो अपने दिल की बात कह दी ।

मैं बिस्मिल्ला की बाते बहुत अच्छी तरह समझ रही थी । हाँ में हाँ मिला रही थी ।

बिस्मिल्ला अच्छा तो नवाब तुम कहाँ रहते हो ?'

नवाब कहाँ बताऊँ ?'

बिस्मिल्ला 'आखिर कही तो ।'

नवाब 'तहसीनगज मे मखदूम बख्श के मकान पर रहता हूँ । अफसोस, मैं न जानता था, कि मखदूम ऐसा नमक हलाल आदमी है । सच तो यह है, मैं उस से बहुत ही शर्मिन्दा हूँ ।'

मैं 'यह वही मखदूम बख्श है ना, जो आपके वालिद के वक्त से नौकर था, जिसको आपने मौकूफ कर दिया था ?

नवाब 'हाँ, वही मखदूम बख्श, क्या कहूँ ? इस वक्त वह कैसा काम आया । खैर, अगर खुदा ने चाहा '

इतना कह के नवाब की आँखों से टप टप आँसू गिर पडे । इसके बाद, नवाब, बिस्मिल्ला से दामन छुडा के बाहर चले गए । मेरा इरादा था, कि नवाब से चलते वक्त कुछ बाते करूँगी और इसीलिए उनके साथ ही उठी थी, मगर वह इस कदर जल्द, जीने से उतर गये कि मैं कुछ कह न सकी । नवाब के तेवर उस वक्त बहुत बुरे थे । खानम की बातो ने नवाब के दिल पर सख्त असर किया था । उनकी हालत बिलकुल मायूसी की थी । अगर्चे मुझे मालूम था, कि यह सब बाते, खानम ने जो की है वह सब उस फरमाइश की तमहीद

है जो किसी और वक्त पर मौकूफ रखी गई है । मगर मुझे बहुत ही फिक्र थी, कि देखिए क्या होता है । ऐसा न हो कि कुछ खा के सो रहे, तो और गजब हो ।

सरे शाम, मैं और बिस्मिल्ला सवार हो कर तहसीनगंज गये । मखदूम बख्श का मकान बडी मुश्किल से मिला । कहारो ने उसके दरवाज़े पर आवाज़ दी । एक छोटी सी लडकी अन्दर से निकली, उस से मालूम हुआ कि मखदूम बख्श घर पर नही है । नवाब को पूछा । उसने कहा, वह सुबह से कही गये हुए है, अभी तक नही आये । दो घंटे तक इन्तज़ार किया, न नवाब साहब आए न मखदूम बख्श । आखिर मायूस हो कर घर चले आये ।

दूसरे दिन सुबह को मखदूम बख्श, नवाब को ढूँढता हुआ आया । मालूम हुआ, कि रात को भी उसके मकान नही गये । शाम को उनकी वालिदा की मामा, वही बुढिया जो एक दिन खानम के पास आई थी, रोती पीटती आई । उस से भी यही खबर मिली, कि नवाब का कही पता नही है । बेगम साहबा ने रोते रोते अपना अजब हाल किया । बडे नवाब सख्त फिक्र मे हैं ।

इस वाकया को कई दिन गुज़र गए और नवाब छब्बन साहब का कही पता नही मिला । इसके चौथे पाँचवे रोज, छब्बन साहब की अँगूठी, नखास मे बिकती हुई पकडी गई । बेचने वाले को अली रज़ा बेग कोतवाल के पास ले गये । उसने कहा, 'मुझे इमाम बख्श साकी के लडके ने बेचने को दी है ।' इमाम बख्श साकी का लडका तो न मिला । खुद इमाम बख्श पकड बुलाया गया । पहले तो इमाम बख्श साफ मुकर गया, कि इस अँगूठी को नही जानता । आखिर जब मिर्ज़ा ने खूब डाँटा और धमकाया, तो कबूल दिया ।

इमाम बख्श 'हुज़ूर ! मैं लबे दरिया हुक्का पिलाता हूँ । जो लोग दरिया नहाने जाते है, उनके कपडो की रखवाली करता हूँ । पाँच दिन का जिक्र है, एक शरीफजादे, कोई बीस बाईस बरस की उम्र होगी, गोरे से थे, बहुत खूबसूरत नौजवान । सरे शाम, पक्के पुल पर नहाने आये । कपडे उतार कर मेरे पास रखवा दिए । मुझ से लुंगी ले के बाँधी । खुद दरिया मे कूद पडे । थोडी देर तक नहाया किए, फिर मेरी नजरो से ओझल हो गए । और सब

लोग दरिया से नहा नहा के निकले, कपडे पहन पहन के अपने घरो को रवाना हो गए । वह, मैं यह समझा कि किसी तरफ तैरते हुए निकल गए होगे । बडी देर हो गई। मैं इस आसरे से था, कि अब आते है, अब आते है । पहर रात गये तक बैठा रहा। आखिर मुझे यकीन हो गया, कि डूब गए है। अब दिल में यह सोचा, कि अगर किसी को खबर करता हूँ, तो झगडो मे फँस जाऊँगा, खिचा खिचा फिरूँगा। इससे बेहतर है कि चुप हो रहूँ । कपडे उठा के घर ले आया । जेब मे यह अँगूठी निकली और एक और अँगूठी है, इसमें खुदा जाने क्या लिखा है। मैंने मारे डर के आज तक किसी को नही दिखाई। मैं तो इस अँगूठी को भी न बेचता मगर मेरा लडका शोहदा हो गया है, वह चुरा के ले आया।

मिर्जा अली रजा बेग ने, दो सिपाही कोतवाली से साथ किये, वह अँगूठी और कपडे उसके घर से मँगवाये। अँगूठी मोहर की थी। मिर्जा अली रजा बेग ने बडे नवाब को इस हादसे की खबर की। कपडे और दोनो अँगूठियाँ घर भिजवा दी। इमाम बख्श को सजा हो गई।

बिस्मिल्ला 'हा हा, आखिर नवाब छब्बन साहब डूब गये ना ? मैं तो सच कहूँ, अम्माँ जान की गर्दन पर उसका खून हुआ।'

मैं 'अफसोस ! मेरे तो उसी दिन दिल मे खटक गई। इसीलिये उस दिन उनके साथ उठी थी कि कुछ समझा दूँगी । मगर वह जीने से उतर ही गये।'

बिस्मिल्ला 'उन के सिर पर कजा सवार थी। खुदा गारत करे बडे नवाब को न उनको जायदाद से बेदखल करते, न वह अपनी जान देते।

मैं 'खुदा जाने, माँ का क्या हाल हुआ होगा ?'

बिस्मिल्ला 'सुना है, बेचारी दीवानी हो गई है।

मैं 'जो हो कम है। यही तो एक अल्लाह आमीन लडका था। एक तो बेचारी रॉड बेवा, दूसरे यह आफत उनके सिर पर टूट पडी । सच पूछो, तो उनका तो घर ही तबाह होगया।'

रुसवा 'तो नवाब छब्बन साहब को आप ने डुबो ही दिया। अच्छा, इस मौके पर एक बात और मुझे पूछ लेने दीजिये।'

मैं 'पूछिये।'

रुसवा : 'नवाब साहब पैरना जानते थे या नहीं।'

मैं 'क्या मालूम। यह आप क्यों पूछते हैं ?'

रुसवा 'इसलिए, कि मुझे मीर मछली साहब ने एक नुक्ता बता दिया था, कि जो शख्स तैरना जानता है, वह अपने आप से नही डूब सकता।'

## नौ

कुछ उनको इम्तिहाने वफा से गरज न थी,
इक जारो नातवां के सताने से काम था।

उमराव जान 'मिर्ज़ा रुसवा साहब ! आपको किसी से इश्क भी हुआ है ?

रुसवा 'जी नही खुदा न करे। आपको तो सैकडो से इश्क हुआ होगा। आप अपना हाल कहिये, ऐसी ही बातें सुनने के तो हम मुश्ताक हैं, मगर आप कहती ही नही।'

उमराव जान 'मेरा रंडी का पेशा है, और यह हम लोगो का चलता हुआ फिकरा है। जब हमसे ज्यादा किसी को जाल मे लाना होता है तो उस पर मरने लगते है। हम से ज्यादा किसी को मरना नही आता। ठंडी साँसें भरना, बात-बात पर रो देना, दो दो दिन खाना न खाना, कुँएं मे पैर लटका के बैठ जाना, संखिया खा लेना, यह सब कुछ किया जाता है। कैसा ही सख्त दिल आदमी क्यो न हो, हमारे फरेब मे आ ही जाता है। मगर आप से सच कहती हूँ, कि न मुझसे किसी को इश्क हुआ और न मुझको किसी से। अलबत्ता, बिस्मिल्ला जान को इश्क बाज़ी मे बडा रियाज हासिल था। इन्सान तो इन्सान, फरिश्ता उनके जाल से नही निकल सकता था। हजारो उनके आशिक थे और वह हजारो पर आशिक थी। सच्चे आशिको मे, एक मौलवी साहब किबला का भी चेहरा था। ऐसे वैसे मौलवी न थे। अरबी की ऊँची ऊँची किताबो का पाठ पढाते थे। दूर दूर से लोग उनसे पढने आते थे। जिस ज़माने का, मैं जिक्र करती हूँ उस वक्त उनकी उम्र सत्तर से कुछ कम ही होगा। नूरानी चेहरा, सफेद दाढी

सिर मुँडा हुआ, उस पर पगडी, लम्बा चोगा, लाठी मुबारिक। उनकी सूरत देख कर कोई नहीं कह सकता था, कि आप एक छँटी हुई, शोख़, नौजवान रंडी पर आशिक़ हैं, और इस तरह आशिक़ हैं।

एक दिन का वाक़या अर्ज करती हूँ। इसमे किसी तरह का मुबालगा न समझिये, बिल्कुल सही सही है। आपके दोस्त मीर साहिब मरहूम, जिनका दिलबर जान से ताल्लुक था, खुद शायर थे और उम्दा अशआर पर दम देते थे। इसी सिलसिले मे हुस्न परस्ती का भी शौक था, मगर निहायत ही माकू-लियत के साथ। शहर की वजादार रंडियो मे कौन ऐसी थी जहाँ वह न जाते हो।

रुसवा जी हाँ कहिये, मैं खूब जानता हूँ। ख़ुदा उनके दरजात आला करे।'

उमराव जान 'वह भी इस मौके पर मौजूद थे। शायद आपको याद हो। बिस्मिल्ला जान, खानम से लड के कुछ दिनो के लिये उस मकान मे जा कर रही थी, जो बजाजे के पिछवाडे था।'

रुसवा 'मैं उस मकान पर कभी नही गया।'

उमराव 'खैर। मगर बिस्मिल्ला के देखने के लिये और इस गरज से भी, कि माँ बेटियो मे मिलाप करादूँ, मैं अक्सर जाया करती थी। एक दिन करीब शाम, सेहन मे तख्तो के चौके पर, गाव से लगी बैठी है। मीर साहब मरहूम, उन के करीब तशरीफ रखते हैं। मौलवी साहब किबला, सामने दो जानूँ बैठे हुए है। इस वक्त उनकी बेकसी की सूरत, मुझे कभी न भूलेगी। जैतून की तस्बीह, चुपके चुपके, या हफीज या हफीज पढ रहे है। मैं जो गई, तो बिस्मिल्ला ने हाथ पकड के मुझे बराबर बिठा लिया। मैं, मीर साहब और मौलवी साहब को तस्लीम कर के बैठ गई। बिस्मिल्ला ने चुपके से मेरे कान मे कहा, 'तमाशा देखोगी ?'

मैं (हैरान होकर) 'क्या तमाशा ?'

बिस्मिल्ला 'देखो।' यह कह के मौलवी साहब की तरफ मुतवज्जेह हुई।

मकान के सेहन मे बहुत पुराना एक नीम का दरख्त था। मौलवी साहब को हुक्म हुआ, 'इस दरख्त पर चढ जाओ।'

मौलवी साहब के मुँह पर हवाईयाँ उडने लगी, थर थर काँपने लगे। मैं जमीन पर गिरी पडी जाती थी। मीर साहब मुँह फेर के बैठ गये। मौलवी साहब बेचारे, कभी आसमान को देखते थे कभी बिस्मिल्ला की सूरत को। वहाँ एक हुक्म कर के दूसरा हुक्म पहुँचा और फौरन, तीसरा नादरी हुक्म 'चढ जाओ, कहती हूँ।

अब मैने देखा, कि मौलवी साहब 'बिस्मिल्ला' कह के उठे। चोगे शरीफ को तख्तो के चौके पर छोडा। नीम की जड के पास खडे हुए, फिर एक मर्तबा बिस्मिल्ला की तरफ देखा। उसने एक ज़रा ची बजबी हो के कहा 'हूँ।'

मौलवी साहब पाजामा चढा के दरख्त पर चढने लगे। थोडी दूर जा कर बिस्मिल्ला की तरफ देखा। इस देखने का शायद यह मतलब था कि बस या और ?' बिस्मिल्ला ने कहा 'और।'

मौलवी साहब और चढे। फिर हुक्म का इन्तज़ार किया। फिर वही 'और'। इस तरह दरख्त की फुनगी के पास पहुँच गये। अब अगर और ऊपर जाते, तो शाखे इस कदर पतली थी, ज़रूर ही गिर पडते, और जान बहक खत्म हो जाते। बिस्मिल्ला की ज़बान मे 'और' निकलने ही को था, कि मैं कदमो पर गिर पडी। मीर साहब ने निहायत मिन्नत के साथ सिफारिश की। बारे हुक्म हुआ 'उतर आओ।' मौलवी साहब, चढने को तो चढ गये मगर उतरने मे बडी दिक्कत हुई। मुझे तो ऐसा मालूम होता था, अब गिरे और जब गिरे। मगर बखैरो आफियत उतर आये। बेचारे पसीने पसीने हो गये। दम फूल गया। करीब आये, अपना चोगा पहना, चुपके बैठ गये, तस्बीह पढने लगे। बैठ तो गये मगर किसी पहलू करार न था। चींटे, चोगे शरीफ मे घुस गये थे। इस से बहुत परेशान थे।

रसवा 'भई वल्लाह, बिस्मिल्ला भी अजब दिल्लगीबाज रडी थी।'

उमराव जान 'दिल्लगी का क्या ज़िक्र है ? वह बेदर्द चुपकी बैठी थी। हसन्नुत का असर भी चेहरे पर न था। मैं और मीर साहब दोनो दम बखुद

थे। एक अजीब आलमे हैरत तारी था।

रहेगा क्यो कोई तर्जे सितम बाकी ज़माने मे,
मजा आता है उस क़ाफिर को उलफत आजमाने में।'

रुसवा 'यह जुमला उम्र भर हँसने के लिये काफी है। तम्मवुर शर्त है। तुम ने तो वयान किया और मेरी आँखो के सामने बिस्मिल्ला, मौलवी साहव और उनकी मुकद्दस सूरत, मीर साहव, तुम, मेहन, नीम का दरख्त, इन सवकी तस्वीरे खिंच गई। यह तो कुछ ऐमा वाकया है कि दफातन हँमी भी नही आती। अच्छा, गौर कर लूँ तो हँसूँ। ना साहव! मुझे हँमी नही आती, मौलवी साहव की हिमाकत पर रोना आता है। वेशक बिस्मिल्ला कयामत की रडी थी। सत्तर वरस का बुड्ढा, इस पर यह हुक्म दरख्त पर चढ जाओ' और वह भी चढ गये। मेरी कुछ समझ मे नही आता। वडा टेढा मसला है।'

उमराव जान 'वाकई, आप नही समझ सकते। इसमे कयामत की वारीकी है। आखिर वयान ही करना पडा।'

रुसवा 'लिल्लाह वयान कीजिये। क्या अभी कुछ और फजीहत बाकी है?'

उमराव जान 'अभी वहुत सी फजीहते वाकी हैं, ले सुनिये। मौलवी साहव के जाने के वाद मैंने विस्मिल्ला से पूछा,

मैं 'विस्मिल्ला! यह तुझको क्या हुआ था।'

विस्मिल्ला 'क्या?'

मैं 'सत्तर वरस का बुड्डा और जो दरख्त पर मे गिर पडता तो मुफ्त मे खून होता।

विस्मिल्ला 'हमारी वला से खून होता। मै तो इस मुए बुड्ढे से जली हुई हूँ। कल मेरी घन्नो को इस जोर से दे पटखा, कि हड्डी पसली टूट गई होती।'

वात यह थी, कि विस्मिल्ला जान ने एक बँदरिया पाली थी। उसका वडा गहरा सुहाग था। ज़रा उसके ठाठ सुन लीजिये। इतलस की घघरिया, क़ामदानी की कुरती, गले मे घूँघरू, सोने की वालियाँ। जलेबियाँ, इमरतियाँ

खाने को। जब मोल ली, तो जरा सी थी। दो तीन बरस मे खूब खा खा के मोटी हुई थी। जो लोग जानते थे, वह तो खैर, अजनबी आदमी पर जा गिरे तो घिग्घी बँध जाय। जोर भी इतना था कि, अच्छे मर्द का हाथ पकड ले, तो छुडाये न छूटे।

जिस दिन मौलवी साहब नीम पर चढाये गये है उससे एक दिन पहले का जिक्र है, कि आप तशरीफ लाये। तख्तो के चौके पर बैठे हुए थे, कि बिस्मल्ला जान को मसखरापन सूझा। घन्नो को इशारा किया। वह पीछे से चुपके आई और उचक के मौलवी साहब के कन्धे पर जा बैठी। मौलवी साहब ने जो मुड के देखा, बेचारे घबरा गये। जोर से झटक दिया। यह तख्त के निचे गिर पडी। मैं तो जानती हूँ खुद चली गई होगी। मौलवी साहब पर खूँखियाने लगी, मौलवी साहब ने लाठी दिखाई। वह डर के मारे बिस्मिल्ला की गोद मे जा बैठी। बिस्मिल्ला ने उसे तो चुमकार कर दोपट्टे का आँचल ओढा दिया और मौलवी साहब को खूब दिल खोलकर कोसा, गालियाँ दी। इस पर भी सब्र न आया। दूसरे दिन यह सजा तजवीज की।

रुसवा 'सजा मुनासिब थी।'

उमराव जान 'मुनासबत मे तो कोई शक नही। मौलवी साहब को खटके का लगूर बना दिया।'

रुसवा 'वाकई मौलवी साहब लायके-सजा तो थे। कैस ने तो लैला के कुत्ते को प्यार करके गोद मे उठा लिया और मौलवी साहब ने बिस्मिल्ला जान की चहेती बँदरिया को अव्वल तो झटक दिया, और फिर यह बेअदबी कि उसे लाठी दिखाई। यह इश्क की शान से बहुत दूर था।

एक दिन रात के आठ बजे बिस्मिल्ला जान के कमरे मे हूँ। बिस्मिल्ला गा रही है, मै तम्बूरा छेड रही हूँ। खलीफा जी तबला बजा रहे हैं। इतने मे मौलवी साहब किबला तशरीफ लाये।

बिस्मिल्ला (देखते ही) 'आठ दिन मे तुम कहाँ थे?'

मौलवी साहब 'क्या कहूँ, मुझे तो ऐसा तेज बुखार आया था, कि बचना मुश्किल था। मगर तुम्हारा दीदार करना था, इसलिये बच गया।'

थे। एक अजीब आलमे हैरत तारी था।

रहेगा क्यो कोई तर्ज़े सितम बाकी जमाने मे,
मजा आता है उस काफिर को उलफत आजमाने में ।'

रुसवा 'यह जुमला उम्र भर हँसने के लिये काफी है । तसव्वुर शर्त है। तुम ने तो बयान किया और मेरी आँखो के सामने बिस्मिल्ला, मौलवी साहब और उनकी मुकद्दस सूरत, मीर साहब, तुम, मेहन, नीम का दरख्त, इन सबकी तस्वीरे खिच गई। यह तो कुछ ऐसा वाक़या है कि दफातन हँसी भी नही आती। अच्छा, गौर कर लूँ तो हँसूँ। ना साहब! मुझे हँसी नही आती, मौलवी साहब की हिमाकत पर रोना आता है । बेशक बिस्मिल्ला कयामत की रडी थी। सत्तर बरस का बुड्ढा, इस पर यह हुक्म दरख्त पर चढ जाओ' और वह भी चढ गये। मेरी कुछ समझ मे नही आता। बडा टेढा मसला है।'

उमराव जान 'वाकई, आप नही समझ सकते । इसमे कयामत की बारीकी है। आखिर बयान ही करना पडा।'

रुसवा 'लिल्लाह बयान कीजिये । क्या अभी कुछ और फजीहत बाकी है ?'

उमराव जान 'अभी बहुत सी फजीहतें बाकी है, ले सुनिये । मौलवी साहब के जाने के बाद मैंने बिस्मिल्ला से पूछा,

मैं 'बिस्मिल्ला! यह तुझको क्या हुआ था।'

बिस्मिल्ला 'क्या ?'

मैं 'सत्तर बरस का बुड्डा और जो दरख्त पर मे गिर पडता तो मुफ्त मे खून होता।

बिस्मिल्ला 'हमारी बला से खून होता । मै तो इस मुए बुड्ढे से जली हुई हूँ । कल मेरी धन्नो को इस जोर से दे पटखा, कि हड्डी पसली टूट गई होती।'

बात यह थी, कि बिस्मिल्ला जान ने एक बँदरिया पाली थी। उसका बडा गहरा सुहाग था । ज़रा उसके ठाठ सुन लीजिये । इतलस की घघरिया, कामदानी की कुरती, गले मे घूँघरू, सोने की बालियाँ । जलेबियाँ, इमरतियाँ

खाने को। जब मोल ली, तो जरा सी थी । दो तीन बरस मे खूब खा खा के मोटी हुई थी । जो लोग जानते थे, वह तो और, अजनबी आदमी पर जा गिरे तो घिग्घी बँध जाय । जोर भी इतना था कि, अच्छे मर्द का हाथ पकड ले, तो छुडाये न छूटे ।

जिस दिन मौलवी साहब नीम पर चढाये गये है उससे एक दिन पहले का ज़िक्र है, कि आप तशरीफ लाये । तख्तो के चौके पर बैठे हुए थे, कि बिस्मल्ला जान को मसखरापन सूझा । घन्नो को इशारा किया । वह पीछे से चुपके आई और उचक के मौलवी साहब के कन्धे पर जा बैठी । मौलवी साहब ने जो मुड के देखा, बेचारे घबरा गये । जोर से झटक दिया । यह तख्त के निचे गिर पडी । मैं तो जानती हूँ खुद चली गई होगी । मौलवी साहब पर खूँखियाने लगी, मौलवी साहब ने लाठी दिखाई । वह डर के मारे बिस्मिल्ला की गोद मे जा बैठी । बिस्मिल्ला ने उसे तो चुमकार कर दोपट्टे का आंचल ओढा दिया और मौलवी साहब को खूब दिल खोलकर कोसा, गालियाँ दी । इस पर भी सब्र न आया । दूसरे दिन यह सज़ा तजवीज़ की ।

रुसवा 'सज़ा मुनासिब थी ।'

उमराव जान 'मुनासबत मे तो कोई शक नही । मौलवी साहब को खटके का लगूर बना दिया ।'

रुसवा 'वाकई मौलवी साहब लायके-सज़ा तो थे । कैस ने तो लैला के कुत्ते को प्यार करके गोद मे उठा लिया और मौलवी साहब ने बिस्मिल्ला जान की चहेती बँदरिया को अव्वल तो झटक दिया, और फिर यह बेअदबी कि उसे लाठी दिखाई । यह इश्क की शान से बहुत दूर था ।

एक दिन रात के आठ बजे बिस्मिल्ला जान के कमरे मे हूँ । बिस्मिल्ला गा रही हैं, मैं तम्बूरा छेड रही हूँ । खलीफा जी तबला बजा रहे है । इतने मे मौलवी साहब किबला तशरीफ लाये ।

बिस्मिला (देखते ही) : 'आठ दिन से तुम कहाँ थे ?'

मौलवी साहब 'क्या कहूँ, मुझे तो ऐसा तेज बुखार आया था, कि बचना मुश्किल था । मगर तुम्हारा दीदार करना था, इसलिये बच गया ।'

बिस्मिल्ला जान 'तो यह कहिये, 'विसाले-खुदा' हो गया होता, इस फिकरे ने मुझको और खलीफा जी को फड़का दिया ।'

मौलवी साहब 'जी हाँ, आमार तो कुछ ऐसे ही थे ।

बिस्मिल्ला 'वल्लाह, अच्छा होता ।'

मौलवी साहब 'मेरे मरने से आपको क्या नफा होता ?'

बिस्मिल्ला 'जी, आप के उर्स मे हर साल जाया करते । गाते नाचते, लोगो को रिझाते, आपका नाम रौशन करते ।'

इस तरह की चंद बातो के बाद, गाना शुरु हुआ । बिस्मिल्ला ने हसब मौका यह गज़ल शुरू की ।'

मरते मरते न क़ज़ा याद आई,
उसी काफिर की अद याद आई ।

मौलवी साहब पर वज्द की हालत तारी थी । आँसुओ का तार बँधा हुआ था । कतरे दाढ़ी से टपक रहे थे । इतने मे सामने वाला दरवाज़ा खुला और एक साहब, गन्दुमी रंग, गोल चेहरा, स्याह दाढ़ी, म्याना कद, कमरती बदन, जामदानी का अँगरखा फँसा फँसा पहने हुए, खुले पायचो का पाजामा, मख़मली जूता, निहायत उम्दा जाली पर की चिकन का रुमाल ओढे हुए दाखिल हुए । बिस्मिल्ला ने देखते ही कहा 'वाह साहब ! उस दिन के गये आज आप आये ? ले, बस अब टहलिये, मै ऐसी आशनाई नही रखती, और वह ताल ताकी गरट के ताके कहाँ है ? इसी से तो आप ने मुँह छिपाया ।'

वह साहब (जरा झुकके) 'नही सरकार ! यह बात नही है । उस दिन से मुझे फुर्सत नही मिली । वालिद की तबीयत बहुत अलील थी । मै उनकी तीमारदारी मे था ।'

बिस्मिल्ला 'जी हाँ ! आप ऐसे ही सआदतमन्द है, मुझे यकीन है । यह नही कहते, कि बब्बन की छोकरी पर आप फरेफ्ता है, और रात को वही दरबारी होती है । मुझे सब खबरे मिलती है और हम से फिकरे होते है, कि वालिद की तबीयत अलील थी ।

इस आवाज को सुन के एक बार मौलवी साहब ने पीछे मुड के देखा ।

उनकी आँखे चार हुई। मौलवी साहब ने फौरन मुँह फेर लिया। दूसरे साहब को जो देखती हूँ, तो चेहरे का रग उड गया। हाथ पॉव थर थर काँपने लगे। जल्दी से दरवाजा खोल के कमरे के नीचे थे। विस्मिल्ला पुकारती की पुकारती रही। उन्होने जवाब तक न दिया।'

विस्मिल्ला भी कुछ समझ के पहले तो चुप सी हो गई, मगर फिर एक मर्तबा त्योरी चढा के आप ही आप कहने लगी 'फिर बाशद' इतना कह के गाने मे मसरूफ हो गई।

उस दिन के बाद, मैं ने उनको कभी विस्मिल्ला के पास आते नही देखा। मौलवी साहब बराबर आया किये।

रुसवा 'जी हाँ, अगले जमाने के लोग ऐसे ही वजादार होते थे।

गाना हो रहा था, कि गौहर मिर्जा शायद यह सुनके कि मैं यहाँ हूँ, चले आये। इन से और विस्मिल्ला से हँसी होती थी। गाली गलौच से लेके कुश्तम कुश्ता तक नौबत पहुँच जाती थी। मेरा मिज़ाज ऐसा छिछोरा न था, कि मैं बुरा मानती।

गौहर मिर्ज़ा मेरे और विस्मिल्ला के बीच मे बैठ गया और झप से विस्मिल्ला के गले मे हाथ डाल दिये।

गौहर मिर्ज़ा 'आज खूब गा रही हो। जी चाहता है ।'

अब जो देखती हूँ तो मौलवी साहब की झुर्रियो मे हरकत होने लगी। एक ही मर्तबा, गौहर मिर्ज़ा की निगाह मौलवी साहब पर जा पडी। पहले तो बग़ौर सूरत देखी। फिर अपना कान ज़ोर से पकडा, झिझक के पीछे हटा। यह मालूम होता था, कि गोया आप डर गये। विस्मिल्ला इस हरकत पर बेतहाशा हँस पडी। खलीफा जी मुस्कुराने लगे। मैंने मुँह पर रूमाल रख लिया, मगर मौलवी साहब बहुत ही चीं बजबी हुए। बल्कि करीब था कि उठ जाये। मगर विस्मिल्ला ने कहा, 'बैठो,' बेचारे बैठ गये। विस्मिल्ला भी क्या ही शरीर थी, मौलवी साहब पर यह ज़ाहिर करना मजूर था, कि गौहर मिर्ज़ा मेरे आशना हैं, ताकि मौलवी साहब देख के जलें। गौहर मिर्ज़ा से हँसना शुरु किया। बडी देर तक मौलवीसाहब को इस धोखे मे रखा। और

इनका वह हाल, जैसे कोई अंगारों पर लोट रहा हो। झुलसे जाते है। मारे हँसी के, मेरे पेट मे बल पडे जाते हैं। आख़िर मौलवी साहब की बेकसी पर मुझे रहम आया। मैंने भाँडा फोड दिया। इससे बिस्मिल्ला मुझसे नाराज़ हो गई। मैंने गौहर मिर्ज़ा की तरफ मुतवज्जेह होके कहा· 'लो अब मनचलापन कर चुके, चलो।'

अब मौलवी साहब को मालूम हो गया कि गौहर मिर्ज़ा से मुझसे रस्म है, बिस्मिल्ला से कोई वास्ता नही। बहुत ही खुश हुए। बाछे खिल गई।

रुसवा 'मौलवी साहब से तो पाक मुहब्बत थी न ?'

उमराव जान· 'पाक मुहब्बत थी।'

रुसवा 'फिर उनको जलना न चाहिये था।'

उमराव जान 'वाह ! क्या पाक मुहब्बत मे रश्क नही होता है।'

रुसवा 'तो पाक मुहब्बत न होगी।'

उमराव जान 'अब यह उनका ईमान जाने। मैं तो यही समझती थी।'

## दस

खानम की नौचियो मे, यूँ तो मेरे सिवा हरएक अच्छी थी, मगर खुरशीद का जवाब न था। परी की सूरत थी। रग मैदा जैसा नाक नक्शा ऐसा, गोया कुदरत ने अपने हाथ से बनाया था। आँखो मे यह मालूम होता था कि मोती कूट-कूट के भर दिये है। हाथ पाँव सुडोल, नूर के साँचे मे ढले हुए, भरे-भरे बाजू, गोल-गोल कलाइयाँ। जामाज़ेबी वह कयामत की, कि जो पहना, मालूम हुआ कि यह इसी के लिये मुनासिब था। अदाओ मे वह दिलफरेबी, वह भोलापन, जो एक नजर देखे हजार जान से फरेफ्ता हो जाय। जिस महफिल मे जाके बैठ गई, मालूम हुआ कि एक शमा रौशन हो गई। बीसियो रडियाँ बैठी हो, नज़र इसी पर पडती थी। यह सब कुछ था, मगर तकदीर की अच्छी न थी। और तकदीर को भी क्यो इल्ज़ाम दीजिये, खुद अपने हाथो उम्र भर खराब रही। हकीकत यह है, कि वह रडीपन के लायक न थी। बैसवाडे के एक ज़मीदार की लडकी थी। सूरत से शराफत ज़ाहिर होती थी। हुस्न, खुदा दाद था, मगर इस हुस्नोजमाल पर खब्त यह था, कि कोई मुझ पर आशिक हो। यूँ तो खुद ही प्यार करने के लायक थी। कौन ऐसा होगा, जो उस पर फरेफ्ता न हो जाता। अव्वल ही अव्वल प्यारे साहब को मुहब्बत थी। हज़ारो रुपये का सलूक किया। वाकई जान देते थे। खुरशीद ने भी उन्हे अच्छी तरह कसा। जब इतमीनान हो गया, कि सच्चा आशिक है, खुद जान देने लगी। दिन-दिन भर खाना नही खाती। अगर इनको किसी

दिन इत्तिफाक से देर हो गई, बैठी जारे कतार रो रही है। हम सबने सलाह दी, 'देखो खुरशीद, ऐसा न करो। मर्दुए बेमुरव्वत होते हैं। तुम्हारे उनके सिर्फ आशनाई है। आशनाई की बुनियाद क्या ? निकाह नहीं हुआ, ब्याह नहीं हुआ। अगर ऐसा चाहोगी तो अपना बुरा चाहोगी, और पछताओगी।' आखिर हमारा ही कहा हुआ। प्यारे साहब ने जब देखा कि रंडी प्यार करती है, लगे नखरे करने। या तो आठो पहर बैठे रहते थे, या अब है कि वह दो दो दिन नही आते। खुरशीद जान दिये देती है। रोती है, पीटती है, खाना नही खाती। अजीब हाल है। खानम को सूरत से नफरत हो गई, यहाँ तक कि आना जाना, खाना पीना, आदमियों की तनख्वाह सब मौकूफ।

मै नही समझ सकती, कि इस हुस्न के साथ इश्क उसके दिल मे किसने भर दिया था। सच तो यह है, कि वह किसी मर्द आदमी की जोरू होती तो खूब निबाह होता। उम्र भर, मर्द, पाँव धो-धो के पीता। बशर्ते कि कदरदान होता। बिस्मिल्ला, खुरशीद के तलुवो की बराबरी नही कर सकती थी। इस पर वह तमकनत, वह गुरूर, वह नाज, वह नखरे कि खुदा की पनाह। मौलवी साहब का हाल तो आप सुन ही चुके है, और आशनाओ से भी उसका सलूक कुछ अच्छा न था। असल तो यह है, कि उसको अपनी माँ की दौलत पर घमड था। वाकई दौलत भी बेइन्तहा थी। अपने आगे किसी की हस्ती ही न थी। खुरशीद की जात से खानम को बडी उम्मीदे थी। वाकई अगर इसमे रंडीपन होता, तो लाखो ही पैदा करती। इस हुस्नोखूबी पर आवाज बिल्कुल न थी। नाचने मे भी बिल्कुल फूहड थी। सिर्फ सूरत ही सूरत थी। अव्वल अव्वल, मुजरे बहुत आते थे। आखिर जब मालूम हुआ कि गाने नाचने मे तमीज नही, लोगो ने बुलाना छोड दिया। जो था, वह सूरत का मुश्ताक होके आता था। अच्छे-अच्छे मरते थे। मगर जब आके देखा, मुँह थोथाये बैठी है। इन पर इश्क सवार था। हरएक से बेरुखी, बेमुरौवती। यह हालत देख के लोगो ने भी आना छोड दिया। अब प्यारे साहब ही सिर्फ रह गये। इधर तमाशा देखिये, कि प्यारे साहब के वालिद पर शाही जुल्म हुआ। घर की जब्ती हो गई। जागीर छीन ली गई। बेचारे मोहताज हो गये। यह सब कुछ हुआ,

मगर खुरशीद के इश्क मे कमी न हुई। अब यह जिद हुई कि मुझे घर मे बिठा लो।

प्यारे साहब ने खानदान की इज्जत, या यूँ कहो कि बाप के डर मे मजूर न किया। खुरशीद की आस टूट गई।

खुरशीद बहुत ही नातजुर्बेकार औरत थी। सैकडो रुपया फुसला-फुसला के लोग खा गये। फकीर-फुकरा से आपको बडा भरोसा था। एक दिन एक शाह साहब तशरीफ लाये। वह एक के दो करते थे। खुरशीद ने अपने कडे और कगन की जोडियाँ उतार दी। शाह साहब ने एक कोरी हाँडी मँगवाई। उसमे स्याह तिल भरवाये। कडे कगन हाँडी मे रख के चपनी ढाँप दी। शाल बाफ का एक पर्चा गले मे बाँध, नाडे से बाँध दिया। शाह साहब रवाना हो गये। चलते-चलते कह गये कि आज न खोलना, कल सुबह को खोलना। मुर्शिद के हुक्म से एक के दो हो जायेगे। सुबह को हाँडी खोली गई, काले तिलो के सिवा कुछ न मिला।

एक जोगी ने काले नाग का फन मुँह से निकाल के दिखाया कि यह तुझे परसो आके डस लेगा। वी खुरशीद ने कानो से पत्ते वालियाँ निकाल के हवाले की। खुरशीद को कभी गुस्सा आता ही न था। ऐसी नेक दिल और नेक मिजाज औरते, बहू बेटियो मे कम होती है, रडियो का तो जिक्र ही क्या? मगर हाँ, एक दिन गुस्सा आया। जिस दिन प्यारे साहब माँझे का जोडा पहन के आये। अव्वल तो चुपकी बैठी रही, थोडी देर के बाद गालो पर सुर्खी झलकी। रफ्ता-रफ्ता सुर्ख भभूका हो गई। इसके बाद उठी, माँझे के जोडे के पुर्जे-पुर्जे कर डाले। अब रोना शुरू हुआ। दो दिन तक रोया की। तमाम दुनिया ने समझाया, कुछ न माना। आखिर बुखार आने लगा। दो महीने बीमार रही, लेने के देने पड गये। हकीमो ने दिक तजवीज की। लेकिन खुदा के फजल से दो महीने के बाद, मिजाज खुद बखुद ठीक होगया। इसके बाद और लोगो से मुलाकात हुई। मगर किसी से दिल न लगा और न किसी का दिल इनसे। इसलिये कि बेपरवाही और बेमुरौवती हद से ज्यादा बढी हुई थी। बजाहिर मिलती थी, मगर दिल न मिलता था।

## ग्यारह

सावन का महीना है, तीसरे पहर का वक्त है। पानी वरस के खुल गया है। चौक के कोठो और वुलन्द दीवारो पर जगह-जगह धूप है। वादल के टुकडे आसमान पर इधर-उधर आते जाते नजर आते हैं। पच्छिम की तरफ रग-रग की लाली नजर आती है। चौक मे सफेद पोशो का मजमा ज्यादा होता जाता है। आज ज्यादातर मजमे की एक वजह यह भी थी, कि जुम्मा का दिन है। लोग ऐश वाग के मेले को, कदम उठाए, जल्द-जल्द चले जाते हैं। खुरशीद, अमीर जान, विस्मिल्ला और मैं, मेले जाने के लिये वन-ठन रहे हैं। धानी दोपट्टे, अभी रगरेज रग के दे गया है, चुने जाते हैं। वालो मे कघी हो रही है, चोटियाँ गूँथी जाती हैं, भारी ज़ेवर निकाले जाते हैं। खानम साहव, सामने चौके पर गाव तकिये से लगी वैठी है। वुआ हुसैनी अभी पेचवान लगा के पीछे हटी हैं। खानम साहव के सामने मीर साहव वैठे हैं। मेले जाने पर इसरार कर रहे हैं। वह कहती है, आज मेरी तबीयत सुस्त है। मैं नही जाने की। हम लोग दुआऐं माँग रहे है, कि खुदा करे न जाएँ, तो मेले की वहार है।

खुरशीद पर इस दिन गजव का जोवन है। गोरी रगत, मलमल के धानी दोपट्टे से फूटी निकलती है। ऊदी गरट का पाजामा, वडे-वडे पायचो का, सँभाले नही सँभलता। फँसी-फँसी कुरती, कयामत ढा रही है। हाथ, गले मे हल्का-हल्का ज़ेवर है। नाक मे हीरे की कील, कान मे सोने की अतियाँ, हाथ

मे कडे, गले मे मोतियो का कठा । सामने कमरे मे आदम कद आईना लगा है। अपनी सूरत देख रही हैं। क्या कहूँ, क्या सूरत थी ? अगर मेरी सूरत वैसी होती, तो अपने अक्स की आप ही बलाऐं ले लेती । मगर इनको यह गम है, कि हाय इस सूरत पर कोई देखने वाला नही। प्यारे साहब से बिगाड ही हो चुका है, चेहरा उदास-उदास है । हाय, वह उदासी भी गज़ब कर रही है। अच्छी सूरत वालो का सब कुछ अच्छा मालूम होता है। इस वक्त, इस परी पैकर की सूरत देखने से दिल पिसा जाता है । और तो कोई मिसाल, अपने दिल की हालत की समझ मे नही आती। यह मालूम होता था, कि किसी अच्छे शायर का कोई दुख भरा शेर सुना है और दिल उसके मजे ले रहा है।

बिस्मिल्ला की सूरत ऐसी बुरी न थी। खिलता हुआ साँवला रग, किताबी चेहरा, सुतवाँ नाक, बडी आँखें, स्याह पुतली, छरहरा बदन, बूटा सा कद, कार-चोबी तुलवाँ जोडा, काही क्रेप का दोपट्टा, बन्नत टकी हुई ज़र्द गरट का पाजामा, बेश कीमत ज़ेवर, सिर से पाँव तक गहने मे लदी हुई। इस पर तुर्रा यह, कि फूलो का गहना। ऐन-मैन चौथी की दुल्हिन मालूम होती थी। फिर इस पर बात बात मे शोखी, शरारत। मेले मे पहुँच कर किसी को मुँह चिढा दिया, किसी से आँख लडाई। जब वह देखने लगा तो मुँह फेर लिया। हाँ, यह कहना भूल गई, कि बनाव सिगार कर के मियानो मे सवार हो कर मेले पहुँचे ।

मेले मे वह भीडें थी, कि अगर थाली फेंको तो सिर ही सिर जाये । जाबजा खिलौने वालो, मिठाई वालो की दुकानें, खोंचे वाले, मेवा फरोश, हार वाले, तम्बोली, साकिने, गरज कि जो कुछ मेलो मे होता है, सब कुछ था। मुझे तो और किसी चीज से काम नही, लोगो के चेहरे देखने का हमेशा से शौक है, खासकर मेले तमाशो मे । खुश-नाखुश, अमीर-गरीब, बेवकूफ-अक्लमद, आलिम-जाहिल, शरीफ-रजील, सखी-कजूस, यह सब हाल चेहरे से खुल जाता है । एक साहब हैं, कि अपने तन्ज़ेब के अँगरखे और ऊदी सदरी, नुक्कादार टोपी चुस्त घुट्टने और मखमली चढ्वें जूते पर इतराते हुए चले जाते है। कोई

साहब है, मन्दली रँगा हुआ दोपट्टा, सिर से आडा बाँधे हुए, रंडियों को घूरते फिरते है। एक साहब आये तो है मेला देखने, मगर बहुत ही रंजीदा, कुछ चुपके चुपके बुडबुडाते भी जाते है। मालूम होता है, बीबी से लड के आए है। जिन बातो के जवाब वर वक्त न सूझे थे, उन्हे अब याद कर रहे है। कोई साहब अपने छोटे से लडके की उँगली पकडे, उससे बाते करते चले आते है। हर बात मे अम्माँ का नाम आता है। अम्माँ खाना पकाती होगी। अम्माँ का जी माँदा है। अम्माँ सो रही होगी। अम्माँ जागती होगी। बहुत शोखी न किया करो, नही तो अम्माँ हकीम के यहाँ चली जावेगी। एक साहब सात आठ बरस की लडकी को सुर्ख कपडे पहना के लाये हैं। कंधे पर चढाए हुए है। नाक मे नन्ही सी नथनी है। ऊँची चोटी गुँथी हुई, लाल शाल बाफ का मूबाफ पडा है। हाथो मे चाँदी की चूडियाँ है। मासूम के दोनो हाथ जोर से पकडे है। कलाइयाँ दुखी जाती है। कोई चूडियाँ न उतार ले। कहिये फिर पहना के लाना ही क्या जरूर था।

लीजिये दूसरे साहब और उनके एक जिगरी यार भी साथ है। फरमाइशी गालियाँ चल रही हैं, 'अमाँ पान तो खिलाओ।' खट से एक पैसा तम्बोली की दुकान पर फैका। मालूम हुआ कि आप बडे अमीर है। पैसा दो पैसा आपके आगे क्या चीज है। फौरन ही हुक्का वाले को भी आवाज दे दी, भई साकी इधर आना हुक्का सुलगा हुआ है? एक और यार आ मौजूद हुए। मामूली गाली गलौच के बाद मुलाकात, सलाम बन्दगी, मिजाजपुर्सी जैसी बे-तकल्लुफ दोस्तो मे हुआ करती है। 'अबे, पान तो खिलवा' लुत्फ तो यह, आप मुसलमान यार हिन्दू। जब तम्बोली ने पान दिये, झप से बढ के ले लिये। 'अबे यार, भूल गये।' अब यह खिसियाने हुए। एक पैसा निकाला। 'लो भई, हमे भी दो पान देना, इलायची भी छोड देना। चूना ज्यादा न हो।' (दोस्त से) 'अच्छा, लो, चिलम तो पिलवाओगे।'

चिलम हुक्का से उतारते ही थे, कि साकी ने घूर के देखा। फौरन हाथ मे हुक्का और जेब से पैसा निकाल के देना पडा।

गौहर मिर्जा ने मोती झील के किनारे फर्श बिछा दिया था। वही जा के

ठहरे। इधर-उधर दरख़्तो मे फिरते रहे। सरे शाम से, दो घडी रात गये तक मेला की सैर की। फिर घर चलने की ठहरी। अपने अपने मियानो मे सवार हुए। अब जो देखते है, तो खुरशीद जान का मियान खाली है। उनका कही पता न मिला। आखिर, मायूस हो के घर वापस आये। ख़ानम ने सुनते ही सिर पीट लिया। तमाम घर को सदमा हुआ। मै खुद, रात भर रोया की। प्यारे साहब के मकान पर आदमी गया। वह बेचारे उसी वक्त दौडे आये। हज़ारो कस्मे खाई, 'मुझे बिल्कुल नही मालूम, मैं मेले मे भी नही गया। बेगम की तबीयत अलील है, जाता तो क्योकर जाता ?' प्यारे साहब पर यूँ बेजा सा गुमान था। उनके कस्मे खाने के बाद किसी को शुबहा न रहा। वजह यह थी, कि वह शादी के बाद बीबी के ऐसे पाबन्द हो गये थे, कि चौक का आना जाना, उन्होने बिल्कुल मौकूफ कर दिया था। रात को घर से निकलते ही न थे। ख़ुरशीद के गुम होने की खबर सुन के, कुछ तो अगली मुहब्बत के ख्याल से और कुछ ख़ानम की मुरव्वत से, नही मालूम, किस तरह से चले आये थे।

खुरशीद के गुम होने के डेढ महीने बाद, एक साहब, जिनकी वजा शहर के बाँको की ऐसी थी, साँवला रग, छरहरा बदन, एक दुशाला कमर मे लपेटे और एक सिर मे बाँधे, मेरे कमरे मे दरांना चले आये और आते के साथ ही सामने कालीन के किनारे बैठ गये। इससे मुझे मालूम हुआ कि तबीयत मे किसी कदर कमीनापन है, या अभी अनीले हैं। रडियो के यहाँ जाने का कम इत्तिफाक हुआ है। इस वक्त मैं अकेली बैठी थी। मैने बुआ हुसैनी को आवाज़ दी। वह कमरे मे आई। उनके आते ही वह साहब उठ खडे हुए और किसी कदर बेतकल्लुफी के साथ बुआ हुसैनी का हाथ पकड लिया। अलहदा ले जाके कुछ बातें की, जिनमे कुछ मैंने सुनी और कुछ नही सुनी। इसके बाद, बुआ हुसैनी ख़ानम साहब के पास गई, वहाँ से आके फिर बातें हुई। आखिर कलाम यह था, कि आपको एक महीना की तनख्वाह पेशगी देनी होगी। इन साहब ने, कमर से रुपयो की थैली निकाली। बुआ हुसैनी ने गोद फैलाई। उन्होने छन से रुपये फेंक दिये।

बुआ हुसैनी 'यह कितने है ?'

वह साहब 'नही मालूम । गिन लीजिये ।'

बुआ हुसैनी 'ए, मुझे तो निगोडा गिनना भी नही आता ।'

वह साहब 'मै जानता हूँ, पच्हत्तर रुपये होगे । शायद, एक दो कम हो या ज्यादा ।'

बुआ हुसैनी 'मियाँ पच्हत्तर किसे कहते हैं ?'

वह साहब 'तीन बीसी और पन्द्रह । पच्चीस कम सौ ।'

बुआ हुसैनी 'पच्चीस कम सौ ! तो यह कितने दिन की तनख्वाह हुई ?'

वह साहब 'पन्द्रह दिन की । कल वह भी पन्द्रह दिन की दे दूँगा । पूरे डेढ सौ नक्द आपको पहुँच जायेंगे ।'

यह नकद सुन के मुझे बहुत ही बुरा मालूम हुआ । अब तो बिल्कुल ही यकीन हो गया, कि यह ऐसे ही वैसे होगे । मगर मजबूर । रडी का पेशा । दूसरे, पराये बस मे । करती तो क्या करती ?

बुआ हुसैनी, रुपये ले के खानम के पास गईं । खानम, उस वक्त नही मालूम किस नेकी के दम मे थी, कि फौरन मजूर कर लिया । बल्कि ताज्जुब हुआ इसलिये, कि बडे बडे रईसो से रुपये के बारे मे एक दम के लिये मुरव्वत नही करती थी और यहाँ इस वक्त एक दिन का वादा मान लिया ।

इस मुआमले के तय होने के बाद, वह साहब मेरे ही कमरे मे रात भर रहे । कोई पहर रात बाकी होगी मुझे ऐसा मालूम हुआ, कि जैसे किसी ने कमरे के नीचे आ के दस्तक दी । वह साहब फौरन उठ बैठे और कहा 'तो अब मैं जाता हूँ । कल शब को फिर आऊँगा ।' चलते वक्त पांच अशरफियाँ और तीन अँगूठियाँ, एक सोने की याकूत का नगीना, एक फीरोजे की, एक हीरे की, मुझको दी और कहा, यह तुम अपने पास रखना । खानम को न देना ।' मैंने खुशी खुशी पहनी और अपनी उँगलियो को देखने लगी । मुझे बहुत ही खूबसूरत मालूम होती थी । फिर सन्दूकचा खोला । अशर्फियो और अँगूठियो को चोरखाना मे रख दिया ।

दूसरे दिन शब को फिर वही साहब आये । उस वक्त, मैं तालीम ले रही थी । वह एक किनारे आ के बैठ गये । गाना हुआ किया । पांच रुपये साजिन्दो

को दिये। उस्ताद जी और सारंगिये खुशामद की बाते करने लगे। उस्ताद जी ने, कमर मे जो दुशाला बाँधा था, उसके ऐंठने की फिक्र की। फिर मुँह फाड के माँगा, मगर वार खाली गया। उन्होने न दिया।

वह साहब 'उस्ताद जी! रुपया पैसा और जिस चीज़ को कहिये, मौजूद है। यह दुशाला मैं नही दे सकता। एक दोस्त की निशानी है।'

उस्ताद जी अपना सा मुँह ले के चुप हो रहे।

इसके बाद तालीम खत्म हुई।। बुआ हुसैनी को बाकी पच्हत्तर गिन दिये। पाँच रुपया बुआ हुसैनी को अपनी तरफ से दिये, वह रुखसत हुईं। जब वह और मैं, सिर्फ दो आदमी कमरे मे रह गये, मैंने पूछा, 'आपने मुझको कहाँ देखा था जो इनायत की।'

वह 'दो महीने हुए, ऐश बाग़ के मेले मे।'

मैं 'और फिर आये दो महीने के बाद।'

वह 'मैं बाहर चला गया था, और अब फिर जाने वाला हूँ।'

अब मैंने रंडीपन की लगावट शुरू की।

मैं 'तो हमे छोड के चले जाओगे?'

वह 'नही, फिर बहुत जल्द आ जाऊँगा।'

मैं 'और तुम्हारा मकान कहाँ है?'

वह 'मकान तो फर्रुखाबाद मे है, मगर यहाँ बहुत काम रहता है, बल्कि रहता यही हूँ। कुछ दिनो के लिए बाहर चला जाता हूँ, फिर चला आता हूँ।'

मैं 'और यह दुशाला किसकी निशानी है?'

वह किसी की नही।'

मैं 'वाह, मैं समझ गई, यह तुम्हारी आशना की निशानी है।'

वह 'नही, तुम्हारे सिर की कसम, मेरी कोई आशना नही है। बस तुम्ही हो, जो कुछ हो।'

मैं 'तो फिर मुझे दे दो।'

वह 'मैं नही दे सकता।'

यह बात मुझे बहुत नागवार हुई। इतने मे उन्होंने बडे बडे मोतियो की

माला, जिसमे जमुर्रद की हड़े लगी हुई थी, और एक जोडी हीरे के कड़े की, और दो अँगूठियाँ सोने की, मेरे सामने रख दी। यह सब तो मैंने खुशी-खुशी उठा लिया। सन्दूकचा खोल के बन्द करने लगी। मगर मुझे ताज्जुब हुआ कि यह हजारो की रकम तो यूँ मुझे दिये देते है। मगर यह दुशाला ज्यादा से ज्यादा पाँच सौ का होगा, इससे क्यो इन्कार किया। वाकई मुझको यह दुशाला पसन्द न था, जो मैं इसरार करती। अपने काम मे काम था।

इन साहब का नाम फैज़अली था। पहर, डेढ पहर रात गये, आते थे, और कभी आधी रात को, कभी पिछले पहर मे, उठ के जाते थे। महीना डेढ महीना मे कई मर्तबा, दस्तक या सीटी की आवाज़, मैंने सुना की और फौरन ही फैज़अली उठ कर रवाना हो गये। फैज़अली से रब्त हुए, कोई डेढ महीना गुजरा होगा कि मेरा सन्दूकचा सादे और जडाऊ गहने से भर गया। अशर्फियो और रुपयो का शुमार नही। अब मेरे पास खानम और बुआ हुसैनी से छिपा हुआ, दस बारह हजार का माल हो गया था।

फैज़अली से अगर्चे मुझको मुहब्बत न थी, तो नफरत भी न थी। और होने की क्या वजह? अव्वल तो वह कुछ बदसूरत भी न थे, दूसरे लेना-देना अजीब चीज है। मैं सच कहती हूँ, जब तक वह न आते थे, मेरी आँखें दरवाजे की तरफ लगी रहती थी। गौहर मिर्ज़ा की आमदरफ्त, इन दिनो सिर्फ दिन की रह गई थी। शब के आने वालो मे से भी अक्सर लोग समझ गये थे कि मैं किसी की पाबन्द हो गई हूँ, इसलिये सवेरे से खिसक जाते थे, और जो साहब जम के बैठते थे, उनको मैं किसी हीले से टाल देती थी। खुरशीद की तलाश बहुत कुछ हुई, मगर सुराग न मिला। इस दौरान मे फैजअली को मुझ से बहुत मुहब्बत थी, जिसका इज़हार तरह-तरह से होता था। अगर मेरा दिल शुरू से गौहर मिर्जा की तरफ मायल न हो गया होता, तो मै जरूर फैज़अली से मुहब्बत करती और उसी को दिल देती। इस पर भी मैंने उनकी दिलजोई और खातिरदारी मे किसी तरह कमी नही की। मैंने फैज़अली को फरेब दे रखा था कि मुझे तुम से मुहब्बत है और वह बेचारा मेरे जाल मे फँसा हुआ था। जो कुछ खुफिया उसने मुझको दिया, उसकी किसी को कानो कान खबर

न थी। खानम और बुआ हुसैनी के कहने से मुझे फरमाइशें भी करनी पड़ती थी। इन को पूरा करना भी वह अपना फर्ज़ समझता था। उसको रुपये पैसे की कोई परवाह न थी। ऐसा खुला दिल आदमी, न मैंने रईसो मे देखा, न शहज़ादो मे।

रुसवा 'जी हाँ, क्यो नही! माले मुफ्त दिले बेरहम। भला उसके बराबर किसका दिल हो सकता था?'

उमराव जान 'माले मुफ्त क्यो?'

रुसवा 'नही तो अपनी अम्माँ जान का ज़ेवर आपको उतार के ला दिया करता था?'

उमराव जान 'हमे क्या मालूम था?'

# बारह

रात के आने वालो मे एक पन्नामल चौधरी थे। घटा दो घटा बैठ के चले जाते थे। उनको चार आदमियो मे बैठने का मज़ा था। अगर उनकी खातिर-दारी होती रहे तो और किसी के आने जाने से उन्हे कुछ गरज़ न थी। महीने मे दो सौ रुपये का नकद सलूक और फरमाइशो का ज़िक्र नही। फैज़अली की मुलाकात के जमाने मे उनकी आमदोरफ्त भी कम हो गई थी। या तो हर रोज आया करते थे या दूसरे तीसरे दिन आने लगे। फिर एक मर्तबा पन्द्रह दिन का गोता लगाया। अब जो आये तो उदास-उदास। मामूली बातो का जवाब देते है, और खामोश हो जाते हैं।

पन्नामल 'क्या तुम ने सुना न होगा ?'

मैं 'क्या ?'

पन्नामल 'हम तो तबाह हो गये। घर मे चोरी हो गई। पुश्तो का जोडा हुआ धन उठ गया।'

मै (चौंककर) 'हाय चोरी हो गई ? कितने का माल गया ?'

पन्नामल 'सब उठ गया, रहा क्या ? दो लाख का जवाहर उठ गया।'

मै दिल मे तो हँसी। हसी इस बात पर, कि उनके बाप छन्नामल तो करोडपति मशहूर थे। इसमे कोई शक नही कि दो लाख बहुत बडी रकम है, मगर इनके नज़दीक क्या असल है। बज़ाहिर मुँह बना के बहुत अफसोस किया।

पन्नामल 'जी हाँ, अजकल शहर मे चोरियाँ बहुत होती है। नवाब मलका आलम के यहाँ चोरी हुई, लाला हरपरशाद के यहाँ चोरी हुई, अन्धेर है। सुना है, बाहर से चोर आये हुए है। मिर्ज़ा अली बेग बेचारे हैरान है। शहर के चोर सब तलब हो गये थे, किसी से कुछ पता नही मिला। वह लोग कानो पर हाथ रखते है कि यह हमारा काम नही है।'

पन्नामल के आने के दूसरे दिन, मैं अपने कमरे मे बैठी हूँ कि चौक मे एक शोर हुआ। मै भी चिक के पास जा खडी हुई। अब जो देखती हूँ तो भीड चली आ रही है।

एक 'आखिर गिरफ्तार हुए ना।'

दूसरा 'वाह मिर्ज़ा क्या कहना ? कोतवाल हो तो ऐसा हो।'

तीसरा ' 'क्यो भई, कुछ माल का भी पता लगा ?'

चौथा 'बहुत कुछ बरामद हुआ, मगर अभी बहुत सा बाकी है।'

पाँचवाँ 'मियाँ फैज़ू भी गिरफ्तार हुए ?'

छठा 'वह क्या आते है।'

मैंने अपनी आँखो से देखा कि मियाँ फैज़ू बँधे चले आते है। सिपाहियो का गारद साथ है। गिर्द लोगो का भी है। मियाँ फैज़ू मुँह पर दोपट्टा डाले हुए हैं, उनकी सूरत दिखाई नही देती। दोपहर से पहले का वाकया है।

हसब मामूल, फैजअली कोई पहर रात गये तशरीफ लाये। कमरे में, मैं हूँ और वह है। आते ही कहा, 'आज हम बाहर जाते हैं, परसो आयेंगे। देखो उमराव जान, जो कुछ हमने तुमको दिया है, उसको किसी पर ज़ाहिर न करना। बुआ हुसैनी को न देना, न खानम को दिखाना। तुम्हारे काम आयेगा। हम परसो जरूर आयेंगे। अच्छा, यह कहो कि हमारे साथ थोडे दिनो के लिये बाहर चल सकती हो ?'

मैं 'तुम जानते हो कि मैं अपने बस मे नही। खानम साहब की अख्तियार है, तुम उन से कहो। अगर वह राज़ी हो, तो मुझे क्या उज्र है।'

फैजअली 'सच है, कि तुम लोग बडे बेवफा होते हो। हम तो तुम पर जान देते है और तुम ऐसा खुश्क जवाब देती हो। अच्छा बुआ हुसैनी को

बुलाओ।'

मैंने बुआ हुसैनी को आवाज़ दी, वह आई।

फैजअली (मेरी तरफ इशारा करके) 'भला यह कुछ दिनो के लिये बाहर भी जा सकती है?'

हुसैनी 'कहाँ?'

फैजअली 'फर्रुखाबाद। मै कोई ऐसा वैसा आदमी नही हूँ। मेरी वहाँ रियासत है। फिलहाल, मै दो महीने के लिये जाता हूँ। अगर खानम साहब मजूर करे, तो दो महीने की तनख्वाह पेशगी, बल्कि इसके अलावा जो कुछ कहे, मै देने को तैयार हूँ।'

बुआ हुसैनी 'मुझे तो नही यकीन कि खानम मजूर करेगी।'

फैज़ अली 'अच्छा, तुम पूछो तो।'

बुआ हुसैनी खानम के पास गई।

मेरे नजदीक बुआ हुसैनी को खानम के पास भेजना बेकार था। इसलिये कि मुझे यकीन था कि वह हरगिज़ मन्जूर न करेगी।'

फैजअली ने मेरे साथ वह सलूक किया था, कि अगर मै अपने अख्तियार मे होती, तो मुझे उनके साथ जाने मे कुछ भी उज्र न होता। मै यह ख्याल करती थी, कि जब इस शख्स ने घर बैठे इतना सलूक किया, तो वतन जाकर निहाल कर देगा। मै इस ख्याल मे थी, कि इतने मे बुआ हुसैनी ने आकर साफ जवाब दे दिया, कि इनका बाहर जाना किसी तरह नही हो सकता।

फैजअली 'दुगनी तनख्वाह पर सही।'

बुआ हुसैनी 'चौगुनी तनख्वाह पर भी नही मुमकिन। हम लोग बाहर नही जाने देते।'

फैजअली 'खैर। जाने दो।'

बुआ हुसैनी चली गई। मैंने देखा कि फैजअली की आँखो से टपटप आँसू गिरने लगे। यह हाल देख के मुझे बहुत ही तरस मालूम हुआ।

माशूको की बेवफाइयो का जिक्र, किस्सा कहानियो मे जब सुनती थी, तो मुझे अफसोस होता था, बुरा कहती थी। मुझे यह ख्याल आया कि अगर

इसका साथ न दिया, तो मेरी बेवफाई और एहसान फरामोशी मे कोई शक नही। मैने दिल मे ठान लिया कि इस शख्स का जरूर साथ दूँगी।

मै 'अच्छा तो मै चलूँगी।'

फैजअली 'चलोगी ?'

मै 'हाँ, कोई जाने दे या न जाने दे, मै जरूर चलूँगी।'

फैजअली 'क्योकर ?

मै 'छिपकर।'

फैजअली 'अच्छा, तो परसो रात को हम आयेगे। पहर रात रहे तुम्हे यहाँ से निकाल ले चलगे। देखो, दगा न देना, वरना अच्छा न होगा।'

मै 'मै अपनी खुशी से चलने को कहती हूँ। तुमसे वादा कर चुकी हूँ। मेरे वादे को भी देखना।'

फैजअली वहुत अच्छा देखा जायेगा।'

उस रात को फैज अली, कोई डेढ पहर रात रहे, मेरे पास से उठ के चले गये। उनके जाने के वाद, मैं दिल मे गौर करने लगी। वादा तो कर लिया, मगर देखिये क्या होता है, जाऊँ या न जाऊँ ?

जव फैज अली की मुहब्वत और अपने वादे का ख्याल आता था, तो दिल कहता था कि जाना चाहिये मगर जैसे कोई मना करता था, कि न जाओ, खुदा जाने क्या हो।

इसी उधेड बुन मे सुवह हो गई, कोई वात तय न हुई। दिन भर यही वाते दिल मे रही, रात को इत्तिफाक से कोई मेरे पास नही आया। कमरे मे अकेली इसी फिक्र मे रही। आखिर नीद आ गई। सुवह को जरा दिन चढे सोया की। गौहर मिर्जा ने कच्ची नीद मे आकर झँझोड के जगा दिया। मुझे वहुत ही बुरा मालूम हुआ। दिन भर नशे का सा खुमार रहा। नही मालूम, किस वात पर वुआ हुसैनी से उलझन हो गई। हां, खूव याद आया। वात यह थी कि कही वाहर से मुजरा आया था। वुआ हुसैनी ने मुझसे कहा, 'जाओगी ?' उस वक्त मेरे सिर मे दर्द हो रहा था। मैंने साफ इन्कार कर दिया। वुआ हुसैनी ने कहा, 'वाह, जव तव इन्कार कर देती हो। आखिर इस

पेशे मे होकर करोगी क्या ?' मैंने कहा, 'मै तो न जाऊँगी।' हुसैनी ने कहा, 'नही, जाना होगा। खास तुम्हारी फरमाइश है और खानम साहब ने वादा कर लिया है। रुपया भी ले लिया है।' मैंने कहा, 'बुआ ! मैं नही जाने की, रुपया फेर दो।'

बुआ हुसैनी 'भला तुम जानती हो, खानम साहब रुपया लेके कभी फेरती हैं ?'

मैं · 'चाहे किसी की तबीयत अच्छी हो, चाहे न अच्छी हो। अगर खानम साहब रुपया न फेरेंगी, तो मैं अपने पास से फेर दूँगी।'

बुआ हुसैनी 'आ हा ! अब तुम बडी रुपये वाली हो गई हो, लाओ फेर दो।'

मैं · 'कितना रुपया है ?'

बुआ हुसैनी 'सौ रुपया है।'

मैं : 'सौ रुपया लोगी या किसी की जान ?'

बुआ हुसैनी को भी उस दिन खुदा जाने कहाँ की ज़िद चढ गई थी।

बुआ हुसैनी 'बडी खरी हो तो दे दो।'

मैं 'शाम को दे दूँगी।'

बुआ हुसैनी 'वहाँ बाहर के आदमी बैठे हुए है, वह शाम तक के लिये क्यो मानेगे ?'

बुआ हुसैनी दिल मे यह समझे हुए थी, कि इसके पास रुपया कहाँ से आया। अगर इस वक्त इस हीले से तग की जायेगी तो खामख्वाह मुजरे पर राज़ी हो जायेगी। मेरे सन्दूकचे मे, उस वक्त कुछ न होंगे, तो हज़ार डेढ हज़ार की अशरफियाँ थी। जवर का जिक्र नही, मगर इस वक्त बुआ हुसैनी के सामने सन्दूकचा खोलना ठीक नही था।

मैं 'जाओ घण्टा भर मे ले जाना।'

बुआ हुसैनी 'घण्टा भर मे क्या फरिश्ते दे जायेंगे ?'

मैं 'हाँ, दे जायेंगे। जाओ भई, इस वक्त मुझे दिक न करो, मेरी तबीयत अच्छी नही है।'

बुआ हुसैनी 'आखिर कुछ कहो तो क्या हुआ ?'

मैं 'मुझे बुखार की सी हरारत है और सिर मे शिद्दत से दर्द हो रहा है।'

बुआ हुसैनी (माथे पर हाथ रख के देखा) 'हाँ सच तो है। पिंडा फीका है। मगर मुजरे को तो कही परसो जाना होगा। जब तक खुदा न करे क्या तबीयत का यही हाल रहेगा ? रुपये क्यो फेरे जाथ ?'

मैं इस बात का कुछ जवाब न देने पाई थी, कि बुआ हुसैनी जल्दी से उठ के चल दी। बुआ हुसैनी की इस हमाहमी से मुझे बहुत ही गुस्सा मालूम हुआ। उसी वक्त दिल मे बदी आ गई। दिल ने कहा, वाह जी ! जब इन लोगो को, हमारे दुःख, बीमारी का ख्याल नही, अपने मतलब से मतलब है, तो इनके साथ रहना बेकार है।

रुसवा 'कभी पहले भी यह ख्याल आपके दिल मे आया था ?'

उमराव जान 'कभी नही। मगर आप यह क्यो पूछते हैं ?'

रुसवा 'इसलिये कि फैज़ अली ने जो वह सहारा दिया था, इसी से आपके दिल मे यह ख्याल पैदा हुआ।'

उमराव जान 'यह तो खुली हुई बात है।'

रुसवा 'खुली हुई बात तो है, मगर इसमे एक बारीकी भी है।'

उमराव जान 'वह बारीकी क्या है ? खुदा के लिये जल्दी कहिये।'

रुसवा 'फैज अली के साथ निकल जाना, वादा करने से पहले ही आपके दिल मे ठन गया था। अब दिल बहाने ढूँढ रहा था कि क्योकर निकल चलूँ।'

उमराव जान 'नही, यह बात न थी। मैं दो दिली हो रही थी, कि जाऊँ या न जाऊँ ? गौहर मिर्ज़ा के बेवक्त छेडने और बुआ हुसैनी की ज़बरदस्ती से मैंने जाने का इरादा कर लिया था। बल्कि उस वक्त तक कुछ यू ही सा इरादा था। जब तक रात को फैज़ अली आये थे, उनकी सूरत और तैयारी देख के पक्का इरादा हो गया था।'

रुसवा 'जी नहीं, पहले ही से इरादा पक्का हो चुका था। गौहर मिर्ज़ा

राय बरेली से, उस गाडी को, जो लखनऊ से आई थी, रुख़सत किया। दूसरी गाडी किराया पर की । लालगज की तरफ रवाना हुए। यह कस्बा, राय बरेली से कोई नौ दस कोस के फासले पर है। शामो-शाम पहुँच गए। रात भर सराय मे रहे। फैजअली जरूरी सौदे सुल्फ को बाज़ार गए । जिस कोठरी मे हम थे, उस के पास वाली कोठरी मे एक देहाती रडी उतरी हुई थी, नसीबन नाम था। गहने पाते से दुरुस्त थी। कपडे भी अच्छे थे। थी तो देहाती, मगर जबान बहुत साफ थी। रवो लहजा कस्बातियो का ऐसा था। मेरे उसके, देर तक बातें हुआ की।

नसीबन 'आप कहाँ से आई है ?'

मैं 'फैज़ाबाद से।'

नसीबन फैजाबाद मे तो मेरी बहन प्यारन रहती है। आप ज़रूर जानती होगी।'

मैं (आखिर पहचान गई ना कि मैं भी रडी हूँ) 'मैं क्या जानूँ ?'

नसीबन 'फैज़ाबाद मे कौन ऐसी पतुरिया है, जो हमको नही जानती।'

मैं 'बहुत दिनो से उनके घर बैठ गई हूँ। यह लखनऊ मे रहते हैं। इसी-लिये मैं भी अक्सर वही रहती हूँ।'

नसीबन 'आखिर पैदाइश तो तुम्हारी फैज़ाबाद की है।'

मै (यह तो बिल्कुल सच कहती है । अब क्या जवाब दूँ) 'हाँ पैदा तो वहाँ हुई, मगर बचपने से बाहर रही।'

नसीबन 'तो फैज़ाबाद मे किसी को नही जानती ?'

मैं 'किसी को नही।'

नसीबन 'यहाँ क्योकर आना हुआ ?'

मैं 'इनके साथ हूँ।'

नसावन 'और जाओगी कहाँ ?'

मैं 'उन्नाव।'

नसीबन 'लखनऊ होती हुई आई हो ?'

मैं 'हाँ।'

नसीबन फिर सीधा रास्ता छोड के यहाँ बीहड मे कहाँ आई हो ?' नरपतगज हो के उन्नाव चली गई होती ।'

मैं 'रायबरेली मे इनको कुछ काम था ।'

नसीबन 'मैंने इसलिए कहा, कि इधर का रास्ता बहुत खराब है। डाकुओ के मारे मुसाफिरो की आमदो-रफ्त बन्द है। पलिया की बीहड मे सैकडो को लूट लिया। उन्नाव का रास्ता उधर ही से हो के है। तुम तीन आदमी हो, जिसमे दो मर्द, एक औरत जात। तुम्हारे हाथ गले मे गहना भी है। भला तुम्हारी क्या हकीकत है। वहाँ तो बाराते लुट जाती है।'

मैं 'जो भी तकदीर मे होगा।'

नसीबन 'बडी दिल की कडी हो।'

मैं 'फिर क्या करूँ।'

इसके बाद इधर उधर की बातें हुआ की। जिनका दोहराना कोई जरूरी नही और न मुझे याद है। हाँ, मैंने पूछा, 'तुम कहाँ जाओगी ?'

नसीबन 'हम तो गदाई को निकले हैं।'

मैं 'नही समझी।'

नसीबन 'ए लो, गदाई नही जानती, कैसी पतुरिया हो।'

मैं 'बहन, मैं क्या जानूँ, गदाई तो भीख माँगने को कहते हैं।'

नसीबन 'हमारे दुश्मन भीख माँगे। और सच पूछो, तो मैं कहूँ पतुरिया की जात ही भीख मँगनी है। इसमे डेरेदार हो या न हो।'

मैं 'हाँ सच तो है। मगर मुझे नही मालूम था, गदाई किसे कहते हैं।'

नसीबन 'साल मे एक मर्तबा हम लोग घर से निकल के गाँव-गाँव फिरते है। अमीर, रईसो के मकान पर जा के उतरते हैं। जो कुछ जिससे बन पडता है, हमे देना है। कही मुजरा होता है, कही नही होता।'

मैं 'अच्छा, इसको गदाई कहते हैं।'

नसीबन 'हाँ, अब समझी।'

मैं 'यहाँ किसी रईस के पास आई हो ?'

नसीबन 'यहाँ से थोडी दूर पर एक शम्भू ध्यान सिंह राजा की गढी है,

उन्ही के पास गई थी। राजा साहब को बादशाही हुक्म पहुँचा है, डाकुओ के बन्दोबस्त को गये हुए है। कई दिन ठहरी रही। आखिर दम घबरगया, यहाँ चली आई। यहाँ से दो कोस पर एक गाँव है, नमरिया। वह गाँव बिल्कुल पतुरियो का है। वहाँ मेरी खाला रहती है, कल उनके पास जाऊँगी।'

मैं 'फिर कहाँ जाओगी ?'

नसीबन 'मैं ठहरी रहूँगी। जब राजा साहब आ जायेगे, तो फिर राजी को जाऊँगी। और बहुत मे डेरे भी उनके इन्तजार मे ठहरे हुए हैं।'

मैं 'क्या राजा साहब को नाच मुजरे का भी शौक है ?'

नसीबन 'बहुत शौक था।'

मैं 'क्यो, अब क्या हुआ ?'

नसीबन 'जब मे एक पतुरिया लखनऊ मे लाये है, हम लोगो की कोई कदर नही रही।

मैं 'उस पतुरिया का नाम क्या हे ?'

नसीबन 'नाम तो मुझको याद नही। सूरत देखी है। गोरी-गोरी सी है, जरा चेहरे मोहरे की अच्छी है।'

मैं 'गाती खूब होगी।'

नसीबन 'गाना वाना खाक नही आता। हाँ, नाचती जरा अच्छा है। राजा साहब उस पर लट्टू है।'

मैं 'कितने दिनो से वह पतुरिया आई है।'

नसीबन 'कोई छ महीने हुए होगे।'

रात को मैंने फैजअली से रास्ता की खराबी का हाल बयान किया। उन्होने कहा 'खातिर जमा रखो। हमने बन्दोबस्त कर लिया हे।'

# तेरह

दूसरे दिन मुँह-अँधेरे मोहन लाल गज की सराय से रवाना हुए । नसीबन की गाडी हमारे पीछे पीछे थी । फैजअली घोडे पर सवार थे । हम और नसीबन बाते करते जाते थे। थोडी दूर चल के समरिया मिला। नसीबन ने दूर से हमको वह गाँव दिखाया । सडक के किनारे खेत थे । इनमे कुछ कुँवारियाँ पानी दे रही थी। कुछ खेत निरा रही थी। एक पुरायी चल रही थी उनमे एक मुस्टडी औरत धोती बाँधे, बैल हाँक रही थी। एक पुर ले रही थी। नसीबन ने कहा, 'यह सब पतुरिया है।' मैं ने दिल मे कहा, वाह पेशा भी क्या, फिर इस कदर मेहनत जो मर्दों से मुश्किल हो। आखिर इन को पतुरिया होना क्या जरूर था, मगर इनकी सूरतें भी ऐसे ही कामो के लायक हैं । लखनऊ मे जो काडे वालियाँ, दही वालियाँ, घोमने आती है, उनकी शक्ल भी ऐसी ही होती है। नसीबन वहाँ से रुखसत हुई।

कोई दो कोस जा के एक ढलान मिला । जा बजा बीहड, बडे बडे गार। सामने नदी का किनारा नजर आया । दोनो तरफ, दूर तक, गुन्जान दरख्तो की कतार थी। जब हम इस मौका पर पहुँचे है, धूप अच्छी तरह निकल चुकी है। कोई पहर दिन चढा होगा । इस सडक पर सिवा हमारे कोई रास्ता चलते दिखाई न देता था । चारो तरफ सन्नाटा था। नदी के पास पहुँच के फैजअली ने घोडा आगे बढाया। मैं रोकती की रोकती रह गई। यह जा, वह जा बहुत दूर निकल गये। थोडी देर तक घोडा नजरो से गायब रहा, फिर नदी

के उस पार जा के मालूम हुआ।

हमारी गाडी इसी तरह चली जाती थी, गाडीवान गाडी हाँक रहा था। साईस घोडे के पीछे दौडा चला गया था। अब मैं हूँ और गाडीवान है। इतने मे, मैंने दूर से देखा, कि दस पन्द्रह गँवार गाडी की तरफ दौडे चले आते हैं। मैंने दिल मे कहा खुदा खैर करे। थोडी देर मे गँवारो ने आकर गाडी को घेर लिया। सब तलवारे बाँधे हुए थे। बन्दूके कधे पर थी। तोडे सुलग रहे थे।

एक गँवार (गाडीवान से) 'गाडी रोक। कौन है गाडी मे ?'

गाडीवान 'यह सवारी बरेली से आई है, उन्नाव का भाडा किया है।'

गँवार 'रोक गाडी।'

गाडीवान 'गाडी क्यो रोकें ? खान साहब के यहाँ की जनानी सवारी है।'

गँवार 'कोई मर्द साथ नही है ?'

गाडीवान 'मर्द आगे बढ गये है, आते होंगे।'

गँवार 'उतरो बीबी, गाडी से।'

एक 'पर्दा खीच के खीच लो, मुसरी पतुरिया तो है, इसका पर्दा कौन। एक गँवार आगे बढा। गाडी का पर्दा उलट के मुझे गाडी से उतारा। तीन आदमी मुझे घेर के खडे हो गये। इतने मे नदी की तरफ से गर्द उठी और घोडो के टापो की आवाज आई। जब घोडे करीब आये, मैंने देखा, आगे फ़ैज अली का घोडा है। पीछे और दस पन्द्रह सवार हैं। गँवारो ने देखते ही बन्दूको की बाढ मारी। इसमे दो सवार उधर के गिर पडे। फिर तलवारे म्यान से निकाली। सवार सिर ही पर आ गये थे, उधर से भी तलवारें खिच गई। दो एक हाथ चले होंगे, तीन गँवार इधर से जख्मी हो के गिरे। एक सवार इधर गिरा। गँवार भाग निकले। अच्छा कहाँ जाओगे ? देखो नदी के उस पार क्या होता है।

गँवारो के जाने के बाद, मैं फिर गाडी मे बैठी। जिस सवार के जख्म आया था, उसके पट्टियाँ कसी गई। वह भी गाडी मे मेरे साथ बिठाया गया। गाडी रवाना हुई। अब दो सवार हमारी गाडी के इधर उधर है। कुछ सवार आगे

# चौदह

नारी के वाद गाडीवान ने मिन्नत समाजत कर के
मी सवार को मैदान मे डाल दिया, जहाँ और लाशें
जान ले के वरेली की तरफ राही हुआ । मर्दों की
तरफ रवाना हुए । ग ी वहाँ से कोई पाँच कोस
साहब और उनके साथ के और लोग मिले ।
र थे । हम लोग सामने गये । मेरी तरफ

# चौदह

हम लोगो की गिरफ्तारी के बाद गाडीवान ने मिन्नत समाजत कर के रिहाई हासिल की। जख्मी सवार को मैदान मे डाल दिया, जहाँ और लाशें पडी थी। वह तो अपनी जान ले के बरेली की तरफ राही हुआ। मर्दो की मुश्के कसी गई। गढी की तरफ रवाना हुए। गढी वहाँ से कोई पाँच कोस थी, थोडी दूर जा कर राजा साहब और उनके साथ के और लोग मिले। राजा साहब खुद घोडे पर सवार थे। हम लोग सामने गये। मेरी तरफ इशारा कर के पूछा,

राजा 'यही बी साहबा लखनऊ से आई हैं ?'

मैं (हाथ बांध के) 'हुजूर कुसूरवार तो हूँ, लेकिन अगर गौर कीजिये तो ऐसा कुसूर भी नही। औरत जात, जाल फरेब से आगाह नही, मैं क्या जानती थी ?'

राजा 'अब बेकुसूरी साबित करने की कोशिश न कीजिये। कुसूर आपका साबित है। जो बातें आप से पूछी जायें उनका जवाब दीजिये।'

मैं 'जो हुक्मे हाकिम।'

राजा 'लखनऊ मे कहाँ मकान है ?

मैं 'टकसाल मे।'

राजा (आदमयो को इशारा कर के) 'देखो, तमत खेडे से एक बैल-गाडी ले लो, लखनऊ की रंडियाँ है। हमारे देश की पतुरियाँ नही है कि

## चौदह

हम लोगो की गिरफ्तारी के वाद गाडीवान ने मिन्नत समाजत कर के रिहाई हासिल की। जख्मी सवार को मैदान मे डाल दिया, जहाँ और लाशें पडी थी। वह तो अपनी जान ले के वरेली की तरफ राही हुआ। मर्दों की मुश्कें कसी गईं। गढी की तरफ रवाना हुए। ग.ी वहाँ से कोई पाँच कोस थी, थोडी दूर जा कर राजा साहव और उनके साथ के और लोग मिले। राजा साहव खुद घोडे पर सवार थे। हम लोग सामने गये। मेरी तरफ इशारा कर के पूछा,

राजा 'यही वो साहवा लखनऊ से आई हैं ?'

मैं (हाथ बाँध के) 'हुजूर कुसूरवार तो हूँ, लेकिन अगर गौर कीजिये तो ऐसा कुसूर भी नही। औरत जात, जाल फरेब से आगाह नही, मैं क्या जानती थी ?'

राजा 'अव वेकुसूरी सावित करने की कोशिश न कीजिये। कुसूर आपका सावित है। जो वातें आप से पूछी जायें उनका जवाव दीजिये।'

मैं 'जो हुक्मे हाकिम।'

राजा 'ल नऊ मे कहाँ मकान है ?

मैं 'टकसाल मे।'

राजा (आदमयो को इशारा कर के) 'देखो, तमत खेडे से एक वैल-गाडी ले लो, लखनऊ की रडियाँ हैं। हमारे देश की पतुरियाँ नही हैं कि

मैं गाडी से उतरी, आम के दरख्त के नीचे दरी बिछा दी गई । सालन की पतीलियाँ ला के रखी गई । थई की थई रोटियाँ, मोटी मोटी, टोकरियों मे आई । मैं, फैज़अली और फज़ल अली के तीन आदमियो ने, मिल के खाना खाया । खाना खाते वक्त, अगर्चे चेहरो पर फिक्र के आसार थे, मगर हँसी मज़ाक होता जाता था ।

जितनी देर मे हम ने खाना खाया, छोलदारियाँ उखाड के टट्टुओ पर लादी गई । जीन कसे गये ।

आखिर काफिला चल निकला ।

दो ही तीन कोस गये होगे, कि वहुत से सवार और पैदलो ने आ के घेर लिया । इधर भी सब पहले से तैयार थे, दोनो तरफ से गोलियाँ चलने लगी । लडाई मे फैज़अली मेरी गाडी के ऐन पास रहे । मैं गाडी के अन्दर बैठी दुआएँ पढ रही हूँ । कलेजा हाथो उछल रहा है । देखिये क्या होता हे ? कभी कभी गाडी का पर्दा खोल के देख लेती हूँ । यह गिरा, वह मरा । आखिर दोनो तरफ से वहुत से ज़ख्मी हुए । हमारे साथ पचास साठ आदमी थे । राजा ध्यान सिह के आदमी वहुत से थे । एक पर दस टूट पडे, वहुत से ज़ख्मी हुए । फ़ज़ल अली और फैज़अली मौका पा कर निकल गए । दस बारह आदमी और गिरफ्तार हुए । इन्ही मे, मैं भी थी ।

# चौदह

हम लोगो की गिरफ्तारी के बाद गाडीवान ने मिन्नत समाजत कर के रिहाई हासिल की। जख्मी सवार को मैदान मे डाल दिया, जहाँ और लाशें पड़ी थी। वह तो अपनी जान ले के बरेली की तरफ राही हुआ। मर्दों की मुश्कें कसी गईं। गढ़ी की तरफ रवाना हुए। गढ़ी वहाँ से कोई पाँच कोस थी, थोड़ी दूर जा कर राजा साहब और उनके साथ के और लोग मिले। राजा साहब खुद घोडे पर सवार थे। हम लोग सामने गये। मेरी तरफ इशारा कर के पूछा,

राजा 'यही वो साहबा लखनऊ से आई हैं ?'

मैं (हाथ बाँध के) 'हुजूर कुसूरवार तो हूँ, लेकिन अगर गौर कीजिये तो ऐसा कुसूर भी नही। औरत जात, जाल फरेब से आगाह नहीं, मैं क्या जानती थी ?'

राजा 'अब बेकुसूरी साबित करने की कोशिश न कीजिये। कुसूर आपका साबित है। जो बातें आप से पूछी जावे उनका जवाब दीजिये।'

मैं 'जो हुक्म हाकिम।'

राजा 'लखनऊ मे कहाँ मकान है ?'

मैं 'चौक मे।'

राजा (आदमियो को इशारा कर के) 'देखो, तमत खेडे से एक बैल-गाडी है तो, लखनऊ की रंडियाँ हैं। हमारे देश की पतुरियाँ नहीं हैं कि

रात भर महफिल मे नाचे और बारात के साथ, दस दस कोस तक नाचती चली जाये।'

मैं 'हुजूर को खुदा सलामत रखे।'

आदमी गये। गढी से गाडी ले आये, मुझे गाडी पर बिठाया। और लोग उसी तरह मुश्कें कसे साथ साथ थे।'

गढी मे पहुँचकर वह लोग नहीं मालूम कहाँ भेज दिये गये। मैं कोट मे बुलाई गई। सुथरा मकान रहने को दिया गया। दो आदमी खिदमत को मुकर्रर हुए। पक्का पकाया खाना, पूरियाँ, कचौरियाँ, मिठाईयाँ, तरह तरह के अचार खाने को। लखनऊ छोटने के बाद, आज रात को, खाना सेर हो हो के खाया। दूसरे दिन सुबह को मालूम हुआ, कि और कैदी लखनऊ को रवाना कर दिये गये। मुझको रिहाई का हुक्म है, मगर अभी राजा साहब रुखसत नही करेगे। फिर दिन चढे राजा साहब ने बुला भेजा।

राजा 'अच्छा, हमने तुमको रिहा किया, फैजू और फजल अली दोनो बदमाश निकल गये। और बदमाश जो गिरफ्तार हुए, लखनऊ मे पहुँचकर अपनी सजा को पहुचेगे। बेशक, तुम्हारा कोई कुसूर नही है, मगर आइन्दा ऐसे लोगो से न मिलना। अगर तुम्हारा जी चाहे, दो चार दिन यहाँ रहो। हमने तुम्हारे गाने की बहुत तारीफ सुनी है।'

नसीबन की वह बात याद आई कि राजा साहब के पास लखनऊ की कोई रंडी है, हो न हो उसने मेरी तारीफ की होगी।

मैं 'हुजूर ने किस से सुना ?'

राजा 'अच्छा यह भी मालूम हो जायेगा।'

थोडी देर के बाद लखनऊ की वह रडी तलब हुई। लखनऊ की रडी कौन ? खुरशीद जान। खुरशीद दौड के मुझ से लिपट गई। दोनो मिल के रोने लगी। आखिर राजा साहब के खौफ से फौरन अलाहदा हो कर सामने अदब से बैठ गई। साजिन्दे तलब हुए। रिहाई की खबर सुन के, मैंने वक्त के मुताबिक, एक गजल कह ली थी। बहुत से शेर थे, जो याद आते है सुनाये देती हूँ। हर एक शेर पर राजा साहब और हाजरीने जलसा बहुत ही खुश

थे। बेखुदी का आलम था। गज़ल यह है।

कैदिये उल्फते सैयाद रिहा होते हैं,
खुशबियाबने चमन जाद रिहा होते हैं।
तू भी छोडे तो तेरी जुल्फ न छोडे हमको,
कोई हम ऐ सितम ईजाद रिहा होते है।
हसरते जौके असीरी कि खफा है सय्याद,
आज हम बा दिले-नाशाद रिहा होते है।
गमे दुनिया न सही और हजारो गम है,
कैदे हस्ती से कब आजाद रिहा होते हैं।
ऐ 'अदा' कैदे मुहब्बत से रिहाई मालूम,
कब असीरे गमे सैयाद रिहा होते हैं।

मकता सुनके राजा साहब ने पूछा, 'अदा किसका तखल्लुम है।' खुरशीद ने कहा, 'खुद इन्ही की कही हुई है।' राजा और भी खुश हुए।

राजा 'अगर ऐसा जानते, तो हम आपको हरगिज़ न रिहा करते।

मै 'गज़ल से हुज़ूर को मालूम हो गया होगा, कि इसका तो अफसोस है। मगर अब तो हुज़ूर हुक्म दे चुके और लौंडी अजाद हो चुकी।

इसके बाद जलसा बरखास्त हुआ। राजा साहब अन्दर रसोई खाने चले गये, खुरशीद और मुझ मे खूब बाते हुई।

खुरशीद 'देखो बहन! मेरा कोई कुसूर नही, खानम साहब से और राजा साहब से बहुत दिनो से लाग डाँट थी। राजा साहब ने कई मर्तबा मुझको बुलाया, उन्होने साफ इनकार कर दिया। आखिर ऐश बाग के मेले मे इनके आदमी लगे हुए थे, मुझको जबरदस्ती उठा लाये। जब से यही हूँ। हर तरह की मेरी खातिर होती है। सब तरह का आराम है।'

मैं 'मुए गँवारो मे खूब तुम्हारा जी लगा है।'

खुरशीद 'यह बात तो सच है, मगर मेरी तबीयत को जानती हो, रोज एक नये शख्स के पास जाने के बिल्कुल खिलाफ है। वहाँ यही करना पडता था। खानम को जानती हो। यहाँ सिर्फ राजा साहब से साबका है और सब मेरे

हुक्म के तावे है। दूसरे यह मेरा वतन है। यहाँ की हर चीज मुझे अच्छी मालूम होती है।'

मैं 'तो तुम्हारा इरादा लखनऊ जाने का नही है ?'

खुरशीद 'मुझे तो मुआफ करो। यहाँ अच्छी तरह हूँ, वल्कि तुम भी यहाँ रहो।'

मैं 'यहाँ तो न रहूँगी, मजबूरी की और वात है।'

खुरशीद 'लखनऊ जाओगी ?'

मैं 'नही।'

खुरशीद 'फिर कहाँ ?'

मैं 'जहाँ खुदा ले जाये।'

खुरशीद 'अभी कुछ दिनो रहो।'

मैं 'हाँ, अभी तो हूँ।'

पन्द्रह बीस दिन तक, मैं गढी मे रही। खुरशीद से रोजाना मिलती थी। खुरशीद का दिल वहाँ लगा हुआ था। मेरा जी वहुत घवराता था। आखिर राजा साहव से मैंने अर्ज किया,

मैं 'हुजूर ने मुझे हुक्मे रिहाई दिया है ?'

राजा 'हाँ। तो फिर क्या जाना चाहती हो ?'

मैं 'जी हाँ। अव लौंडी को रुखसत कीजिये। फिर हाजिर हूँगी।'

राजा 'यह लखनऊवा फिक्रे है। अच्छा, कहाँ जाओगी ?'

मैं 'कानपुर।'

राजा 'लखनऊ न जाओगी ?'

मे 'हुजूर, लखनऊ क्या मुँह लेके जाऊँगी ? खानम से कैसे शर्मिन्दगी होगी। साथ वालियाँ क्या क्या कहेगी ?'

अव्वल तो मेरा इरादा लखनऊ जाने का न था। दूसरे यह भी ख्याल था, कि लखनऊ जाने को अगर राजा साहव से कहूँगी, तो शायद रिहाई न होगी। क्योकि वहाँ जाने से खुरशीद का हाल खुल जाता। शायद खानम कोई आफत वरपा करती।

राजा साहब मेरे इस इरादे से बहुत खुश हुए ।

राजा 'तो लखनऊ कभी न जाओगी ?'

मैं 'लखनऊ मे मेरा कौन बैठा है ? गाने बजाने का पेशा है, जहाँ रहूँगी कोई न कोई कदरदान निकल ही आयेगा । खानम की कैद मे, अब मुझे रहना मन्जूर नही । अगर वहाँ रहना होता, तो निकल क्यो आती ?'

मैंने राजा साहब को यकीन दिला दिया, कि मै लखनऊ बिल्कुल न जाऊँगी ।

दूसरे दिन राजा साहब ने मुझे रुखसत किया । दस अशरफियाँ इनाम दी, एक दुशाला दिया, एक रूमाल, एक रथ मय तीन बैल के । गरज़ेकि मुझे डेरा दार पतुरिया बना दिया । एक गाडीवान और दो आदमी मेरे साथ किये । उन्नाव को रवाना हुई । वहाँ पहुँच कर सलारू भटियारे के मकान पर ठहरी । राजा साहब के आदमियो को रुखसत किया । सिर्फ गाडीवान रह गया ।

सरे शाम, मै अपनी कोठरी के सामने बैठी हूँ । मुसाफिर आते जाते है । भटियारियाँ चिल्ला रही हैं, 'मियाँ मुसाफिर इधर-इधर, मकान झाडा हुआ है, हुक्का पानी का आराम, घोडे टट्टू के लिये नीम का साया '

इतने मे क्या देखती हूँ कि फैजअली का साईस चला आता है । सराय के फाटक ही से उसकी निगाह मुझ पर पडी । मेरे उसके आँखे चार हुई । वह मेरे पास चला आया । बातें करने लगा । मेरा हाल पूछा, उसके बाद मैंने फैजअली का हाल पूछा । उसने कहा, 'उनको, आपके उन्नाव आने की खबर मिल गई है । आज रात को पहर डेढ पहर रात गये, जरूर आ जावेंगे ।'

यह सुनके मेरा दिल धडकने लगा । वजह यह थी, कि मुझे अब फैजअली का साथ मन्जूर न था । तमतखेडे के वाकया के बाद, मै समझी थी कि अब गलू खलासी होगी । उन्नाव मे फैज़अली जान पर नाजिल हो गये । मामूली बात चीत की, उन्नाव मे रवनगी का मशवरा होने लगा । बडी देर तक बातें होती रही । आखिर यह सलाह ठहरी, कि गाडीवान को रुखसत करो । साईस गाडी हँकायेगा । मै खुद घोडे को देख लूँगा । फिर यह ठहरी, कि गाडी सलारू भटियारे के पास छोड दो । रातो रात गगा के उस पार उतर चलो । अब

क्या कर सकती थी। फैज़अली के वश मे थी। जो उन्होंने कहा, मुझे चारो नाचार मन्जूर करना पडा। फैज़अली ने मल्लाह को पुकारा। किनारे ले जा कर देर तक बाते की। कोई आधी रात गये, अपने साथ मुझे घोडे पर बिठाया। सराय से बाहर हुए। पाँच छ कोस जमीन का चलना, रात का वक्त, मेरा बद बद टूट गया। मुद्दतो दर्द रहा। आखिर ज्यू त्यू कर के गगा के किनारे पहुँचे। बडी मुश्किल से नाव तलाश की। उस पार उतरे, फैज़अली ने कहा, 'अब कोई खौफ नही है।' सुबह होते, होते कानपुर पहुँच गये। फैजअली ने मुझको लाठी महाल मे उतारा। खुद मकान की तलाश मे निकले। थोडी देर के बाद आके कहा, 'यहाँ ठहरना ठीक नही है। मकान हमने ठहरा लिया है, वहाँ चली चलो।' डोली किराया की की।

थोडी देर मे, डोली एक पुख्ता आलीशान मकान के दरवाज़ पर ठहरी। फैजअली ने हमको यहाँ उतारा। मकान के अन्दर क्या देखती हूँ, कि एक दालान मे दो खरी चारपाइयाँ पडी है। एक चटाई बिछी है, इस पर एक अजीब शक्ल का हुक्का रखा हुआ है, जिसे देखते ही पीने मे मुझे नफरत हो गई। मकान का करीना देख के, दिल को वहशत होने लगी। थोडी देर बाद फैजअली ने कहा, 'अच्छा, तो मै बजार से कुछ खाने को ले आऊँ।' मैने कहा, 'बेहतर है, मगर ज़रा जल्दी आना।' फैजअली बाजार को गये, मै इसी मे अकेली बैठी हूँ।

अब सुनिये। फैजअली बाजार जो गये, तो वही के हो रहे। न आज आते है, न कल। एक घडी, दो घडी, पहर, दो पहर, पहर कहाँ तक कहूँ, दोपहर गुज़री, शाम होने आई। उन्नाव मे सरेशाम खाना खाया था। रात को घोडे पर चलने की थकान, नीद का खुमार, सुबह से मुँह पर चुल्लू पानी तक नही पडा। टुकडा तक नही खाया। भूख के मारे दम निकला जाता है। थोडी देर मे सूरज डूब गया, अँधेरा होने लगा। आखिर रात हो गई। या खुदा अब क्या करूँ? मुँह खोल दिया, उठ बैठी। इतना बडा ढँडार मकान, भाँय भाँय कर रहा है। हयात, खुदा की जात और मै अकेली। यह मालूम होता था, अब इस कोठरी से कोई निकला। वह सामने दलान मे कोई टहल रहा है।

कोठे पर धम धम की आवाज आई। जीने से कोई खट खट उतरा चला आता है। दोपहर रात हो गई। अब तक अँगनाई और दीवारों पर चाँदनी थी, अब चांद भी छिप गया, बिल्कुल अँधेरा घुप हो गया। आखिर, मैं दुशाले से मुँह लपेट के पड रही। फिर कुछ खटका हुआ। रात पहाड हो गई। काटे नही कटती है। आखिर ज्यो त्यो कर के सुबह हुई।

दूसरे दिन सुब्ह को अजीब ही आलम था। अब लखनऊ की कदर हुई। दिल मे कहती थी, या खुदा, किस मुसीबत मे जान पडी। लखनऊ का ऐश, चैन और अपना कमरा याद आता था। इधर एक आवाज दी, उधर आदमी हाजिर। हुक्का, पान, खाना, पानी जो कुछ हुआ, इधर मुँह किया उधर साम्ने मौजूद। खुलासा यह, कि आज भी सुबह से दोपहर हो गई और फैज़-अली न आये। इस हालत मे, अगर कोई नेकबख्त बीबी चार दीवारी की होती, तो जरूर ही घुट घुट के मर जाती। मेरा हियाव खुला हुआ तो न था, मगर फिर भी सैकडो मर्दो मे बैठ चुकी थी। कानपुर न सही, लखनऊ के तो अक्सर गली कूचो से वाकिफ थी। यहाँ की भी सराय देखी थी, बाज़ार देखा था। अब मेरी बला इस खाली मकान मे बैठी रहती। झप से कुण्डी खोल, गली मे निकल खडी हुई। देखती क्या हूँ, कि एक शख्स, सरकारी वर्दी पहने, घोडे पर सवार, दस पन्द्र गरक-अन्दाज़ साथ, उनके हलके मे मियाँ फैजअली, टटियाँ कसी हुई, सामने से चले आ रहे है। यह माजरा देखते ही, मै सन्न हो गई, वहीं ठिठक गई। एक पतली सी गली मिली। इस गली मे एक मस्जिद थी। मैंने दिल मे ख्याल किया, कि सब से बेहतर, खुदा का घर है। थोडी देर यही ठहरना चाहिये। दरवाज़ा खुला हुआ था। मै दरोना, अन्दर चली गई। यहाँ एक मौलवी साहब से सामना हुआ। काले से थे, सिर मुँडा हुआ, एक नीली तहमद बाँधे धूप मे टहल रहे थे। पहले तो शायद समझे, मै ताक भरने आई हूँ, बहुत खुश हुए। जब मै चुपके, सेहन के किनारे पाँव लटका के बैठ गई, तो करीब आ के पूछने लगे, 'क्यो बी साहब! आपका यहाँ क्या काम है?'

मैं 'मुसाफिर हूँ, खुदा का घर समझ के थोडी देर के लिये बैठ गई हूँ।

अगर आपको नागवार हो, तो अभी चली जाऊँ ।'

मौलवी साहब, अगर्चे बहुत ही बेतुके थे, मगर मेरी लगावट और दिलफरेब तकरीर ने जादू का असर किया । भला जवाब क्या मुँह से निकलता, हक्का बक्का इधर उधर देखने लगे । मैं समझ गई कि फरेब के जाल मे आ गये ।

मौलवी साहब (थोडी देर बाद सँभल के) 'अच्छा, तो आपका कहाँ से आना हुआ ?'

मैं 'जी कही से आना हुआ, मगर अभी तो यही ठहरने का इरादा है ।'

मौलवी (बहुत ही घबराके) 'मस्जिद मे ?'

मैं 'जी नही, बल्कि आपके हुजरे मे ।'

मौलवी साहब 'लाहौल बिला कुव्वत !'

मैं उई मौलवी साहब ! मुझे तो आपके सिवा, यहाँ और कोई नज़र नही आता ।'

मौलवी साहब जी हाँ, मै अकेला रहता हूँ । इसी से तो मैने कहा, मस्जिद मे आपका क्या काम है '

मैं 'यह क्या खासियत है कि जहाँ आप रहे, वहाँ दूसरा नही रह सकता ? मस्जिद मे हमारा कुछ काम नही, यह भी खूब कही ? आपका क्या काम है ?'

मौलवी साहब 'मै तो लडके पढाता हूँ ।'

मैं 'मै आपको सबक दूँगी ।'

मौलवी साहब 'लाहौल बिला कुव्वत ।'

मै 'लाहौल बिला कुव्वत ? यह आप हर दफा लाहौल क्यो पढते हैं ? यह क्या शैतान आपके पीछे फिरता है ?'

मौलवी साहब 'शैतान आदमी का दुश्मन है, उससे हर वक्त डरना चाहिये ।'

मै 'खुदा से डरना चाहिये, मुए शैतान से क्या डरना ? और यह क्या आपने कहा, आदमी हैं ?'

मौलवी साहब (जरा बिगड के) 'और कौन हूँ ?'

मै 'मुझे तो आप जिन मालूम होते हैं । अकेले इस मस्जिद में रहते है ।

आपका दिल भी नही घबराता है ?'

मौलवी साहब 'फिर क्या करे ? हमे तो अकेले की आदत हैं।'

मै 'इसी से तो आपके चेहरे पर वहशत बरसती है। वह आपने नही सुना, तनहा न बैठ कि दीवानगी है।'

मौलवी साहब 'अजी वह कुछ भी सही, जिस हाल मे हम हैं, खुश हैं। आप अपना मतलब कहा कहिये ?'

मैं 'मतलब तो किताब देखने से हल होगा, अभी तो जवानी मुबाहसा है।'

मौलवी साहब 'क्या खूब ?'

मैं 'क्यो न हो ?'

मैं मौलवी साहब को खूब झँझोडियाँ देती, मगर इस वक्त भूख के मारे मुँह से बात नही निकलती थी।'

रुसवा 'यह मौलवी साहब से इस कदर मज़ाक की क्या ज़रूरत थी ?'

उमराव जान 'ए है। इसका हाल न पूछो, बाज़ आदमियो की सूरत ही ऐसी होती हैं, कि खामख्वाह हँसने को जी चाहता है।'

रुसवा 'जी हाँ जैसे किसी की मुँडी हुई खोपडी देखकर, बाज़ आदमियो की हथेली खुजलाती हैं, चपत लगाने को जी चाहता है।'

उमराव जान 'बस यही समझ लीजिये।'

रुसवा 'अच्छा तो मौलवी साहब में ऐसी कौन सी बात थी, जिस से मज़ाक करने को जी चाहता था ?'

उमराव जान 'क्या कहूँ, कुछ बयान नही हो सकता। जवान आदमी थे, सूरत भी कुछ बुरी न थी, चेहरे पर हौनकपन था सिर पर लम्बे लम्बे बाल थे, मुँह पर दाढी थी, मगर कुछ ऐसी कि बेतुकेपन की हद से भी ज्यादा बढी हुई थी। मूछो का बिल्कुल सफाया था। तहमद बहुत ऊँची बँधी हुई थी। सिर पर छीट की बडी सी टोपी, जो सिर की पूरी चौहद्दी को ढाँके हुए थी। बात करने का अजब अन्दाज़ था। मुँह जल्दी मे खुलता था, फिर बंद हो जाता था। नीचे का होठ, कुछ अजब अन्दाज से ऊपर को चढ जाता था, और

इसके साथ ही नुक्केदार दाढी कुछ अजब अन्दाज मे हिल जाती थी। इसके बाद नाक से कुछ 'हुँह' सा निकलता था। मालूम होता था, जैसे कुछ खा रहे है, और बाते भी करते जाते है। एहतियातन मुँह जल्दी से बंद कर लेते हैं, कि ऐसा न हो कुछ निकल पडे।

रुसवा 'क्या वाकई कुछ खा रहे थे ?'

उमराव 'जी नही, जुगाली कर रहे थे।'

रुसवा 'अक्सर कठमुल्ला कुछ ऐसी ही सूरत बना लेते है, जिसे देख के बेवकूफो को डर लगता है और अक्लमन्दो को हँसी आती है। मुझे ऐसी सूरते देखने का बहुत शौक है।'

उमराव जान 'और सुनिये। आपकी गुफ्तगू मे एक मजा और भी था, वह यह, कि अक्सर मुँह फेर लिया करते थे।'

रुसवा 'तो यह ऐन तमीजदारी है। इसलिये कि बात करते वक्त, आपके मुँह से थूक उडता होगा।'

उमराव जान 'कुछ और भी अर्ज करूँ ?'

रुसवा 'बस अब मुआफ कीजिये।'

उमराव जान 'अल किस्सा मैंने जेब से एक रुपया निकाला।'

मौलवी (यह समझ के कि मैंने दिया है, जल्दा से हाथ तो बढा दिया और मुँह से) 'इसकी क्या जरूरत थी।'

मैं ( मुस्कुरा के ) 'इसकी बहुत जरूरत थी, इसलिए कि मुझे भूख लगी है, किसी से कुछ खाने को तो मँगा दीजिये।'

मौलवी (अब, झेपे तो यूँ बाते बनाने लगे) 'मै समझा। (मैने दिल मे कहा, समझे क्या खाक। समझते तो पत्थर के हो जाते) इसी से तो कहता हूँ, इसकी क्या जरूरत थी। क्या खाना, यहाँ मुमकिन नही ?'

मैं 'मुमकिन! जल्दी या लज्जतदार।'

मौलवी 'जल्दी तो मुमकिन नही, मेरा एक शागिर्द खाना लाता होगा। आप भी खा लीजियेगा।'

मैं 'जल्दी मुमकिन नही, लज्जतदार की आपको तौफीक नही, लिहाजा

बाजार से कुछ ला दो।'

मौलवी 'इक जरा सब्र कीजिये, खाना आता ही होगा।'

मैं 'अब सब्र करना बस की बात नही, और दूसरे मैंने सुना है, कि रमजान शरीफ साहब एक महीने तमाम दुनिया मे सैर करते है, और ग्यारह महीने इसी मस्जिद मे रहते है।'

मौलवी 'इस वक्त तो कुछ हाज़िर नही, मगर मेरा एक शागिर्द खाना ले के आता ही होगा।'

मैं 'और अगर मान लिया जाय कि खाना आया भी, तो वह आपके लिये भी काफी न होगा। मेरे साथ का क्या मतलब इसमे, और फिर इन्तजार तो मौत के मानिन्द है। तब तक तो बीमार मर जायगा।'

मौलवी 'अहा! आप तो बहुत काबिल मालूम होती है।'

मैं 'मगर मेरे ख्याल मे आप किसी काबिल नही।'

मौलवी 'वाकई ऐसा ही है मगर ।'

मैं (बात काटकर) 'मगर इसलिये कि यहाँ तो आँतें कुल हू अल्ला पढ रही है। और आप तकरीरें करते है।'

मौलवी 'अच्छा तो मैं अभी लाया।'

मैं 'लिल्लाह, ज़रा जल्दी कीजिये।'

खुदा खुदा करके मौलवी साहब गये और कोई घटा डेढ घटा बाद, चार ख़मीरी रोटियाँ और एक मिट्टी के प्याले मे थोडा सा नीला शोरबा, लाके मेरे सामने रख दिया। देख के जान जल गई। मौलवी साहब की सूरत देखने लगी। मौलवी साहब कुछ और ही समझे।'

मौलवी (फौरन साढे चौदह गडे पैसे, कोई धेले की कौडियाँ, चादर के कोने से खोल के सामने रख दिये) 'सुनिये साहब, चार पैसे की रोटियाँ है, पैसा का सालन है, धेला भाँज मैं गया। आपकी जमा आपके सामने है। पहले गिन लीजिये, तो खा लीजिये।'

मैंने फिर एक दफा मौलवी साहब की सूरत देखी, मगर भूख बुरी बला है। जल्दी-जल्दी निवाले उठाने शुरू किये। जब दो चार निवाले खा चुकी, तो

मौलवी साहब की तरफ मुखातिब हुई ।

मैं 'मैंने कहा, मौलवी साहब ! क्या इस उजड़े शहर में, यही खाने को मिलता है ?'

मौलवी 'तो क्या यहां लखनऊ की तरह महमूद की दुकान है, जहां पुलाव-जर्दा आठ पहर तैयार मिलता है ?'

मैं 'हलवाई की दूकान तो होगी ?'

मौलवी 'हलवाई की दूकान ? वह तो मस्जिद नीचे है ।'

मैं 'तो फिर चार कोस जाना क्या जरूर था ? दोपहर के बाद आये और ले के क्या आये ? मुए कुफ्रों का खाना ।'

मौलवी 'ऐसा तो न कहिये, आदमी खाते हैं ।'

मैं 'आप ऐसे आदमी खाते होंगे, बासी खमीरी रोटियां और नीला शोरबा ।'

मौलवी . 'नीला तो नहीं है । अच्छा तो दही ला दूं ?'

मैं 'जी नहीं, रहने दीजिये, मुआफ कीजिये ।'

मौलवी 'पैसों का ख्याल न कीजिये, मैं अपने पास से लाये देता हूं ।'

मैं कुछ जवाब भी न दे पाई थी, कि मौलवी साहब मस्जिद से बाहर चले गये और एक आबखोरे में, खुदा जाने कब का सड़ा, खट्टा दही उठा लाये और इस तरह सामने लाके रख दिया, गोया कि आपने हातिम की कब्र पर लात मार दी हो ।

मैं हाथ धोने उठी थी, मौलवी साहब समझे, मस्जिद से दफा होती है ।

मौलवी 'और यह पैसे और कौडियाँ तो उठा लीजिये ।'

मैं 'मेरी तरफ से मस्जिद में चिरागी चढ़ा दीजिये ।'

मुँह हाथ धो के, अपनी जगह पर आ बैठी । मौलवी साहब से बातें करने लगी । कानपुर में, मौलवी साहब की जात से मुझे बहुत आराम मिला । इन्हीं की मार्फत, एक कमरा किराये पर लिया । निवाड़ी पलंग, दरी, चाँदनी, छत पर्दे, तांबे के बर्तन और सब जरूरत का सामान खरीद लिया । एक मामा खाना पकाने को और एक ऊपर के काम को । दो और खिदमतगार नौकर रख

लिये, ठाठ से रहने लगी। अब साज़िन्दो की तलाश हुई। यो तो बहुत से आये, मगर किसी का बाज पसन्द न आया। आखिर लखनऊ का एक तबलिया मिल गया। यह खलीफा जी के खानदान का शागिर्द था। इससे खूब परगत मिली। इसी की मार्फत दो सारंगिये, कानपुर के ज़रा समझदार थे, बुलवाये। ताएफा दुरुस्त हो गया। शब को, पहर डेढ़ पहर रात गये तक, कमरा पर गाने बजाने का चर्चा होने लगा। शहर मे यह खबर मशहूर हो गई, कि लखनऊ से कोई रंडी आई है। अक्सर मर्द आने लगे। शायरी भी खूब चमकी। कोई ही दिन ऐसा कमबख्त होगा, जब किसी जलसा मे जाना न होता हो। मुजरे कसरत से आते थे। थोडे ही दिनो मे बहुत सा रुपया कमा लिया। अगर्चे कानपुर के लोगो का राह-रवैया, बोल-चाल पसन्द न थी, बात-बात पर लखनऊ याद आता था। मगर खुद-मुख्तारी की जिन्दगी मे कुछ ऐसा मजा है, कि वापस जाने को जी नही चाहता था। मै जानती थी, कि अगर लखनऊ जाऊँगी, तो खानम की नौकरी बनकर रहना पडेगा। क्योकि इस पेशा मे रहकर, खानम से अलहदा रहना किसी तरह मुमकिन न था। एक तो इस सबब से, कि तमाम रंडियाँ खानम का दबाव मानती थी। अगर मै अलग हो के रहती, तो कोई मुझ से न न मिलता। दूसरे उम्दा साज़िन्दो का वहां पहुँचना दुशवार था। नाच मुजरे का ढच्चर क्योकर चल सकता था। जिन सरकारो मे मेरी रसाई होती थी, वह भी खानम की वजह से थी। अगर्चे मेरा शुमार अच्छी गाने वालियो मे था, मगर लखनऊ मे इस काम के करने वाले बहुत से है। अच्छे बुरे का इम्तयाज खास लोगो को होता है। आम लोगो मे नाम बिकता है। बडे आदमियो की निगाह, अक्सर ऊँचे ही कमरो पर जाती है। इस हालत मे मुझे कौन पूछता ? कानपुर मे मेरे हौसले से ज्यादा, मेरी कदरदानी होती थी। किसी अमीर रईस के हां कोई शादी-ब्याह न होता था, जिसमे मेरा बुलाना बाइसे-फख्र न समझा जाता हो। बाहर जाकर इस बात का अन्दाज हो सकता है, कि लखनऊ क्या चीज है ?

यहां एक साहब हज़रत शाकिर लखनवी बहुत मशहूर है। माने हुए उस्ताद समझे जाते है। सैकडो आपके शागिर्द है। लखनऊ मे, कोई इनका नाम भी न

जानता था। एक दिन का किस्सा सुनिये। एक साहब मेरे कमरे पर तशरीफ लाये। बातचीत के दौरान मे शेरो-शायरी का कुछ चर्चा निकला। छूटते ही उन्होने पूछा 'आप हजरत शारिक लखनवी को जानती है ?' मैंने कहा, 'नही, कौन शारिक ?' यह साहब उनके शागिर्दों मे थे, फौरन बिगड गये।'

वह साहब 'मैं तो सुनता था, आप लखनऊ की रहने वाली हैं ?'

मैं : 'जी हां, गरीबखाना तो लखनऊ ही मे है।'

वह साहब 'भला कहीं हो सकता है, कि लखनऊ मे हों, और हज़रत उस्ताद को न जानें ?'

मैं 'लखनऊ के मशहूर शायरो मे कौन ऐसा है, जिसको मैं, न जानती हूँ। उस्तादो का तो ज़िक्र ही क्या, उनके मशहूर शागिर्दों मे से भी कोई ऐसा न होगा जिसका कलाम, मैंने न सुना हो। उनके नाम नामी से तो मतला फरमाएँ, तखल्लुस तो मैंने कभी सुना नही।'

वह साहब (चीं बज़बीं होकर) 'नाम लेने से क्या फायदा। तखल्लुस, पूरब से पच्छिम और उत्तर से दक्खिन तक लोगो की ज़बान पर है। हाँ, हाँ, आप नही जानती, न जानें।'

मैं : 'हुजूर मुआफ कीजियेगा। मेरे नज़दीक तो शायराना मुबालगा है। मगर आपके उस्ताद हैं, आपको ऐसा ही कहना चाहिये। अच्छा, तो नाम नामी से तो मतला फरमाईये। मुमकिन है कि मैंने तखल्लुस न सुना हो, नाम से वाकिफ हूँ ?'

वह साहब 'मीर हाशिम अली साहब 'शारिक'।'

मैं 'इस नाम से तो बेशक कान आशना है, (इतना कह के मैं सोचने लगी या इलाही, यह कौन मीर हाशिम अली साहब हैं। आखिर एक साहब पर शक हुआ) आप के उस्ताद मरसिया खानी भी तो करते है ?'

वह साहब 'जी हां! मरसियाखानी में भी इनकी कोई मिसल नही।'

मैं 'बजा इरशाद हुआ। यानी मीर साहब और मिर्ज़ा साहब से भी बढे हुए है ?'

वह साहब 'इन्ही साहबो के हम असर हैं।'

मैं 'भला किस का मरसिया पढ़ते हैं ?'

वह साहब 'किसी का मरसिया क्यों पढ़ने लगे ? खुद तसनीफ फरमाते हैं। अभी सत्ताईसवीं रजब को नया मरसिया पढ़ा था। आम शोहरा था।'

मैं 'तो आपको याद होगा ?'

वह साहब 'मतला तो याद नहीं, तलवार की तारीफ में एक बन्द पढ़ा। वह मुझे क्या, तमाम शहर की जबान पर है। कलम तोड़ दिया है।'

मैं 'जरा इरशाद कीजियेगा ?'

वह साहब 'निकली गिलाफे नूर से तपसीरे जोहरी '

मैं 'सुभान अल्लाह। इस बन्द के तो दूर-दूर तक शोहरे हैं। पाँच मिसरे मुझ से सुन लीजिये, क्या कलाम है ?'

वह साहब (बहुत ही खुश होके) 'जी हाँ ! आपने यह मरसिया लखनऊ में सुना होगा। वही तो मैं कहता था, कि लखनऊ की रहने वाली और फिर शेरो-सखुन का शौक। हजरत शारिक को न जानती हों, ताज्जुब है ? अच्छा अब मैं समझा, यह मजाक था।'

मेरे जी में तो आया, कह दूँ, कि आपके उस्ताद मर के भी जियेंगे तो ऐसा बन्द नहीं कह सकते। मिर्जा दबीर साहब मरहूम का कलाम है, मगर फिर कुछ समझ के चुप रही।

रुसवा 'वाकई आपने बड़ी अक्लमन्दी की। वरना बेचारे की रोजी में खलल आता। मीर हातम अली शारिक पर क्या मौकूफ है, अक्सर साहबान का यही ढंग है। दूसरों का कलाम बाहर जाकर अपने नाम से पढ़ते हैं। चन्द ही रोज का जिक्र है, एक साहब, मेरे एक दोस्त की गजलों के मसविदे चुरा कर ले गये। हैदराबाद दक्कन में सुनाते फिरे। बड़े बड़े लोगों से दाद ली। मगर समझने वाले समझ ही गये। लखनऊ में खतूत आये। गजल लिखने वाले से दाद हुई। वह हँस कर चुप हो रहे। अक्सर साहबों ने लखनऊ को ऐसा बदनाम किया है कि अब लफ्ज लखनवी अपने नाम के साथ लिखते हुए, शर्म आती है। ऐसे ऐसे हजरात लखनवी लिखते हैं, जिनकी सात पुश्तें देहात में गुजर गईं। खुद लखनऊ में चंद रोज, तालिब इल्मी या और किसी सिलसिले में आ कर

रहे, चलिये अच्छे खासे लखनवी बन गये । अगर्चे कुछ ऐसी फ़ख़्र की बात नही, मगर झूठ से क्या फायदा ?'

उमराव जान 'जी हाँ, अक्सर साहब इसी तरह लखनऊ फरोगी करके अपना भला करते हैं। कानपुर मे मेरा भी ठीक यही हाल था। उस ज़माना मे रेल तो न थी, और न लखनऊ मे कोई बाहर जाना था । बल्कि शहर के काबिल आदमी रोज़ी की तलाश मे यहीं आते थे । अपने कमाल की, हस्ब हैसियत दाद पाते थे। देहली उजड के लखनऊ आबाद हुआ था।'

रुसवा · 'फी ज़माना यही हाल दक्कन का है। लखनऊ उजड के दक्कन आबाद हुआ है। मैं तो गया नही, मगर मुहल्ले के मुहल्ले लखनऊ वालो से आबाद हैं।'

उमराव जान . 'जो लोग लखनवी होने का दावा करते हैं, उनसे कहिये पहले अपनी ज़बान की मोच निकालें।'

रुसवा : क्या खूब बात कही है । वाकई, रोज़मर्रा तो किसी कदर आ भी जाता है, मगर लहज़ा नहीं आता।'

# पन्द्रह

इत्तिफाकाते ज़माना से यह कुछ दूर नहीं,
यूँ भी होता है कि बिछड़े हुए मिल जाते हैं।

बिछड़े हुए मिल जाते हैं, और फिर कब के बिछड़े हुए। वह, जिनके मिलने का सान-गुमान भी न हो। एक दिन का वाकया सुनिये। कानपुर मे रहते हुए कोई छ महीने गुज़र गये हैं। अब शोहरत की यह हद पहुँची है, कि बाज़ारो और गलियो मे, मेरी गाई हुई गजलें, लोग गाते फिरते हैं। शाम को मेरे कमरे मे बहुत अच्छा मजमा रहता है। गर्मियो का दिन है, कोई दो बजे का वक्त होगा, मैं अपने पलँग पर अकेली लेटी हूँ। मामा, बावरचीखाने मे खर्राटे ले रही है। एक खिदमदगार कमरे के बाहर बैठा, पंखे की डोरी खींच रहा है। खस की टट्टियाँ खुश्क हो गई हैं। मैं आदमी को आवाज़ दिया ही चाहती थी, कि पानी छिड़क दे, कि इतने मे कमरे के नीचे किसी ने आकर पूछा, 'लखनऊ से जो रंडी आई है उसका कमरा यही है?' दुर्गा बनिये ने, जिसकी दुकान नीचे थी, जवाब दिया, हाँ यही है।' फिर दरयाफ्त किया, 'दरवाजा कहाँ है?' उसने बता दिया। थोड़ी देर बाद, एक बड़ी बी, कोई सत्तर बरस का सिन गोरी सी, मुँह पर झुर्रियाँ पड़ी हुई, बाल जैसे रुई का गाला, कमर झुकी हुई, सफेद मलमल का दोपट्टा, तन्ज़ेब का कुर्ता, नैनसुख का पाजामा बड़े बड़े पायचो का पहने, हाथो मे चाँदी के मोटे मोटे कड़े, उँगलियो मे अँगूठियाँ, जरीब हाथ मे, हाँपती काँपती हुई आई और सामने फर्श पर बैठ गई। एक काला सा

लड़का, कोई दस बारह बरस का, उनके साथ था। वह खड़ा रहा ।

बड़ी बी 'लखनऊ से तुम आई हो ?'

मैं 'जी हां।'

इतना कह के मैं पलँग के नीचे उतर आई । पानदान आगे खिसकाया। आदमी को हुक्के के लिये आवाज दी।

बड़ी बी 'हमारी बेगम ने तुम्हें याद किया है। लड़के की सालगिरह है। जनाना जलसा होगा। तुम्हारा मुजरा क्या है ?

मैं 'बेगम साहबा मुझ को क्या जानें ?'

बड़ी बी 'ए तमाम शहर मे तुम्हारे गाने की धूम है। दूसरे, तुम्हारे बुलाने का यह भी एक सबब है, कि बेगम साहबा ख़ुद भी लखनऊ की रहने वाली हैं।'

मैं · 'और आप भी तो लखनऊ की है ?'

बड़ी बी 'तुमने क्योंकर जाना ?'

मैं 'कही बातचीत का करीना छिपा रहता है।'

बड़ी बी 'हाँ ! मैं भी वही की रहने वाली हूँ। अच्छा, अपना मुजरा तो बताओ, अभी बहुत काम पड़ा है। मुझे देर होती है।'

मैं 'मुजरा तो मेरा खुला हुआ हैं । सब जानते है। पचास रुपया लेती हूँ। मगर बेगम साहबा लखनऊ की रहने वाली हैं, और उन्होंने कदर कर के बुलाया है, तो उन से कुछ न लूँगी। जलसा कब है ?'

बड़ी बी 'आज शाम को। अच्छा तो यह रुपया खिचड़ी का तो ले लो, बाकी वहाँ आ के समझ लेना।'

मैं (रुपया ले लिया) 'इसकी कोई जरूरत न थी, मगर इस ख्याल से कि बेगम साहबा बुरा न मानें, रुपया लिये लेती हूँ। अच्छा, अब यह कहिये कि मकान कहाँ है ?'

बड़ी बी 'मकान तो ज़रा दूर है। नवाब गंज मे है । यह लड़का शाम को आयेगा, इसी के साथ चली आना । मगर इतना ख्याल रहे, कि कोई मर्द ज़ात, तुम्हारे मिलने वालो मे से, तुम्हारे साथ न हो।'

मैं · 'और साजिन्दे ?'

बडी बी 'साजिन्दे, खिदमतगार, इनकी मनाही नही है। कोई और न हो।'

मैं 'नही, यहाँ मेरा कौन सा मुलाकाती है, जिसे साथ लाऊँगी। खातिर जमा रखिये।'

इतने मे खिदमतगार ने हुक्का तैयार किया। मैंने इशारा किया, बडी बी के सामने लगा दो। बडी बी, मजे ले ले के हुक्का पीने लगी। मैं एक पान पर कत्था चून लगा के, डलियो का चूरा डिबिया मे पडा हुआ था, एक चुटकी उसकी और इलाईची के दाने पानदान के ढकनो पर कुचल के, गिलौरी बना के, बडी बी को देने लगी।

बडी बी 'हाय बेटा! दाँत कहाँ से लाऊँ, जो पान खाऊँ ?'

मैं 'आप खाईये तो। मैंने आप ही के लायक पान बनाया है। बडी बी बैठ गई, पान ले के खाया। बहुत ही खुश हुईं। 'हाय, हमारे शहर की तमीजदारी।' इतना कह के, दुआऐ देती हुई, रुखसत हुईं। चलते चलते कह गई, 'ज़रा दिन से आ जाना, घडी भर दिन रहे गिरह लगाई जायेगी।'

मैं 'अगर्चे मुजरे का दस्तूर नही। मगर खैर, बेगम साहबा ने याद किया है, तो मैं सवेरे से हाज़िर होके मुबारिकबाद गाऊंगी।'

वाकई, वतन की कदर बाहर जा के होती है। कानपुर मे सैकडो जगह मुजरे हुए, मगर कही जाने की ऐसी इच्छा अब तक न हुई थी। जी चाहता था, जल्दी से शाम हो जाये और मैं रवाना हूँ। गर्मियो का दिन, पहाड होता है। खुदा खुदा करके इतना दिन कटा। पांच बजते, लडका आ मौजूद हुआ। मैं पहले ही से बनी ठनी बैठी थी। साजिन्दो को बुलवा रखा था। लडके ने, उनके मकान का पता बता दिया। मैं सवार हो के रवाना हो गई।

बेगम का मकान शहर से कोई घण्टा भर का रास्ता था। छ बजे, मैं वहां पहुँची। नहर के किनारे एक बाग था, जिसके चारो तरफ मीड पर नागफनी और दूसरे काँटेदार दरख्त इस तरह बराबर बिठाये गये थे, जिसमे

एक दीवार सी बन गई थी। बाग की कतार बिल्कुल अंग्रेज़ी थी। ताड, खजूर और तरह-तरह के खूबसूरत दरख्त करीने से लगाये गये थे। रविशो पर सुर्खी कुटी हुई थी। चारो तरफ सब्ज़ा था। जा बजा ककरो की पहाडियां सी बनी हुई थी। इन पर अनवा-ओ-अकसाम के पहाडी दरख्त, पत्थरो के अन्दर से उगे हुए मालूम होते थे। पहाडियो के गिर्दा गिर्द, दूब जमाई गई थी। बाग मे चारो तरफ पक्के बरहे बने हुए थे। इनमे साफ मोती सा पानी बह रहा था। माली, नलो और फव्वारो के ज़रिये से पानी दे रहे थे। पत्तियो से पानी टपक रहा था। दिन भर की धूप खाये हुए फूलो मे, जो अब पानी पहुँचा था, कैसे तरोताज़ा और शादाब थे।

साल गिरह की रस्म कोठी मे अदा हुई थी। औरतो के गाने की आवाज़ आई। बाहर मैंने मुबारिकबाद गाई। फिर आप ही आप, शाम कल्याण की एक चीज़ शुरू कर दी। कोई सुनने वाला न था, आप ही आप गाया की। फिर चुप हो रही। बेगम साहबा ने एक अशरफी और पाँच रुपया इनाम के भेजे। थोडी देर मे शाम हो गई, चाँद निकल आया। चाँदनी फैल गई। तालाब के पानी मे, चाँद की परछाई लहरो मे हिलकर अजब कैफियत दिखा रही थी।

बाग के किनारे पर, एक बहुत आलीशान कोठी थी। बीच बाग मे, एक पुख्ता तालाब बना हुआ था। इसके गिर्द, विलायती फूलो के नाँदे, निहायत खूबसूरती से सजे हुए थे। इसी तालाब से मिला हुआ, एक ऊँचा चबूतरा था। इसके दरम्यान, एक मुख्तसर सा हवादार चोबी बँगला था। इसके स्तूनो पर रग आमेज़ी की हुई थी। इस तालाब मे नहर से पानी गिरता था। पानी के गिरने की आवाज़ से दिल मे ठडक पहुँचती थी। वाकई, अजीब आलम था। शाम का सुहाना वक्त, सुथरी हवा, रग-रग के फूलो मे महक। ऐसी फिज़ा, मैंने कभी न देखी थी। चबूतरे पर सफेद चाँदनी का फर्श था। मसनद, तकिया लगा हुआ था। इसी के सामने, हम लोग बिठाये गये। कोठी से लेकर इस चबूतरे तक, गुलाब की बेलो से एक छत्ता सा बना हुआ था। मालूम हुआ, कि इसी राह से बेगम साहबा तशरीफ लाती है। सामने चिलमनें

पड़ी हुई थी। चबूतरे पर सब्ज़ मृदंगे रौशन हो गईं। मुझे गाने का हुक्म हुआ। मैंने केदारे की एक चीज़ शुरू कर दी। बड़ी देर तक गाया की। इतने में, एक महरी, हाथों में दो सब्ज कँवल लिये हुए बाहर निकली। मसनद के सामने रख दिये। साजिन्दों से कहा, 'तुम लोग वहाँ सामने शागिर्द पेशा में चले जाओ। खाना भेज दिया जायेगा। अब यहाँ जनाना होगा।' जब वह लोग उठ गये, बेगम साहबा बरामद हुईं। मैं ताज़ीम के लिये उठ खड़ी हुई। उन्होंने मुझको करीब बुलाया, खुद मसनद पर बैठ गईं। मुझे सामने बैठने का इशारा किया। मैं तस्लीम करके बैठ गई। गाने के लिये हुक्म की मुन्तज़र थी, और बेगम की सूरत गौर से देख रही थी।

हैरानि-ए-निगाह तमाशा करे कोई,
सूरत वह रूबरू है कि देखा करे कोई।

पहले तो वह बाग और वहाँ की फिज़ा देख के, मुझे परिस्तान का शुबहा हुआ था। मगर अब यकीन हो गया कि परी मेरे सामने गाव तकिया से लगी बैठी है। माँग निकली हुई है, चोटी कमर तक पड़ी हुई। सुर्ख-सफेद माथा, खिंची हुई भवें, बड़ी बड़ी आँखें जैसे गुलाब की पत्तियाँ, लमछोईं नाक, छोटा सा दहाना पतले-पतले नाज़ुक होंठ। नक्शे भर में, कोई चीज़ ऐसी न थी, जिससे बेहतर मेरे ख्याल में कोई चीज़ आ सकती हो। इस पर जिस्म का उभार किस कदर खुशनुमा था। सैकड़ों औरतें मेरी नज़र से गुज़र गईं, मगर मैंने इस बला की सूरत न देखी थी। खुरशीद से बहुत कुछ मिलती थी। मगर कहाँ खुरशीद, कहाँ वह। खुरशीद की सूरत में फिर दुमनीपन था। इसमें यह अमीराना रौब, यह तमकनत, यह भारी भरकमपन। दूसरे खुरशीद, इनके सामने किसी कदर भद्दी मालूम होती थी। इनका कामिनी सा नाज़ुक नाज़ुक छरहरा बदन, उसने कहाँ पाया। दूसरे उनकी सूरत पर आठों पहर उदासी बरसती थी। जब देखो बिसोरन बनी थी। बेगम साहबा, बहुत ही खुश मिज़ाज मालूम होती हैं। बात करती हैं, गोया मुँह से फूल झड़ते हैं। हर बात पर खुद-ब-खुद हँस देती हैं मगर किसी को मजाले-कलाम नहीं। सादगी, सादगी में तकल्लुफ और तमकनत के साथ शोखी, इन्हीं में देखी।

दौलत मदो की खुशामद सब करते है, मगर मैं, औरत जात होके कहती हूँ, कि रईसो की खुशामद भी अगर वे गरज की जाये, तो कोई ऐब नही। लिबास और जेवर भी इसी सूरत के लायक था। महीन, बसनी दोपट्टा कधो से ढलका हुआ, केचुनी का गलूका फँसा-फँसा, सुर्ख गरट का पाजामा, कानो मे सिर्फ याकूत के बुन्दे, नाक मे हीरे की कील, गले मे सोने का सादा तौक, हाथ मे सोने की सुमरने, बाजुओ पर नौ रतन, पाँव मे सोने के पाजेब। चेहरे की खूबसूरती, लिबास की सादगी और जेवर की मुनासबत, यह सब चीजे मेरी आँखो के सामने थी और मैं हैरान बनी बैठी थी। बगौर सूरत देख रही थी, और मेरी सूरत तो जैसी कुछ है, वह इस वक्त आपके सामने है। मगर यकीन ही कीजियेगा, उनकी तवज्जेह भी किसी और तरफ न थी, मुझी को देख रही थी। दोनो तरफ से निगाहे लडी हुई थी। मेरे दिल मे बार-बार एक ख्याल आता था, मगर इसके इज़हार का मौका न था, कहूँ तो क्योकर कहूँ ? एक महरी पीछे खडी पखा झल रही थी, दो सामने खडी थी। एक के हाथ मे चाँदी की लुटिया, दूसरी के पास खासदान। बडी देर तक न बेगम साहबा ने मुझसे कुछ बातचीत की, और न मैं कुछ बोल सकी। आखिर उन्होने सिलसिला कलाम इस तरह शुरू किया।

बेगम 'तुम्हारा क्या नाम है ?'

मैं (हाथ बाँध के) 'उमराव जान।'

बेगम 'खास लखनऊ मे मकान है ?'

यह सवाल, कुछ इस तरह से किया गया था, कि मुझे जवाब देना मुश्किल हो गया। खसूसन इस मौका पर। इसलिये, कि अगर कहती हूँ, कि लखनऊ मे मेरा मकान है, तो एक मतलब जो मेरे दिल मे था, फौत हो जाता। फैज़ाबाद बताती हूँ, तो राज़ फाश होने का ख्याल है। आखिर बहुत सोच समझ के मैंने कहा, 'जी हाँ, परवरिश तो लखनऊ मे पाई है।'

जवाब देने को तो दे दिया। मगर इसके साथ ही ख्याल हुआ, कि अब जो सवाल किया जायेगा, तो फिर वही दिक्कत पेश आयेगी। मेरा ख्याल गलत न था। इसलिये, कि फौरन बेगम साहबा ने पूछा,

बेगम 'तो क्या पैदाइश लखनऊ की नही ?'

अब हैरान हूँ, कि क्या जवाब दूँ। थोड़ी देर सकूत किया, जैसे मैंने कुछ सुना ही न था। आखिर इस बात को टाल के, पूछ बैठी।

मैं 'हुजूर का दौलतखाना लखनऊ मे है ?'

बेगम 'कभी लखनऊ मे था। अब तो कानपुर वतन हो गया।'

मैं 'मेरा भी यही इरादा है।'

बेगम 'क्यो ?'

इस सवाल का जवाब देना भी दुशवार था, कौन किस्सा बयान करता।

मैं 'अब क्या अर्ज करूँ। बेकार कानो को बुरा लगेगा, न कहना ही अच्छा है। कुछ ऐसे ही इत्तिफाकात पेश आये, कि लखनऊ जाने को जी नही चाहता।'

बेगम 'चलो अच्छा है, तो हमारे पास भी कभी-कभी चली आया करो।'

मैं 'आना कैसा। मेरा तो अभी से जाने को जी नही चाहता। अव्वल तो आपकी कदरदानी, दूसरे यह बाग, यह फिज़ा। मुमकिन है कि कोई एक बार देखे और दोबारा देखने की चाह न हो। ख़सूसन, मुझ ऐसी मिज़ाज की औरत के लिये तो यहाँ की आबोहवा अक्सीर का असर रखती है।'

बेगम 'ए है, तुम्हे यह जगला बहुत पसन्द आया, न आदमी न आदम जात, हैयात खुदा की जान। शहर से कोसो दूर। चार पैसो का सौदा मँगाओ, तो आदमी सुबह का गया शाम को आता है। छायें पोयें शैतान के कान बहरे। कोई बीमार हो, तो जब तक हकीम साहब शहर मे आये, यहाँ आदमी का काम तमाम हो जाये।'

मैं 'हुज़ूर अपनी-अपनी तबीयत। मुझे तो पसन्द है। मैं तो जानती हूँ कि अगर यहा रहूँ, तो मुझे किसी चीज़ की ज़रूरत ही न हो। दूसरे ऐसे मुकाम पर बीमार होना क्या ज़रूर है ?'

बेगम 'जब मे पहले-पहल आई थी, तो मेरा भी यही ख्याल था। कुछ दिनो यहा रह के मालूम हुआ, कि शहर के रहने वाले ऐसे मुकाम पर नही रह

सकते । शहर मे हजार तरह का आराम है । और सब बातो को जाने दो, जब से नवाब कलकत्ता गये है, रातो को डर के मारे नीद नही आती । यूँ तो खुदा के दिये सिपाही, पासी, खिदमतगार इस वक्त भी दस बारह नौकर है, औरतो की गिनती नही, मगर फिर भी डर लगता है । मैं दो चार दिन और राह देखती हूँ, अगर नवाब जल्दी न आये तो मैं शहर मे कोई मकान ले के जा रहूँगी ।'

मैं 'कुसूर मुआफ, आपका मिजाज वहमी है । ऐसे-ऐसे विस्वास दिल मे न लाया कीजिये । शहर मे जाईयेगा, तो कदरे-आफियत खुलेगी । वह गर्मी है, कि आदमी बिकसे जाते है । दूसरे बीमारियाँ, कि खुदा पनाह मे रखे ।'

यह बाते हो ही रही थी, कि इतने मे दाई बच्चे को ले के आई । तीन बरस का लडका था, माशा अल्ला गोरा गोरा, खूबसूरत । ऐसी प्यारी प्यारी बाते करता था, जैसे मैना । बेगम ने दाई से ले के, गोद मे बिठा लिया । थोडी देर, खिला कुदा के फिर दाई को देने लगी, कि मैंने हाथ बढा के ले लिया । बडी देर तक लिये रही और प्यार किया की । फिर दाई को दे दिया ।

मैं 'यूँ तो शायद न आती, मगर मियाँ को देखने तो जरूर ही आऊँगी ।'

बेगम (मुस्कुरा के) 'अच्छा किसी तरह हो, आना जरूर ।'

मैं 'जरूर-जरूर हाज़िर हूँगी । यह आप बार-बार क्यो फरमाती हैं । मैं तो इस कदर हाज़िर हूँगी, कि हुजूर को दूभर हो जाऊँगी ।'

इसके बाद इधर उधर की बातें होने लगी । बेगम ने मेरे गाने की बहुत तारीफ की । इसी अस्ना मे खासा वाली ने आ के कहा, कि खासा तैयार है । बेगम ने कहा 'चलो खाना तो खा लो ।'

मैं 'बहुत खूब ।'

बेगम मसनद से उठ खडी हुई । मैं भी साथ ही उठी । मेरा हाथ पकड लिया । महरियो को इशारा किया, तुम यही ठहरो, हम खाना खा के यही बैठेगे ।

मैं 'वाकई, इस वक्त का समाँ तो ऐसा है, कि जाने को जी नही चाहता ।

मगर हुक्मे हाकिम।'

बेगम 'तो क्या खाना यही मँगवा लिया जाये ?'

मैं. 'जी नही। अच्छा, खाना खा के चले आयेंगे।'

बेगम (एक महरी से) 'इनके साथ के आदमियो को खाना दिला दिया गया ?'

महरी (हाथ बाँध के) 'हुजूर दिला दिया गया।'

बेगम 'अच्छा, उन्हे रुखसत करो। हमने दूसरा मुजरा मुआफ़ किया। उमराव जान, खाना खा के जावेगी।'

इसके बाद बेगम और मैं, दोनो कोठी की तरफ चले। एक महरी आगे-आगे फानूस लिये जाती थी, चुपके से मेरे कान मे कहा, 'मुझको तुमसे बहुत सी बातें करना हैं, मगर आज इसका मौका नही। कल तो मुझे फुर्सत न होगी। परसो तुम सुबह आना और खाना यही खाना।'

मैं 'मुझे भी कुछ अर्ज़ करना है।'

बेगम 'तो अच्छा, आज कुछ न कहो। चलो खाना खा लें, इसके बाद तुम्हारा गाना सुनेंगे।'

मैं 'फिर साज़िन्दों को तो हुज़ूर ने रुखसत कर दिया।'

बेगम 'हमको मर्दों के साथ गाना अच्छा नही मालूम होता। मेरी एक खवास, खूब तबला बजाती है, उस पर गाना।'

मैं 'बहुत खूब।'

अब हम कोठी के पास पहुँच गये। बहुत बडी कोठी थी और इस तरह सजी हुई थी, कि शाही कोठियो के देखने के बाद, अगर कोई कोठी देखी तो यही देखी। पहले बरामदा मिला। इसके बाद कई कमरो मे होके गुज़रे। हर एक, नये तर्ज़ से सजा हुआ था। हर कमरा, फर्श फर्नीचर और शीशा आलात एक नये रंग और नये तर्ज़ का था। आखिर हम उस कमरे मे पहुँचे, जहाँ दस्तरख्वान चुना हुआ था। दस्तरख्वान पर दो औरतें और भी मुन्तज़र थी। इनमे से एक चिट्टी नवीन थी। सूरतें भी अच्छी थी।

दस्तरख्वान पर कई किस्म के खाने, पुलाव, बिरयानी, मुतंजन, सफेदा,

वाकर खानिया, कई तरह के सालन, कबाब, अचार, मुरब्बे, मिठाइयाँ, दही, बालाई, गरज़ेकि हर किस्म की नेमत मौजूद थी। लखनऊ से निकलने के बाद आज खाने का मज़ा आया। बेगम, हर तरह की चीजें मेरे सामने रखती जाती थीं। मैं अगर्चे किसी कदर तकल्लुफ से खाना खाती थी, मगर इनके इसरार ने ज़रूरत से ज़्यादा खिला दिया।

बेसन दानी और तसला आया। हाथ मुँह धो के सबने पान खाये। फिर उसी चबूतरे पर जलसा जमा। इस जलसा में सिर्फ बेगम साहबा ही न थीं, बिट्टी नसीम, मुसाहबीन, मुगलानियाँ, पेश खिदमतें, महरियाँ, मामाएँ सब मिला के कोई दस बारह औरतें थीं।

बेगम साहबा ने हुक्म दिया, कि तबला की जोडी और सितार उठा लाओ। एक मुसाहिब जो तबला बजाने में मश्शाक थी, तबला बजाने लगी। खुद बेगम साहबा सितार छेडने लगीं। मुझे गाने का हुक्म दिया।

खाते-खाते दस ग्यारह बज चुके थे। जब हम गाने को बैठे हैं, ठीक बारह बजे का वक्त था। इस वक्त वह बाग, जिसमें बहुत सा रुपया खर्च करके जंगल और पहाड की घाटियों के नमूने बनाये गये थे, अजब वहशतनाक समाँ दिखा रहा था। एक तरफ, चाँद इस आलीशान कोठी के एक गोशे से थोडी दूर पर, गुन्जान दरख्तों की शाखों से नज़र आता था। मगर अब डूबने ही को था। तारीकी रौशनी पर छाई जाती थी, जिससे हर चीज़ भयानक मालूम होने लगी। दरख्त जितने ऊँचे थे, उससे कहीं बडे नज़र आते थे। हवा सन-सन चल रही थी। सर्व के दरख्त साँय-साँय कर रहे थे। और तो हर तरफ खामोशी का आलम था, मगर तालाब में पानी गिरने की आवाज़ बुलन्द हो गई थी। कभी-कभी कोई परिन्दा अपने-अपने आशियाने में चौंक कर, एक बाँग बोल देता था, या शिकारी जानवरों के हौल से जो चिडियाँ उडती थीं, उससे पत्ते खडक जाते थे, या कभी कोई मछली तालाब में उछल पडती थी। मेंढक अपना बेतुका राग गा रहे थे। झींगर आस दे रहे थे। सिवाय इस चबूतरे के, जहाँ दस बारह जवान-जवान औरतें, रंग-रंग के लिबास पहने और तरह-तरह के जेवर से आरास्ता, जलसा जमाये बैठी थीं, और कोई आस पास

न था। हवा के झोको से कँवल बुझ गये थे। सिर्फ दो मृदगो की रोशनी थी। इनके भी शीशे सब्ज। या तारो का अक्स जो तालाब के पानी मे हलकोरे ले रहा था। हर तरफ अँधेरा था। तिलिस्मात का आलम था। वक्त और मुकाम की मुनासिबत से, मैंने सोहनी की एक चीज शुरू कर दी। इस रागनी के भयानक सुरो ने, दिल पर अपना पूरा असर किया था। सब दम साधे बैठे थे।

मारे खौफ के बाग की तरफ देखा न जाता था। खासकर गुलाब दरख्तो के नीचे अँधेरा घुप हो गया था। सब एक दूसरे की सूरत देख रहे थे। गोया वह जलसा, मातम की जगह थी और जिधर मुँह उठा के देखो एक हू का आलम था। औरो का जिक्र क्या, खुद मेरा कलेजा धडक रहा था। दिल ही दिल मे कहती थी, बेगम ने सच कहा था। बेशक यह जगह रहने के लायक नही है। इस असना मे गीदड के बोलने की आवाज आई। उसने और भी दिलो को हिला दिया। इसके बाद कुत्ते भौकने लगे। अब तो मारे दहशत के यह हाल था, कि किसी के मुँह से बात नही निकलती थी। इतने मे बेगम ने गाव तकिया से जरा ऊँची हो के अपने सामने कुछ देखा, और जोर से एक चीख मार के मसनद पर गिर पडी। और सब औरतें भी उसी तरफ देखने लगी। मैं भी मुड के देखने लगी।

बेगम साहबा को मैं समझ चुकी थी, कि वहमी हैं। मगर अब जो देखती हूँ, तो उनके वहम की हकीकत नजर आने लगी। सामने से दस बारह आदमी मुँह पर ढाठे बाँधे, नगी तलवारे हाथ मे लिये दौडते चले आते है। औरतो के चिल्लाने से बेगम के नौकर चाकर, खिदमतगार, सब इस तरफ को चले। कोई निहत्था, किसी के हाथ मे लाठी। मगर डाकू ज्यादा थे और यहाँ आदमी कम थे। कोई तो रास्ते से फरार हो गये। पाँच चार आदमी चबूतरे तक पहुँच ही गये। उन्होने आकर औरतो को बीच मे कर लिया और लडने मरने पर आमादा होके खडे हो गये। औरतो मे से किसी को होश न था। सब गश की हालत मे बेदम पडी थी। एक मैं, खुदा जाने क्या पत्थर का दिल था, कि बैठी रही। मारे हौल के दम निकला जाता था। या अल्लाह, देखिये

क्या होना है।

बेगम के आदमियो मे से जिनके पास हथियार थे, वह आगे बढ़ने ही को थे, कि सरफराज़ नामी एक सिपाही ने रोका।

सरफराज (अपने साथियो से) 'ठहरो, अभी जल्दी न करो। पहले हमे इन लोगो का इरादा मालूम कर लेने दो।' (डाकुओ से) 'तुम लोग किस इरादे से आये हो?'

एक डाकू 'जिस इरादे से आये है, तुम्हे अभी मालूम हो जायेगा।'

सरफराज़ 'यही मैं पूछना चाहता हूँ। जान चाहते हो या माल?'

दूसरा डाकू · 'हमे जान से कोई गरज़ नही। कोई बाप मारे का बैर है? हाँ, जिस इरादे से आये हैं, उसमे रुकावट डालोगे तो देखा जायगा।'

सरफराज़ (किसी कदर सख्त होके) 'तो क्या बहू बेटियो की आबरू लोगे? अगर यह मक़सद हो तो ।'

सरफराज पूरी बात भी खत्म न करने पाया था, कि किसी ने डाकुओ की तरफ से कहा, 'न साहब, किसी की बहू बेटियो से क्या वास्ता? हमारे बहू बेटियाँ नही हैं? औरतो के कोई हाथ लगा सकता है?'

इस आवाज़ पर मुझे कुछ शुबहा सा हुआ।

सरफराज़ (खुश होके) 'तो फिर यही तो मैं पूछता हूँ। अच्छा तो भाइयो, हम अभी तुम्हे कमरो की कुन्जियाँ मँगाये देते हैं, और जो औरतें वहाँ है उनको यहाँ बुलवाने देते हैं। घर की मालिक बेगम यहाँ हैं। तुम शौक़ से कोठी मे जाओ, और जो जी चाहे, उठा ले जाओ। रहा औरतो का ज़ेवर, वह भी अभी उतरवा देते हैं। हमारा मालिक, इससे कुछ गरीब न हो जायेगा। खुदा के हुक्म से, लाखो रुपया बैंक घर मे जमा है। इलाका से जो रुपया आता है, उसका ज़िक्र नही।'

डाकू इस से हमे क्या है? मगर देखो इसमे दगा न हो।'

सरफराज़ · 'सिपाही के पूत दगा नही देते। खातिर जमा रखो।'

वही डाकू जिसकी आवाज़ मैंने पहचानी थी, आगे बढा।

डाकू 'वाह क्या कहना, मर्दो का कौल ही तो है। अच्छा, कुन्जियाँ? इतना

कहना था, कि मेरे उसके आँखें चार हुईं। मैंने तो पहिचान लिया, बोलने का क़सद किया मगर दिल मे ऐसी दहशत समाई हुई थी, कि मुँह से आवाज़ न निकलती थी। इतने मे खुद उसने आगे बढके कहा,

'भाभी ! तुम यहाँ कहाँ ?'

मैं 'जब से तुम्हारे भाई कैद हो गये, यही हूँ।'

फ़ज़ल अली · 'यहाँ किसके पास ?'

मैं . 'रहती तो शहर मे हूँ, मगर यहाँ मेरी एक बहन, बेगम साहब के पास नौकर हैं, उनसे मिलने आई थी।'

फ़ज़ल अली 'तुम्हारी बहन कहाँ है ?'

मैं 'यही हैं। जब से तुम लोगो के आने का हँगामा हुआ, बेचारी गश में पड़ी हैं। मेरी तरह तो हैं नही। बेचारी परदा नशी हैं। जवानी मे राँड हुई। जब मे अमीर रईसो की नौकरियाँ करती फिरती हैं।'

फजल अली (अपने साथियो से) 'यहाँ से एक पैसा की चीज लेना भी मेरे लिये हराम है और न इस मुआमला मे, मैं तुम्हारे साथ हूँ।'

एक डाकू 'यह क्या ? फिर आये क्यो थे ?'

फजल अली 'जिस इरादे से आये, तुम्हें मालूम है। मगर किसी का कुछ ख्याल भी है ? मुझ से तो नही हो सकता, कि फैज़ू भैया की आशना और उसकी बहन का असबाब लूटूँ या जिस सरकार से उनको रोजी मिले, वहाँ दस्त दराज़ी करूँ। अगर वह कैद मे सुनेगा, तो क्या कहेगा ?'

इस बात पर डाकुओ का आपस मे बहुत झगडा होने लगा। मगर सब फज़ल अली का दबाव मानते थे, कोई दम न मार सकता था। फिर भी खाली हाथ जाना, कुछ ऐसी सहल बात न थी। सब डाकू गुल मचाते थे, 'फाकों मरते हैं। एक मौका मिला भी तो उसे खान साहब छोड देते हैं। आखिर, पेट कहाँ से पालें ?'

जब फज़ल अली अपने गिरोह से निकल के अलग खडे हुए तो उनके साथ ही साथ एक स्याह फाम शख्स यह कहता हुआ निकला, 'खाँ साहब ! मैं भी तुम्हारे साथ हूँ।'

गौर से जो देखती हूँ, मालूम हुआ कि फैजअली का साईस है । मैंने उसे बुलाया, अलग ले जा के बातें की । वह अशरफी और रुपया जो बेगम साहब ने इनाम दिये थे, चुपके से उसे दे दिये ।

फजल अली (सरफराजखाँ से) 'भाई, मैं तुम्हारे साथ हूँ, अब तुम जानो और यह लोग ।'

सरफराज 'मैं इन लोगों को अभी राजी किये देता हूँ, मगर यहाँ से चलो । औरतें परेशान हो रही हैं । सरकार गश में पड़ी हैं । जरा इनको होश में आने दो, हम तुम लोगों को खुश कर देंगे ।'

डाकू वहाँ से चले गये । बेगम साहबा, अभी तक बेहोश पड़ी थी । दाँत बैठ गये थे । मैं तालाब से हाथ में पानी लाई । इनके मुँह पर छींटे दिये । बड़ी मुश्किल से होश में आईं । मैंने कहा सँभल के बैठिये । खुदा के सदके में वह आफत टल गई, खातिर जमा रखिये । और औरतों को भी पानी छिड़क कर उठाया । सब उठ-उठ के बैठी । जब इतमीनान हो गया तो मैंने कुल किस्सा बयान किया । बेगम साहबा बहुत खुश हुईं । सरफराज खाँ को बुला भेजा ।

सरफराज 'सरकार कुछ दे दीजिये । बगैर इसके काम न चलेगा । इस इस वक्त उमराव जान यहाँ न होती, न आफत टलती ।'

मैंने इस बात का जवाब कुछ न दिया । इसलिये, कि मैं समझ गई कि इस वक्त यह राज की बात इनके मुँह से निकल गई है । इस मौका पर ऐसी बातों का इजहार इनकी शान के खिलाफ है ।

मैं 'जी नहीं, मैंने क्या किया, यह भी इत्तिफाक था ।'

मुख्तसर यह कि बेगम ने सन्दूकचा मँगवाया । पाँच सौ नकद और पाँच सौ का सोने चाँदी का जेवर देकर उन्हें टाला । सब की जान में जान आई । बेगम साहब का उस वक्त का कहना मुझे आज तक याद है ।

बेगम 'क्यों, उमराव जान ! बाग में रहने का मजा देखा ?'

मैं 'हुजूर, सच कहती थी ।'

अब सुबह के तीन बज गये थे । सब लोग उठ उठ के कोठी में गये । इन लोगों के साथ, मैं भी उठी । कोठी के बरामदे में एक पलँग मेरे लिये बिछवा

दिया गया। नींद किसे आती है, रात भर जागी रही। सुबह होते सब सो गये, मेरी भी आँख लग गई। अभी नींद भर के सोने भी न पाई थी, कि मेरे ख़िदमतगार सवारी ले के आ गये, मुझे जगवाया। मैं आँखे मलती हुई, बाहर गई।

ख़िदमतगार 'आप तो खूब यहाँ आईं। रात भर हम लोग राह देखा किये।'

मैं 'क्योंकर आती। सवारी को तो रुख़सत कर दिया था।'

ख़िदमतगार 'अच्छा तो अब चलिये, लखनऊ से लोग आपके पास आये हैं।'

मैं समझ गई, हो न हो, गौहर मिर्ज़ा और बुआ हुसैनी होंगे। आख़िर पता लगा लिया ना।'

मैं 'अच्छा चलती हूँ। सवारी लाये हो ?'

ख़िदमतगार 'हाज़िर है।'

जब मैंने जाने का कसद किया, दो एक औरतें और जग चुकी थी।' मुझको रोका कि बेगम साहबा से मिल के जाइयेगा। मैंने कहा, 'इस वक्त काम है। बेगम साहबा, खुदा जाने, कब सो के उठेंगी। ऐसा ही है तो फिर आऊँगी।'

## सोलह

दश्ते जनूँ की सैर में बहला हुआ था दिल,
ज़िन्दाँ में लाये फिर मुझे अहबाब घेर के।

घर पर जो आ के देखती हूँ, बुआ हुसैनी और मियाँ गौहर मिर्ज़ा बैठे हुए हैं। बुआ हुसैनी मेरे गले से लिपट गईं, रोने लगी। मैं भी रोने लगी।

बुआ हुसैनी 'अल्ला बेटी! क्या सख्त दिल कर लिया। तुम्हें किसी की मुहब्बत ही नहीं?'

मैं बजायेखुद शर्मिन्दा थी। जवाब क्या देती? झूठ मूठ रोने लगी।

मामूली गुफ्तगू के बाद, बुआ हुसैनी ने उसी दिन लखनऊ चलने का इरादा कर लिया। मैंने लाख लाख इसरार किया कि ठहर जाओ, उन्होंने न माना। ज्यादा जल्दी की वजह यह यह थी, कि मौलवी साहब बीमार थे। बुआ हुसैनी को दम भर कहीं ठहरना दूभर था। ऐसी ही मेरी मुहब्बत थी।, जो चली आई थी। वह दिन, कानपुर से असबाब वगैरा के खरीदने और मकान के किराये और नौकरो चाकरो के हिसाब करने मे तमाम हुआ। पूरी शिकरम किराया पर कर ली थी। जरूरी सामान इस पर लाद लिया और फ़ज़ूल सामान नौकरो को दे दिया। दूसरे दिन लखनऊ पहुँच गई। फिर वही आबोदाना है, वही मकान, वही कमरा वही आदमी।

## सत्रह

देखिये पहुंचे कहाँ तक, शोरशे दिल का असर,
सरशरे वहशत का, यह शोला है भडकाया हुआ।

नवाब मलका किशवर की सरकार मे सोजखानी का सिलसिला सल्तनत के जवाल तक रहा। इसी बीच मे शाहजादे सिकन्दर हशमत, उर्फ जरनैल साहब के मुजराइयो मे मेरा भी नाम हो गया था। जनाबे आलिया और जरनैल साहब, कलकत्ता चले गये। वह ताल्लुक टूट गया।

जिस जमाने मे बागी फौज ने मिर्जा बिरजिस कदर को मसनदे-रियासत पर बिठाया, मैं मुबारिकबाद देने के लिये तलब हुई। शहर मे एक अंधेर था। आज इनका घर लुटा, कल वह गिरफ्तार हुआ, परसो उसके गोली लगी। चारो तरफ कयामत का सामान नजर आता था। सय्यद कुतुबउद्दीन नामी एक साहब अफसराने फौज मे थे। इनका तअय्युन दरे दौलत पर था। मेरे हाल पर बहुत इनायत करते थे, इस लिये अक्सर वहीं रहना पडता था। मुजरे के लिये भी, वक्त बेवक्त तलब होती रहती थी।

इन चंद रोजा हुकूमत के जमाने मे, बिरजिस कदर के ग्यारहवें साल की सालगिरह का जलसा बडी धूम धाम से हुआ। इस जलसे मे कश्मीरियो ने यह गजल गाई थी

रौंरते महताब है बिरजिस कदर,
गौहरे-नायाब है बिरजिस कदर।

मैं ने एक गजल इस मौके के लिये लिखी थी, उसका मतला यह है,

दिल हजारो के तेरी भोली अदाये लेगी,
हसरते चाहने वालो की वलाये लेगी ।

रुसवा 'उमराव जान ! तुमने मतला तो क्यामत ही का कहा है। और कोई शेर याद हो तो पढो ।'

उमराव जान 'ग्यारह शेर कहे थे, मगर आपके सिर की कसम, सिवाय इस मतला के और कोई शेर याद नही, वह जमाना ऐसी ही आफत का था। निगोडी दिन रात, जान धडके में रहती थी। गज़ल एक पर्चा पर लिखी थी। जिस दिन वेगम साहवा, कैसरवाग से निकली है, वह पर्चा मेरे पानदान मे था। फिर जव वहाँ से निकलना हुआ, होल जोल मे पानदान कैसा, जूतियाँ और दोपट्टे तक छूट गये।

रुसवा 'भला याद है, किस दिन वेगम साहवा कैसरवाग से निकली थी ?'

उमराव जान 'दिन तो याद नही । हज़ारी रोज़े के दूसरे या तीसरे दिन की वात है ।'

रुसवा 'हाँ, तुम्हें याद रहा । रजव की उन्तीसवी तारीख थी । भला फसल कौन सी थी ?'

उमराव जान : 'अखिरी जाडे थे। नौरोज़ के चार पाँच दिन वाकी रहे होगे ।'

रुसवा 'विल्कुल दुरुस्त । मार्च की सोलहवी तारीख थी । अच्छा, तुम वेगम साहवा के साथ कैसरबाग से निकली ।'

उमराव जान 'जी हाँ, बौंडी तक हमराह गई । रास्ता मे नमक हराम और बुजदिल अफसराने फौज के गमजे, और वेगम साहव की खुशामद, उम्र भर न भूलेगी। एक साहव कहते हैं, 'लो साहव इनके राज मे हम पैदल चले । दूसरे साहव फरमाते हैं, 'भला खाने का तो इन्तजाम दुरुस्त होता ।' तीसरे साहव अफ्यून को पीट रहे हैं । चौथे अपनी जान को रो रहे है, कि हुक्का वक्त पर नही मिलता । - जव भरायच से, अग्रेजी फौज ने वौडी पर हमला किया है, तो इसमे सैयद कुतुवउद्दीन मारे गये। वेगम साहवा नेपाल की तरफ

रवाना हुई। मैं अपनी जान बचा के फैज़ाबाद चली आई।

रुसवा सुना है, बौडी मे चार दिन के लिये खूब चहल पहल हो गई थी।'

उमराव जान 'आप ने सुना है, मैंने इन आँखो से देखा है। लखनऊ के भागे हुए, सब वही जमा हो गये। बौडी का बाजार, लखनऊ का चौक मालूम होता था।'

रुसवा 'अच्छा, इस किस्से से मुझको ज्यादा दिलचस्पी नही है। यह कहिये, कि वह माल, जो आपने मियाँ फैजू से लिया था, उनका क्या बना ?'

उमराव जान (एक आहे सर्द भर के) 'ऐ है, यह न पूछिये।'

रुसवा 'गदर मे सब लुट गया ?'

उमराव जान 'गदर मे लुट जाता तो इतना अफसोस न होता।'

रुसवा 'फिर क्या हुआ ?'

उमराव जान 'सारा किस्सा दोहराना पडा। जिस दिन शब को फैजू के साथ भागने वाली थी, मैंने कुल ज़ेवर और अशरफियाँ एक पिटारी मे बद की, ऊपर से खूब कपडा लपेट दिया।

खानम के मकान के पिछवाडे, एक मीर साहब रहते थे। इमामबाडे के कोठे की दीवार पर चढ जाओ, तो इनके मकान का सामना हो जाता था। मैं अक्सर चारपाई लगा के इस दीवार पर चढ जाया करती थी, और मीर साहब की बहन से बाते किया करती थी।

वह ज़ेवर की पिटारी, मैंने उनकी बहिन के पास फेंक दी और उन से हाथ जोड के कहा, इस को हिफाजत मे रखना। उन्हो ने फैज़ाबाद से आने के बाद, वह पिटारी गूदड मे लिपटी हुई मेरे हवाले कर दी। ग़दर मे तमाम दुनिया के घर लुटे। अगर कह देती, कि लुट गई, तो मैं उनका क्या कर लेती। मगर वाह री बीबी! एक कौडी तक नुक्सान नही हुआ। ऐसे ही लोगो ने ज़मीन आसमान थमा हुआ है, नही तो कब की कयामत आ जाती।

रुसवा 'कितने का माल होगा ?'

उमराव जान 'कोई दस पन्द्रह हज़ार का माल था।'

रुसवा 'हाँ वह क्या हुआ ?'

उमराव जान 'क्या हुआ ? जिस राह आया था, उसी राह गया।'

रुसवा 'मगर लोग तो मशहूर करते हैं कि तुम्हारी एक कौडी भी गदर मे नही लुटी। सब माल तुम्हारे पास है।'

उमराव जान 'अगर माल होता तो इन हालो मे रहती, जैसी अब रहती हूँ।'

रुसवा 'लोग कहते है, तुमने अपना माल नही निकाला है। अगर नही है, तो खर्च कहाँ से चलता है। अब भी कुछ बुरे हालो मे नही रहती। दो आदमी नौकर हैं। खुश खुराक और खुश पोशाक भी हो।'

उमराव जान 'खुदा राजक है। जो जिसका खर्च है, वह उसको जरूर मिलता है। उस माल का तो एक हब्बा भी नही रहा।'

रुसवा . 'अच्छा तो फिर क्या हुआ ?'

उमराव जान 'अब क्या। बताऊँ एक मेहरबान '

रुसवा 'मै समझ गया, यह गौहर मिर्ज़ा की हरकत होगी।'

उमराव जान 'मै अपने मुँह से नही कहती, शायद आपका कयास गलत हो।'

रुसवा 'बेशक, तुम्हारे आली जर्फ होने मे कोई शुबहा नही। देखिये यह चैन कर रहे हैं, तुम्हे पूछते तक नही।'

उमराव जान 'मिर्ज़ा साहब ! रडी से रस्म रहा रहा, न रहा न रहा। अब वह मुझे क्यो पूछें ?'

मुद्दत हुई कि तर्क मुलाक़ात हो गई।

रुसवा . 'अब कभी तशरीफ भी लाते हैं ?'

उमराव जान . 'वह काहे को तशरीफ लायेंगे ? मैं अक्सर जाया करती हूँ। उनकी बीवी से मुहब्बत हो गई है। अभी चार दिन हुए, लडके की दूध बढाई की थी, तो बुला भेजा था।'

रुसवा 'जब भी कुछ दे ही आई होगी।'

उमराव जान 'जी नही। मैं किस काबिल हूँ, जो किसी को कुछ दूँगी।'

रुसवा : 'तो वह माल गौहर मिर्ज़ा के कहाँ लगा ?'

उमराव जान 'मिर्जा साहब ! माल की कोई हकीकत नही है, हाथो का मैल है। फकत बात रह जाती है। अब भी अपने पैदा करने वाले के कुर्बान जाऊँ, कभी नगी भूखी नही रहती। आप ऐसे कदरदानो को खुदा सलामत रखे, मुझे किसी बात की तकलीफ नही है।'

रुसवा 'इसमे क्या शक है। वह तो पहले ही कह चुका हूँ, अब भी सौ मे अच्छी, हज़ार से अच्छी। वल्लाह, यह तुम्हारी नीयत ही का फल है। खुदा ने ज़यारत से भी मुशर्रफ किया।'

उमराव जान 'जी हाँ, मौला ने सब मुरादे पूरी की। अब यह तमन्ना है, कि मुझे कर्बला फिर बुला भेजे। मेरी मिट्टी अज़ीज़ हो जाय। मिर्जा साहब मैं इस इरादे से गई थी, कि फिर के न आऊँगी। मगर खुदा जाने क्या हुआ था, कि लखनऊ सिर पर सवार हो गया। मगर अब की अगर खुदा ने चाहा और जाना हो गया, तो फिर न आऊँगी।'

## अठारह

> सुन चुके हाल तवाही का मेरी, और सुनो,
> अब तुम्हे कुछ मेरी तकरीर मजा देती है।'

बाँडी से बेगम साहवा और विरजिस कदर नेपाल को रवाना हुए। सैयद कुतुवउद्दीन लडाई मे मारे जा चुके थे। मै वहज़ार मुश्किल फैजावाद आई। पहले सराय मे उतरी। फिर त्रिपोलिये के पास, एक कमरा किराया को लिया था। मीरासी रख लिये। गाना, वजाना शुरू कर दिया।

फैजावाद मे रहते हुए, अब मुझे छ महीने गुज़र चुके है। वहाँ की आवो-हवा तबीयत के वहुत मुआफिक है, दिल लगा हुआ है। आठवे दसवे कोई न कोई मुजरा आ जाता है। इसी पर वसर है। तमाम शहर मे मेरे गाने की धूम है। जहाँ मुजरा होता है, हज़ारो आदमी टूट पडते है। मेरे कमरे के नीचे, लोग तारीफे करते हुए निकलते है। मै दिल मे खुश होती हूँ। कभी कभी ख़ावोख्याल की तरह वचपन की बातें याद आ जाती है और इसके साथ ही दिल मे एक जोश सा पैदा होता है। मगर इन्तज़ाए-सल्तनत, गदर विरजिस कदर, यह सव वाकये, आँखो के सामने गुजर चुके है। कलेजा पत्थर का हो गया। माँ वाप के तस्सवुर के साथ ही यह ख्याल आता है, 'खुदा जाने अव कोई ज़िन्दा भी हो या न हो और अगर हो, तो उन्हे मुझसे क्या मतलव ? वह और आलम मे होगे मै और आलम मे हूँ।' खुद का जोश सही मगर कोई गैरतदार आदमी मुझसे मिलना गवारा न करेगा। अव उनसे मिलने की कोशिश करना उनको रंज देना

है।' घर का ख्याल आते ही वह बातें दिल में आती थीं, फिर तबीयत और तरफ मुतवज्जेह हो जाती थी।

लखनऊ की याद अक्सर सताती थी। मगर जब इनकिलाब का ख्याल आता था, दिल भर जाता था। अब वहाँ कौन है, किसके लिये जाऊँ? खानम जाती है तो क्या हुआ? उनमें अब क्योंकर बनेगी? वही अगली हुकूमत जतायेगी। मुझे अब उनकी कैद में रहना किसी तरह मंजूर न था। जो माल मीर साहब की बहन के पास अमानत था, वह अब क्या मिलेगा। तमाम लखनऊ लुट गया। मीर साहब का घर भी लुट गया होगा, उसका अब ख्याल ही बेकार है। अगर नहीं लुटा, तो अभी इसकी जरूरत ही क्या है, मेरे हाथ गले में जो कुछ मौजूद है, वह क्या कम है।

एक दिन, मैं कमरे पर बैठी हूँ। एक साहब शरीफाना सूरत, अधेड़ से तशरीफ लाए। मैंने पान बना के दिया, हुक्का भरवा दिया। हालात दरयाफ्त करने पर मालूम हुआ, वह बेगम साहबा के अज़ीज़ों में से हैं। पेन्शन पाते हैं। मैंने बातों बातों में मकबरा की रोशनी की तम्हीद उठा के, पुराने मुलाजिमों का जिक्र छेड़ा।

मैं 'अगले नौकरों में अब कौन कौन रह गया है?'

नवाब साहब 'अक्सर मर गए। नए नए नौकर हैं। अब वह कारखाना ही नहीं रहा। बिलकुल नया इन्तज़ाम है।'

मैं 'अगले नौकरों में एक बुड्ढे जमादार थे।'

नवाब 'हाँ थे, मगर तुम उन्हें क्या जानो?'

मैं 'गदर से पहले मैं एक मर्तबा मुहर्रम में फैज़ाबाद आई थी, मकबरे पर रोशनी देखने गई थी। उन्होंने मेरी बड़ी खातिर की थी।'

नवाब 'वही जमादार ना जिनकी एक लड़की निकल गई थी।'

मैं 'मुझे क्या मालूम, (दिल में) हाय अफसाना अब तक मशहूर है)।'

नवाब 'यूँ तो वही जमादार थे और अब भी हैं, मगर रोशनी वग़ैरा का इन्तज़ाम गदर से पहले वही करते थे।'

मैं 'रतजगा भी उनका था।'

नवाव 'तुमने लडके को कहाँ देखा ?'

मैं 'उस दिन उनके साथ था। ऐसी भी शक्ल मिलते कम देखी है, बिना कहे, मैं पहचान गई थी।'

नवाव 'जमादार गदर मे पहले ही मर गए थे, वही लडका उनकी जगह नौकर है।'

इसके वाद वात टालने के लिए, मैंने और कुछ हालात इधर उधर के पूछे। नवाव साहव ने सोज़ पढ़ने की फरमाइश की। मैंने दो सोज़ सुनाये। वहुत महजूज हुए। रात कुछ ज्यादा हो गई थी, घर तशरीफ ले गए।

वाप के मरने का हाल सुन के, मुझे वहुत रज हुआ। उस दिन रात भर रोया की। दूसरे दिन वे अख्तियार जी चाहा, भाई को जा के देख आऊँ।

दो दिन के वाद एक मुजरा आ गया। उसकी तैयारी करने लगी। जहाँ का मुजरा आया था, वहाँ गई। मुहल्ले का नाम याद नही। मकान के पास, एक वहुत वडा पुराना इमली का दरख्त था, उसी के नीचे समगीरा ताना गया था। गिर्द कनातें थी, वहुत वडा मजमा। मगर, लोग कुछ ऐसे ही वैसे थे। कनातो के पीछे और सामने खपरैलो मे औरतें थी। पहला मुजरा कोई नौ वजे शुरू हुआ, वारह वजे तक रहा। इस मुकाम को देख के दहशत सी होती थी। दिल उमडा चला आता था, कि यही मेरा मकान है। यह इमली का दरख्त वही है, जिसके नीचे, मैं खेला करती थी। जो लोग महफिल मे शरीक थे, इनमे से वाज़ आदमी ऐसे मालूम होते थे, जैसे इनको मैंने कही देखा है। शुवहा मिटाने के लिए, मैं कनातो के वाहर निकली। घरो की वनावट कुछ और हो गई थी। इससे ख्याल हुआ शायद यह वही जगह न हो। एक मकान को गौर से देखा की। दिल को यकीन हो गया था, कि यही मेरा मकान है। जी चाहता है, कि मकान मे घुसी चली जाऊँ। माँ के कदमो पर गिरूँ। वह गले लगा लेगी। मगर जुरअत न होती थी। इसलिए कि मैं जानती हूँ, देहात मे रडियो से परहेज़ करते हैं। दूसरे वाप, भाई की इज्जत का ख्याल था। नवाव साहव की वातो से मालूम हो चुका था, कि जमादार की लडकी का निकल जाना लोगो को मालूम है। फिर जी कहता था, हाय, क्या

गजब है, सिर्फ एक दीवार की आड है। उधर मेरी अम्मां बैठी होगी और मैं यहाँ उनके लिए तडप रही हूँ। इक नज़र सूरत देखना भी मुमकिन नही। क्या मजबूरी है?'

इसी उधेडबुन मे थी, कि एक औरत ने आके पूछा : 'तुम्ही लखनऊ से आई हो?'

मैं 'हाँ' अब तो मेरा कलेजा हाथों उछलने लगा।'

औरत 'अच्छा तो उधर चली आओ, तुम्हे कोई बुलाता है।'

मैं 'अच्छा।' कह के उसके साथ चली। एक एक पांव गोया सौ सौ मन का हो गया था। कदम रखती थी कही, और पडता था कही।'

वह औरत उस मकान के दरवाजे पर मुझे ले गई, जिसे मैं अपना मकान समझे हुए थी। उस मकान की ड्योढी मे मुझको बिठा दिया। अन्दर के दरवाजे पर टाट का पर्दा पडा हुआ था। उसके पीछे दो तीन औरतें आ के खडी हुई।

एक 'लखनऊ से तुम्हीं आई हो?'

मैं 'जी हाँ।'

दूसरी 'तुम्हारा नाम क्या है?'

जी मे तो आया कह दूँ, मगर दिल को थाम के कहा : 'उमराव जान।'

पहली 'तुम्हारा वतन खास लखनऊ है?'

अब मुझ से ज़ब्त न हो सका। आंसू निकल पडे। मैं : 'असली वतन तो यही है, जहाँ खडी हूँ।'

पहली : 'तो क्या बंगले की रहने वाली हो?'

आंखो से आंसू बराबर जारी थे, बमुश्किल जवाब दिया। मैं : 'जी हाँ।'

दूसरी 'क्या तुम जात की पतुरिया हो?'

मैं : 'जात की पतुरिया तो नहीं हूँ, तकदीर का लिखा पूरा कर रही हूँ।'

पहली ([illegible]) : 'अच्छा तो रोती क्यों हो? आखिर कहो, तुम कौन हो?'

मैं ([illegible]) 'क्या बताऊँ? कौन हूँ। कुछ कहते बन नहीं पडता।'

इतनी बातें मैंने बहुत दिन संभाल के की थी, अब बिल्कुल ताब ज़ब्त की न थी। सीने में दम रुकने लगा था।

इतने में दो औरतें पर्दे के बाहर निकली। एक के हाथ में चिराग था। उसने मेरे मुँह को हाथ में थाम के, कान की लव के पास गौर से देखा, और यह कह के दूसरी को दिखाया और कहा,

'क्यों हम न कहते थे, वही है?'

दूसरी 'हाय मेरी अमीरन।' यह कह के लिपट गई। दोनों मा बेटियाँ चीखें मार मार के रोने लगी। हिचकियाँ बँध गई। आख़िर दो औरतों ने आ के छुड़ाया। इसके बाद, मैंने अपना सारा किस्सा दोहराया। मेरी माँ बैठी सुना की और रोया की। बाकी रात हम दोनों वहीं बैठे रहे। सुबह होते ही रुखसत हुई। माँ ने चलते वक्त, जिस हसरत भरी निगाह से मुझे देखा था, वह निगाह मरते दम तक न भूलेगी। मगर मजबूरी। रोज़े रौशन न होने पाया था, कि सवार हो कर अपने कमरे चली आई। दूसरा मुजरा सुबह को होता मगर मैंने घर पर आके, कुल रुपया मुजरे का, वापस कर दिया और बीमारी का बहाना कहला भेजा। दुल्हा के बाप ने आधा रुपया फेर दिया। उस दिन, दिन भर जो मेरा हाल रहा खुदा ही पर खूब रौशन है। कमरे के दरवाज़े बन्द कर के, दिन भर पडी रोया की।

• दूसरे दिन, शाम को, कोई आधी घडी रात गये, एक जवान सा आदमी, साँवली रंगत, कोई बीस बाईस का सिन, पगडी बांधे, सिपाहियों की ऐसी वर्दी पहने मेरे कमरे पर आया। मैंने हुक्का भरवा दिया। पानदान में पान न थे, मामा को बुला के चुपके से कहा, 'पान ले आओ।' इत्तिफाक से और कोई भी इस वक्त न था। कमरे में, मैं हूँ और वह है।

जवान 'कल तुम्हीं मुजरे को गई थी?' यह इस तरह से कहा कि मैं झिझक गई।'

मैं 'हाँ।'

इतना कह के उसके चेहरे की तरफ जो देखा यह मालूम होता था, जैसे आँखों से खून टपक रहा है।

जवान (सिर नीचा कर के) 'खूब घराने का नाम रौशन किया।'

मैं (अब समझी यह कौन शख्स है) 'इसको तो खुदा ही जानता है।'

जवान 'हम तो समझते थे कि तुम मर गई, मगर तुम अब तक जिन्दा हो।'

मैं 'बेगैरत जिन्दगी थी, न मरी। खुदा कहीं से जल्द मौत दे।'

जवान 'बेशक इस जिन्दगी से मौत लाख दर्जे बेहतर थी। तुम्हें तो चुल्लू भर पानी में डूब मरना था। कुछ खा के सो रहती।'

मैं 'खुद इतनी समझ न थी, न आज तक किसी ने ऐसी नेक सलाह दी।'

जवान 'अगर ऐसी ही गैरतदार होती, तो इस शहर में कभी न आती और आई भी तो इस मुहल्ले में मुजरे को न आती, जहाँ की रहने वाली थी।'

मैं 'हाँ इतनी खता जरूर हुई, मगर मुझे क्या मालूम था?'

जवान 'अच्छा, तो अब मालूम हो गया।'

मैं 'अब क्या होता है?'

जवान 'अब क्या होता है? अब क्या होता है? (छुरी कमर से निकाल के मुझ पर झपटा। दोनों हाथ पकड़ के गले पर छुरी रख दी) 'अब यह होता है।' इतने में मामा बाजार से पान ले के आई। उसने जो यह हाल देखा, लगी चीखने, 'अरे दौड़ो, बीबी को कोई मारे डालता है।'

जवान (छुरी गले से हटा के, हाथ जोड़ दिये) 'औरत को क्या मारूँ? और औरत भी कौन? बड़ी ।' इतना कह के ढाटें मार-मार के रोने लगा।

मैं पहले से तो रही थी, जब उसने गले पर छुरी रखी थी, जान के खौफ से एक अजब सा कलेजे पर पहुँचा था। उससे दम बखुद हो गई थी। जब वह लोटकर रोने लगा मैं भी रोने लगी।

मामा ने दो एक चीखें मारी थीं। जब उसने यह हाल देखा, कुछ चुप सी हो रही, इधर मैंने इशारे से मना किया, वह किनारे खड़ी हो गई।

जब दोनों [illegible] रो धो चुके, तो वह बोला,

जवान (हाथ जोड़ के) 'अच्छा तो इस शहर से कहीं चली जाओ।'

मैं 'कल चली जाऊँगी, मगर माँ को एक मर्तबा और देख लेती।'

जवान · 'बस। अब दिल से दूर रखो, मुआफ करो। कल अम्मां ने तुम्हें घर पर बुला लिया। मैं न हुआ, नही तो उसी वक्त वारा न्यारा हो जाता। मुहल्ले भर मे चर्चे हो रहे हैं।'

मै 'तुमने रख लिया, जात से तो मैं डरती नही, मगर हाय तुम्हारी जान का ख्याल है। तुम अपने बच्चो पर सलामत रहो। खैर, अगर जीते रहे, तो कभी न कभी खैरोआफियत सुन ही लिया करेंगे।'

जवान · 'बराये खुदा, किसी से हमारा ज़िक्र न करना।'

मैं 'अच्छा।'

वह जवान तो उठ के चला गया। मैं अपने गम मे मुब्तिला थी। मामा ने और जान खाना शुरू की, 'यह कौन थे ?'

मैं 'रडी के मकान पर हज़ारो आदमी आते हैं। कोई थे, तुम्हे क्या ?'

बहर तौर मामा को टाल दिया। रात की रात सो रही, सुबह को उठ के लखनऊ के चलने की तैयारी की। शामो शाम शिकरम किराया पर करके रवाना हो गई।

# उन्नीस

लखनऊ में आकर खानम के मकान पर उतरी। वही चौक, वही कमरा, वही हम हैं। अगले आने वालों में से कुछ लोग कलकत्ता चले गये थे, कुछ और शहरों में निकल गये थे। शहर में नया इन्तजाम, नये कानून जारी थे। आसफउद्दौला के इमामबाड़े में किला था। चारों तरफ दहन बने हुए थे। जा बजा चौड़ी सड़कें निकल रही थीं। गलियों में खरंजे बनाये रहे थे, नाले नालियाँ साफ की जाती थीं। गरजेकि, लखनऊ अब और ही कुछ हो गया था।

मैं दो चार महीने खानम के मकान पर रही। इसके बाद, कुछ हीले से एक अलहदा मकान ले कर रहना शुरू किया। ज़माने के इन्कलाब के साथ खानम की तबीयत भी कुछ बदल गई थी। मिज़ाज में एक बेपरवाही सी आ गई थी। जो रंडियाँ उनसे अलग हो गई थीं, उनका तो ज़िक्र ही क्या, जो साथ रहती थीं उनके रुपये पैसे से भी कोई वास्ता न था। मेरा अलहदा हो जाना भी, कुछ उनके मिज़ाज के खिलाफ न गुज़रा। दूसरे तीसरे दिन मैं जाती थी, सलाम

अदालत मे दावा दायर कर दिया, कि मुझ से निकाह है। अजब आफत मे जान फँसी। मुकदमे की पैरवी मे हजारो रुपये सर्फ हुए। अदालत इब्तदाई मे फैसला नवाब साहब के हक मे हुआ। अब मुझे रूपोश होना पडा। मुद्दतो छिपी छिपी फिरी। वकील की मार्फत अपील की। अपील मे नवाब साहब हारे। नवाब साहब ने हाई कोर्ट मे अपील की, यहाँ भी हारे। अब न जायज धमकियाँ देना शुरू की, 'मार डालूँगा। नाक काट लूँगा।' इस जमाने मे जान की हिफाजत के लिये मुझको दस बारह आदमी तनख्वाह नौकर रखने पडे। जहाँ जाती हूँ आदमी फीनस के साथ हैं। नाक मे दम हो गया। आखिर मैंने फौजदारी मे मुचलके का दावा किया। गवाहो से साबित करवा दिया, कि नवाब साहब बेशक जान लेने पर तुले हैं। हाकिम ने नवाब साहब से मुचलका ले लिया। अब जाके जान छूटी। छः बरस तक इन मुकदमो मे फँसी रही। खुदा खुदा कर के नजात हुई।

जिस जमाने मे नवाब साहब से मुकदमा लड रही थी एक साहब अकबर अली खाँ नामी, मुख्तार पेशा, चलते पुर्जे, बडे ही आफत के परकाले, नजायज कारवाईयो मे मश्शाक, जालसाजी मे उस्ताद, झूठे मुकदमे बनाने मे जमाने मे यकताँ, अदालत को धोखा देने मे एक, मेरी तरफ से पैरोकार थे। इनकी वजह से अदालती कामो मे बहुत मदद मिली। सच तो यह है, कि अगर वह न होते, नवाब से सरबर न होती। अगर्चे सच्चा वाकया यह है, कि नवाब से और मुझ मे निकाह न था। मगर अदालतो मे, अक्सर सच्ची बात के लिये भी झूठे गवाह पेश करना होते है। दूसरे फरीक की तरफ से बिल्कुल झूठा दावा था। लेकिन मुकदमा इस सलीके से बनाया गया था कि कोई सूरत बचने की न थी। निकाह के सबूत मे दो मौलवी पेश किये गये थे, जिनके माथो पर घट्टे पडे, बडे बडे अमामे सिर पर, अबाएँ कधो पर, हाथो मे कठे, पाँव मे जूतियाँ। बात बात मे, काल-उल अल्ला काल-उल रसूल। उनकी सूरत देखकर किसी हाकमे-अदालत क्या, किसी नेक नीयत आदमी को झूठ का शुबहा भी नही हो सकता। उनमे से एक हजरत नाक्हे के वकील बने थे और दूसरे मनकूहा के। मगर हक फिर हक है और नाहक, नाहक। जिरह मे बिगड गये। नवाब के

और गवाह उन से ज्यादा बिगड़े और इन्हीं की गवाही की वजह से, नवाब अपील हार गये। फौजदारी मे मेरी तरफ से जो गवाह पेश किये गये थे, वह सब अकबर अली के बनाये हुए थे, बिल्कुल न बिगड़े।

अकबर अली खाँ की आमदोरफ्त, मेरे मकान पर बहुत ज़माने तक रही। उन्होंने मेरे साथ पूरा हक़, दोस्ती का अदा किया। एक हब्बा तक नही लिया। बल्कि अपने पास से बहुत कुछ सर्फ किया। वाकई उनको मेरे साथ एक किस्म की मुहब्बत थी। मेरा जाती तर्जबा यह है, कि बुरे आदमी भी बिल्कुल बुरे नही होते। किसी न किसी से भले जरूर हो जाते है। अगले ज़माने के चोरो की निस्बत, आप ने सुना होगा, कि जब किसी से दोस्ती कर लेते थे, तो इसका पूरा निबाह करते थे। बगैर किसी पर भलाई के जिन्दगी बसर नही हो सकती। जो शख्स सब से बुरा हो, वह भी किसी का होके रहेगा। जब तक नवाब से मुकद्दमा होता रहा, मैं किसी अजनबी शख्स को अपने पास न आने देती थी। ऐसा न हो, कि उसका भेजा हुआ खुफिया खबर लेने आया हो और किसी तरह से नुकसान पहुँचाये। अकबर अली खाँ कचहरी से पलट के यहीं आते थे। हर चन्द मैंने इसरार किया, कि मकान से खाना मँगाने की क्या ज़रूरत है? मगर उन्होंने न माना। आखिर मजबूर हो के चुप हो रही। मेरे घर के खाने से इन्कार भी न था। मैं भी उन्हीं के साथ खाना खाती थी। इस ज़माने से, मैं भी नमाज़ की पाबन्द हो गई थी। अकबर अली खाँ को ताज़ियादारी से इश्क़ था। रमज़ान और मुहर्रम मे, वह इस कदर नेक काम करते थे, कि जिस से उनको साल भर के गुनाहों से नजात मिल जाती थी। यह सही हो या गलत, मगर उनका ऐसा भरोसा था।

अदालत मे दावा दायर कर दिया, कि मुझ से निकाह है। अजब आफत मे जान फँसी। मुकदमे की पैरवी मे हजारो रुपये सर्फ हुए। अदालत इब्तदाई मे फैसला नवाब साहब के हक मे हुआ। अब मुझे रुपोश होना पड़ा। मुद्दतो छिपी छिपी फिरी। वकील की मार्फत अपील की। अपील मे नवाब साहब हारे। नवाब साहब ने हाईकोर्ट मे अपील की, यहाँ भी हारे। अब नजायज धमकियाँ देना शुरू की, 'मार डालूँगा, नाक काट लूँगा।' इस जमाने मे जान की हिफाजत के लिये मुझको दस बारह आदमी लठ्‌ठ बाज नौकर रखने पडे। जहाँ जाती हूँ आदमी फौलाद के साथ हैं। नाक मे दम हो गया। आखिर मैंने फौजदारी मे मुचलके का दावा किया। गवाहो मे साबित करवा दिया, कि नवाब साहब बेशक जान लेने पर तुले हैं। हाकिम ने नवाब साहब से मुचलका ले लिया। अब जाके जान छूटी। छ बरस तक इन मुकदमो मे फँसी रही। खुदा खुदा कर के नजात हुई।

जिस जमाने मे नवाब साहब से मुकदमा लड रही थी एक साहब अकबर अली खाँ नामी, मुख्तार पेशा, चलते पुर्ज़े, बडे ही आफत के परकाले, नजायज करवाईयो मे मश्शाक, जालसाजी मे उस्ताद, झूठे मुकदमे बनाने मे जमाने मे यकताँ, अदालत को धोखा देने मे एक, मेरी तरफ से पैरोकार थे। इनकी वजह से अदालती कामो मे बहुत मदद मिली। सच तो यह है, कि अगर वह न होते, नवाब से सरबर न होती। अगर्चे सच्चा वाकया यह है, कि नवाब से और मुझ मे निकाह न था। मगर अदालतो मे, अक्सर सच्ची बात के लिये भी झूठे गवाह पेश करना होते है। दूसरे फरीक की तरफ से बिल्कुल झूठा दावा था। लेकिन मुकदमा इस सलीके से बनाया गया था कि कोई सूरत बचने की न थी। निकाह के सबूत मे दो मौलवी पेश किये गये थे, जिनके माथो पर घट्टे पडे, बडे बडे अमामे सिर पर, रवाएं कधो पर, हाथो मे कठे, पाँव मे जूतियाँ। बात बात मे, काल-उल अल्ला काल-उल रसूल। उनकी सूरत देखकर किसी हाकमे-अदालत क्या, किसी नेक नीयत आदमी को झूठ का शुबहा भी नही हो सकता। उनमे से एक हजरत नाक्हे के वकील बने थे और दूसरे मनकूहा के। मगर हक फिर हक है और नाहक, नाहक। जिरह मे बिगड गये। नवाब के

-ोग ग ह उन से ज्यादा बिगडे और उन्ही की गवाही की वजह से, नवाब अपील हार गये । फौजदारी मे मेरी तरफ से जो गवाह पेश किये गये थे, वह सब अकबर अली के बनाये हुए थे बिल्कुल न बिगडे ।

अकबर अली खाँ की ज़ मदोल्पत मेरे मकान पर बहुत जमाने तक रही । उन्होंने मेरे साथ पूरा हक, दोस्ती का अदा किया । एक हब्बा तक नही लिया । बल्कि अपने पास से बहुत कुछ सर्फ किया । वाकई उनको मेरे साथ एक किस्म की मुहब्बत थी । मेरा जाती तजुर्बा यह है, कि बुरे आदमी भी बिल्कुल बुरे नही होते । किसी न किसी से भले जरूर हो जाते है । अगले जमाने के लोगो की निस्बत, आप ने सुना होगा, कि जब किसी से दोस्ती कर लेते थे, तो उसका पूरा निबाह करते थे । बगैर किसी कदर भलाई के ज़िन्दगी बसर नही हो सकती । जो शख्स सब से बुरा हो, वह भी किसी का होके रहेगा । जब तक नवाब से मुकदमा होता रहा, मैं किसी अजनबी शख्स को अपने पास न आने देती थी । ऐसा न हो, कि उसका भेजा हुआ खुफिया खबर लेने आया हो और किसी तरह से नुकसान पहुँचाये । अकबर अली खाँ कचहरी से पलट के यही आते थे । हर चन्द मैंने इसरार किया, कि मकान से खाना मँगाने की क्या जरूरत है ? मगर उन्होने न माना । आख़िर मजबूर हो के चुप हो रही । मेरे घर के खाने से इन्कार भी न था । मैं भी उन्ही के साथ खाना खाती थी । इस जमाने मे, मैं भी नमाज की पावन्द हो गई थी । अकबर अली खाँ को ताजियादारी से इश्क था । रमजान और मुहर्रम मे, वह इस कदर नेक काम करते थे, कि जिस से उनको साल भर के गुनाहो से नजात मिल जाती थी । यह सही हो या गलत, मगर उनका ऐसा भरोसा था ।

रुसवा 'यह मुआमला ईमान का है, इसलिये मुझे इतना कह लेने दीजिये कि यह भरोसा नही है ।'

उमराव जान 'मेरे नजदीक भी ऐसा ही है ।'

रुसवा 'अक्लमदो ने गुनाह की दो किस्मे की है । एक वह, जिनका असर अपनी ही जात तक रहता है और दूसरे वह, जिनका असर दूसरो तक पहुँचता

है। मेरी राय मे, पहली किस्म के गुनाह छोटे और दूसरी किस्म के गुनाह बडे है। अगर्चे और लोगो की राय उसके खिलाफ हो जिन गुनाहो का असर दूसरो तक पहुँचता है, उनकी बख्शिश वही लोग कर सकते हैं, जिन पर इसका बुरा असर पड़ा हो। तुम ने ख्वाजा हाफिज का वह शेर तो सुना होगा,

मै ख़ुरो मसहफ बसोज़ो, आतिश अन्दर काबा ज़न
साकिने बुतखाना बाशो, मरदुम आज़ारी मकुन।'

यानि शराब पी, नमाज़ पढ़ने की चटाई को जला दे, काबे मे आग लगा दे, बुतख़ाने मे पड रह— यह सब कुछ कर मगर मानव को दुःख न पहुँचा। उमराव जान 'याद रखो, मरदुम आज़ारी बहुत ही बुरी चीज़ है, इसकी बख्शिश कहीं नही है, और अगर इसकी बख्शिश हो, तो ख़ुदा की ख़ुदाई बेकार है।'

उमराव जान 'मेरा तो बाल बाल मियाँ का गुनहगार है। मगर इसमे मैं भी काँपती हूँ।'

रुसवा : 'मगर तुम ने दिल बहुत दुखाए होंगे ?'

उमराव जान 'फिर यह तो हमारा पेशा है। इसी दिल की बदौलत तो लाखो रुपए हमने कमाये, हजारो उडाये।'

रुसवा 'फिर इसकी सज़ा क्या होगी ?'

उमराव जान : 'इसकी कोई सजा नही होनी चाहिए। हमने जिस किस्म से दिल दुखाए, उसमे एक तरह की लज्ज़त है, जो इस दिल दुखाने का मुआवज़ा हो जाती है।'

रुसवा 'क्या खूब ?'

उमराव जान फर्ज़ कीजिये, एक साहब ने हम को मेले तमाशे मे देख लिया, मरने लगे। कौडी पास नही। हम बिना लिये मिल नही सकते। इनका दिल दुखता है। फिर इसमे हमारा क्या कुसूर है ? दूसरे साहब हमसे मिलना चाहते है। रुपया भी देते हैं। हम एक और शख्स के पाबन्द है या उनसे मिलना नही चाहते। अपना दिल। इनकी जान पर बनी है। फिर ! हमारी बला

मे । बाज़ साहब हमारे पास इस तरह के आते हैं, जो यह चाहते है कि हम चाहा । हम नहीं चाहते, ज़बरदस्ती है ? इससे उनको सदमा पहुँचता है हमारी ख़ूनी से।'

रुसवा 'यह सब गाली मारने के लायक है। मगर बराए ख़ुदा, कहीं मुझे इनमे से किसी में शुमार न कीजियेगा।'

उमराव जान 'ख़ुदा न करे । आप ख़ुश किस्मती है । न आप किसी को चाहते है न कोई आपको चाहता है। और फिर आप सबको चाहते है और सब आपको।'

रुसवा 'यह क्या कहा ? एक बात है, नहीं भी है । कहीं ऐसा भी हो सकता है ? ?'

उमराव जान 'मैं मन्तक तो ज्यादा पढ़ी नहीं, मगर हो सकता है, जब एक बात के दो पहलू हों। एक चाहना अक्लमन्दी के साथ होता है और एक बेवकूफी के साथ।'

रुसवा 'इसकी मिसाल ?'

उमराव जान 'पहले की मिसाल, जैसे आप मुझ को चाहते है, मैं आपको।'

रुसवा 'ख़ैर, मेरे चाहने का हाल तो मेरा दिल ही जानता है। और आपके चाहने का हाल आपके इक़रार से मालूम हो गया । आगे चलिये दूसरी मिसाल।'

उमराव जान 'ख़ैर नहीं चाहते, तो मेरा बुरा चाहते होंगे । दूसरे की मिसाल सुनिये, जैसे ख़ुदा से फरियाद करना।'

रुसवा 'नहीं, इस मिसाल मे आपने गलती की और कोई मिसाल दीजिय ।'

उमराव जान 'अच्छा जैसे कैस लैला को चाहता था।'

रुसवा 'आप भी क्या दकियानूसी ख्याल ढूँढ के लाई है।

उमराव जान 'अच्छा, जैसे नजीर..'

रुसवा (बात काट के) 'इस मिसाल से मुआफ कीजिये । इस मौका पर मुझ को एक शेर याद आया है, सुन लीजिये,

'क्या कहूँ तुझसे मुहब्बत, वह बला है हमदम,
हमको इबरत न हुई गैर के मर जाने से।'

उमराव जान 'हाँ, वह कलकत्ता वाला मुआमला।'

रुसवा 'इतनी दूर कहाँ पहुँची ? क्या लखनऊ मे ऐसे नही रहते।'

उमराव जान 'दुनिया खाली नही है।'

रुसवा 'हाँ, मैंने सुना था, आप अकबर अली खाँ के घर बैठ गई थीं ?'

उमराव जान 'मुझ से सुन लीजिये। जिस ज़माने मे नवाब छोटी अदालत से जीत गये थे, और मैं रूपोश हुई हूँ, उस ज़माना मे अकबर अली ख़ाँ मुझे अपने मकान ले गए थे। कई बरस रहने का इत्तिफाक हुआ है। इस ज़माना में तीन आदमी इस धोखे मे थे, कि मैं अकबर अली खाँ के घर बैठ गई। एक तो खुद अकबर अली, दूसरे उनकी बीबी, तीसरे का नाम न बताऊँगी।'

रुसवा 'मैं बता दूँ ?'

उमराव जान 'गौहर मिर्ज़ा ?'

रुसवा 'जी नही।'

उमराव जान 'तो फिर और कौन ? बताईये।'

रुसवा 'आप बताईये।'

उमराव जान 'ऐसे फिकरे किसी और को दीजिये।'

रुसवा 'फिकरा कैसा ? मैं भी एक पर्चे पर लिख कर देता हूँ, फिर आप बताइये।'

उमराव जान 'बेहतर।'

रुसवा 'पर्चा लिखकर रख दिया। अब कहिये।'

उमराव जान · 'तीसरे मैं खुद।'

पर्चे मे लिखा था 'आप खुद।'

उमराव जान 'वाह मिर्जा साहब, खूब पहचाना।'

रुसवा 'आपकी इनायत है। हाँ, तो क्या गुज़री ?'

उमराव जान 'गुज़री क्या, सुनिये।—

अव्वल तो उन्होने मुझे एक छोटे से मकान मे ले जाके उतारा, जो उनके

मकान से मिला हुआ था। खिड़की दरम्यान में थी। मुआ कच्चा सा मकान। एक छोटी सी दलनिया, आगे छप्पर, एक और छप्पर सामने पड़ा हुआ। इसमें दो चूल्हे बने हुए। यह क्या है? बावर्ची खाना। और सब खाने भी ऐसे ही समझ लीजिये। इसी मकान में, मैं भी रहूँ और मिर्ज़ा के बेतकल्लुफ दोस्त भी आया करते हैं। इनमें से एक साहब, शेख अफज़ल हुसैन, छूटते ही भौजी कहने लगे। इनके छिछोरेपन ने नाक में दम कर दिया। पानों की फरमाइश से तंग हो गई। हर वक्त, 'भौजी पान न खिलाओगी?

एक दिन, दो दिन, आखिर मुसीबत कहाँ तक? इन्तहा यह, कि पानदान मैंने उनके आगे सरका दिया। उस दिन से मैं खुद, दस्तबरदार हो गई। उन्होंने कब्जा कर लिया, जैसे कोई बाप के माल पर कब्जा करता है। पान इस बद-तमीज़ी से खाते थे, कि देखने वालों को ख्वामख्वाह नफरत हो जाय। कत्थे-चूने की कुलियों में उँगलियाँ पड़ रही हैं। जुबान से चाट रहे हैं। मैंने जब यह करीना देखा, चिकनी के चूरे और इलायची पर बसर करने लगी। इसमें भी वह साझा लगाते थे। एक और साहब वाजद अली नामी, अक्सर खसूसन, खाने के वक्त तशरीफ लाते थे। अब याद नहीं कि अकबर अली खाँ के बिरादर निस्बती थे। इनके मजाक में गाली गलौज हद से ज्यादा था।

इन दोनों साहबों के सिवा, अकबर अली खाँ साहब के बेतकल्लुफ एहबाब बहुत से थे, जिनमें से अक्सर को मुकदमा बाज़ी का शौक था। रात दिन कानून छँटा करता था। मगर जब मिर्ज़ा साहब तशरीफ ले जाते, तो इक ज़रा अमन हो जाती थी।

इस मकान से चन्द रोज़ के बाद मेरी तबीयत हद से ज़्यादा उकता गई। करीब था, कि कहीं और, रहने का बन्दोबस्त करूँ, कि एक दिन ऐसा इत्तिफाक हुआ कि अकबर अली खाँ किसी मुकदमा में फैज़ाबाद गये, और अफजल अली अपने गाँव। इत्तिफाक से मकान में कोई नहीं। दरवाज़े की कुंडी बंद कर ली है। मैं अकेली बैठी हूँ, कि इतने में खिड़की जो जनाने मकान की दीवार में थी, खुली, और अकबर अली खाँ की बीबी अन्दर चली आईं। मुझे ख़ाही नख़ाही सलाम करना पड़ा। अँगनाई में तख्तों का चौका पड़ा था। उसी के पास मेरा

पलँग लगा था । पहले बडी देर तक चुपके खड़ी रही । आख़िर मैंने कहा, 'अल्लाह, बैठ जाइये ।' बारे बैठ गईं ।

मैं 'हम गरीबों पर क्या इनायत थी ? आज इधर कहाँ तशरीफ आईं ?'

बीबी 'तुमको मेरा आना नागवार हो तो चली जाऊँ ।'

मैं 'जी नहीं, आपका घर है । मुझे ऐसा हुक्म हो, तो मुनासिब भी है ।'

बीबी 'लो, बातें न बनाओ । अगर मेरा घर है, तो तुम्हारा भी घर है । और सच पूछो, तो न मेरा न तुम्हारा । घर तो घर वाले का है ।'

मैं 'जी नही ! ख़ुदा रखे आपके घर वाले को । उनका भी है, और आपका भी ।'

बीबी 'तुम अकेली बैठी रहती हो । आख़िर हम भी आदमी हैं । उधर क्यों नहीं चली आती । हाँ, मियाँ का हुक्म न होगा ।'

मैं 'मियाँ के हुक्म की तो कुछ ऐसी ताबे नही हूँ । हाँ, आपकी इजाज़त की ज़रूरत थी, वह हासिल हो गई । अब हाज़िर हूँगी ।'

बीबी 'अच्छा, तो चलो ।'

मैं 'चलिये ।'

मकान में जा के जो देखती हूँ ख़ुदा का दिया सब कुछ था । ताँबे के मटके, देग, गगरे, पतीलियाँ, लोटे, निवाड के पलँग, मसहरी, तख़्तों की चौकियाँ, फ़र्श फरूश, मगर किसी बात का करीना नही । अँगनाई में जा बजा कूडा पडा हुआ, बावरची ख़ाने में, सामने बुआ अमीरन खाना पका रही हैं, मक्खियाँ भिन-भिन कर रही हैं । तख़्तों के चौके पर पीक के चकत्ते पडे हुए । बीबी के पलँग पर मनो कूडा । इमामन ने पानदान ला के बीबी के सामने रख दिया । कत्थे चूने के धब्बों में सारा पानदान छिपा हुआ था । देख के, मेरा तो जी मालिश करने लगा ।

बीबी ने पान लगा के दिया । मैंने चुटकी में दबा लिया । बातें करने लगी । इसी बीच, मुहल्ले की एक बुढिया आ निकली । ज़मीन पर फसकडा मार के बैठ गई । बीबी से मेरी तरफ इशारा करके पूछा, 'यह कौन हैं ?'

बीबी 'अब तुम्हें क्या बताऊँ ?'

मैं चुपकी रही और बुढ़िया अकबर अली खाँ की बीबी से बोली 'हुई ! जैसे मैं जानती नहीं।

मैं 'बड़ी बी ! फिर जानती हो तो क्यों पूछा था ?'

बुढ़िया 'ऐ बी ! तुमसे मैं बात नहीं करती। मैं तो अपनी बहू साहब से पूछती हूँ। मेरा मुँह तुमसे बात करने के लायक नहीं। तुम बड़ी आदमी हो।'

मैं बुढ़िया का मुँह देख के चुप हो रही।

बीबी 'ऐ, बुढ़िया ! ज़रा सी बात में झाड़ का काँटा हो गई ?'

बुढ़िया (बीबी से) 'तुम तो इस तरह बात छिपाती हो, और हम दुश्मन हैं। ए हम तो इनकी भलाई के लिए बात करते हैं। यह हमीं से उलटे बिगड़ती हैं।'

बीबी 'ले बस, अपनी खैर ख्वाही रहने दो बुआ। तुम किसी के घर की इजारेदार हो।'

बुढ़िया 'हमारा इजारा क्या होने लगा। अब जो नई नई आती जायेगी, उनका इजारा होता जायेगा।'

बुढ़िया की इस बात पर मुझे बेसाख्ता हँसी आ गई। मुँह फेर के हँसने लगी।

बीबी 'क्यों नहीं। ए तुम मेरी सौत हो (मेरी तरफ मुखातिब होके) ले सुन लो, खाँ साहब की पहली बीबी यही हैं। बीबी, तुम असल में इनकी सौत हो। मैं तो इनके बाद आई हूँ।'

बुढ़िया 'हो, अपने होतों सोतों की, मुझे यह बातें अच्छी नहीं लगती। मुँह दर मुँह गालियाँ देती हो। मुई कस्बियों, खानगियों की सोहबत में और क्या सीखोगी ? यही तो सीखोगी। लो, इतने दिन मुझे आये हुए, बड़ी बेगम साहबा (अकबर अली खाँ की वालिदा) ने आधी बात मुझे नहीं कही। बहू साहब गुनवती ऐसी हैं, कि मुहल्ले की बुढ़ियों को गालियाँ देती हैं।'

बीबी (गुस्सा होकर) 'मैंने तुमसे कह दिया लुड्डन की माँ, तुम आज से मेरे पास न आना। वहीं बड़ी बेगम साहबा के पास जा के बैठा करो।

मुझे बहुत गुस्सा था, मगर मैंने देखा, कि बेतुकी औरत है, इसके मुँह कौन लगे ? ज़ब्त करके चुपकी हो रही।

बुढिया 'हमारी बला आती है।'

बीबी 'मुई की शामत आई है। यह बला बग्मा क्या बक रही है ?

बुढिया 'तो क्या तुम्हारे दबैल हैं। कुछ किसी के लेने देने मे नही, घडी भर निकल आये थे। तुम हमसे, हम तुमसे बाते करते थे। न आयेंगे।'

बीबी 'हरगिज़ न आना।'

बुढिया 'इस ज़िद पर तो ज़रूर आये। देखे तो, तुम हमारा क्या बनाती हो।'

बीबी 'आओगी तो इतनी जूतियाँ लगायेंगी, कि सिर मे एक बाल भी न रहेगा।'

बुढिया 'क्या ताकत, क्या मजाल, जूतियाँ मारेंगी, बेचारी ?'

बीबी 'ले, उठो, यहाँ से टलो, नही तो लेती हूँ हाथ मे जूती।'

बुढिया (ठट्ठा लगा के) 'आज तो हम जूतियाँ खा के ही जायेंगे, मारो। बडे बाप की बेटी हो।'

बाप के नाम पर बीबी को गुस्सा आ गया। चेहरा सुर्ख हो गया। थर थर काँपने लगी।

बीबी 'दूर हो यहाँ से, कहती हूँ।'

बुढिया 'अब तो हम जूतियाँ खा के ही जायेंगे।'

बीबी (मुझसे मुखातिब होके) 'देखो यह मुझे ज़िद दिला रही है। बिन मारे मुई को न छोड़ूँगी।'

मैं 'बेगम ! जाने भी दीजिये। मुई बेतुकी है।'

बुढिया (मुझ से) 'तू कुछ न बोलना, मालज़ादी। तुझे तो कच्चा ही खा जाऊँगी।'

बीबी (जूती पैर से लेकर) 'एक, दो, तीन—अब राज़ी हुई ?'

मैं (हाथ से जूती छीन ली) 'बेगम, जाने दीजिये।

बीबी 'नही, तुम न बोलो। मुई का कचूमर निकाल डालूँगी।

बुढ़िया 'और मारो।'

बीवी ने दूसरे दिन से दूनी उना का पाँच जूते और लगाये। अब तो बुढ़िया ने ज़मीन पर पाँव फैला दिये और ज़मीन पर दोहत्तड़ मारना शुरू किये, 'हैं हैं! हैं हैं, मुझे जूतियाँ मारीं। अब तो दिल ठंडा हुआ। सौत की जलन मुझ पर उतारी, हाय मारा। हाय मारा। चिल्ला चिल्ला के दुहाई देना शुरू की। बावर्चीख़ाने से बुआ अमीरन उठ के दौड़ीं। इधर बेगम साहबा अपने दालान से चली आईं। एक आफ़त बरपा हो गई। इधर बेगम साहबा को आते देखकर और भी दोहत्तड़ मारना शुरू किये, इस बुढ़ापे में मुझे जूतियाँ खिलवाईं।'

बेगम साहबा 'ऐ मुझे क्या मालूम, कि तुम पर जूते पड़ रहे हैं नहीं तो आके बचा लेती। आख़िर बात क्या हुई?'

बुढ़िया (मेरी तरफ़ इशारा करके) 'इस मलजादी ने मार खिलवाई। अरे इसने मार खिलवाई।'

मैं ठगमारी सी हो गई। बेगम साहबा से मुझसे उस बात सामना हुआ। कुछ कहते नहीं बन पड़ता।

बीवी 'फिर इनका नाम लिये जाती है?'

बुढ़िया 'हम तो नाम लेंगे। तुम क्या करती हो?'

बेगम साहबा 'आख़िर हुआ क्या था?'

बुढ़िया मुझ निगोडी ने इतना पूछा, कि यह कौन है? ले भला, क्या गुनाह किया?'

बीवी 'तुम तो कहती थी मैं जानती हूँ। फिर पूछने से क्या मतलब?'

बुढ़िया 'क्या मतलब था? अच्छा मतलब बता दूँगी, तो सही। जो अपना एवज़ न ले लूँ। तुम ने मारा तो है?'

बेगम साहबा 'चल शफतल, तू क्या बदला लेगी। ज़रा किसी भुलावे पर न भूलना।

बुढ़िया 'मैं तुम से कुछ नहीं कहती। तुम जो चाहे कह लो, तुम्हारा हक है।"

बेगम साहबा 'तेरे वाली की ऐसी तैसी, निकल यहाँ से।'

बुढ़िया 'लो यह भी निकालती हुई आईं। अच्छा जाते हैं।'

यह कह के बुढ़िया उठ खड़ी हुई। लहँगा झाड़ झूड, बुड़बुडाती हुई, 'बडी आईं निकालने वाली! जाते हैं, जाते हैं। देखें तो, क्योंकर नही आने देती?'

बेगम साहबा (बहू से) 'आखिर तुम इस मुई चुड़ैल के मुँह क्यो लगी?'

बीबी 'अम्माँ जान! आपके सिर की कसम, मैंने तो कुछ भी नही कहा। वह तो, आप ही जैसे कोई कड़ी खाट पर से सो के आई थी। सैकड़ो बाते तो इन बेचारी को सुना के रख दी।'

बेगम साहबा, मेरे जिक्र पर, कुछ नाक भी चढा के चुपकी हो गईं। मुझको इस बुढ़िया की बात तो नागवार नही हुई, क्योंकि मैं उसे दीवाना समझे हुए थी मगर हाँ बेगम साहबा की बेएतनाई से सख्त सदमा हुआ। वह अभी वही खडी थी, कि मैं उठ के खिडकी के पास चली आई और अपने मकान मे आन बैठी।

बेगम साहबा (मेरे चले आने के बाद, बहू से) 'ओहो बेटा! तुमने बुढिया निगोडी को ख्वामखाह पीट डाला और फिर मुई एक शफतल बाजारी के लिये। आखिर तुम्हे उसकी परचक लेना क्या जरूरी थी?'

अमीरन 'अच्छा उसको जाने दीजिये, जैसी उसने बदजबानी की थी, अपनी सजा को पहुँची। यह पूछिये कि कस्बी खानगियो से मेल-जोल कैसा? और वह भी वह, जिससे मियाँ से आशनाई हो। अभी वह लाके सिर पर बिठा देते, तो कैसी मलामत डालती और खुद फर्ज करके, जा के बुला लाईं।'

बेगम साहबा (अमीरन से) 'उसकी मजाल थी, घर मे ले आता। हम नही बैठे हैं? बाहर जिसका जी चाहे आये, घर मे किसी का क्या काम है? ऐ लो, उनसे (अकबर अली खाँ के बाप) बरसो हुसैन बाँदी से मुलाकात रही। उसने कैसी मिन्नते की, मैंने नही हामी भरी। बुआ अमीरन, मैं यह सोची, कि आज को महमान तरीक खडी-खडी चली आयेगी, कल मियाँ घर मे बिठा लेगे, तो यह छाती पर मूँग कौन दलवायेगा? अपनी पत अपने हाथ है। यह आजकल की लडकियो को अपने आगम-अन्देशे का ख्याल नही।'

अमीरन 'सच है बेगम साहबा ! अक्सर तो मुँडेर पर बैठने वालों का घर गिरस्तियों मे नाम ही क्या है ? हमारे लोग कहते थे, एक बार मर्द को घर मे बुला ले, मगर इन औरतों को न बुलाये।'

बेगम साहबा 'बुआ ! यह है कि मर्द अगर आया भी जायेगा तो क्या वह औरतो मे घुस के बैठेगा। कल ही की बात है, फसाद के दिनो मे, बरसो हुसैन खाँ हमारे घर मे छिपे रहे। फिर बुआ एक घर का रहना सहना। मगर मजाल है, उन्होंने मेरा आँचल तक देखा हो, बात सुनी हो। दिन दिन भर मेहनती मे घुटी बैठी रहती थी। मामा अनीसों से इशारों मे बाते करती थी।'

अमीरन 'एक तो यह, कि तुम गैरत की जाने वाली बीबी की साहबजादी। जब ऐसों के पास बैठोगी, वहाँ तक बचाव होगा। कही उसने कत्थे चूने की कुल्हिया मे हाथ डाल दिया। तुम्हारी आँख बचा के कटोरी मे पानी पी लिया। दूसरी मुई टकाहियाँ, उनका एतबार क्या ? सैकड़ो आर्जे मे भरी होती है। इनकी तो परछाइयों से बचना चाहिये।'

बेगम साहबा 'एक बात। सभी बातो का बरतो होना चाहिये। परछाँवाँ, बाँधन, टोने टोटके, बुआ कौन कहे, इनको तो समझ नही, और जो कुछ खिला ही दे। मिर्जा मुहम्मद अली की बहू को सौत ने जोंक खिला दी। दीनो-दुनिया से जाती रही, न आस की न औलाद की।'

अमीरन 'जी हाँ। ए लो, क्या मैं जानती नही ?'

बेगम साहबा 'बुआ, यह सौतापे का रिश्ता ऐसा है कि इसमे अलग थलग रहने पर भी जान नही बचती। मुझी को देखो। उस मुई टके की कहारी ने कोई बात उठा रखी, दुआ, तावीज, गडे, कैसे कैसे नक्श मेरे सिराहने से निकलते थे।'

अमीरन 'फिर उसको अपने घर मे क्यो आने दिया ?'

बेगम साहबा 'ए बुआ ! नौकर थी। मैं क्या जानती थी, कि उससे मियाँ से लग्गा सग्गा है ? जिस दिन मालूम हो गया, मैंने खडे-खडे निकाल दिया।'

अमीरन 'मगर बेगम ! एक बात कहूँ, खुदा लगती। आपकी खिदमत बहुत की।'

बेगम साहबा 'यह खूब कही मिर्ज़ा को छीना था। अब क्या इसमें भी गई गुज़री। इस बुढ़िया को क्या समझती हो? उसमें भी, किसी ज़माने में, मिर्ज़ा से थी।'

अमीरन (कहकहा लगा कर) 'नहीं बेगम साहबा।'

बेगम साहबा 'क्या मैं झूठ कहूँगी? जब ही तो वह दोहराती थी, कि अपना एवज़ ले लूँगी।'

अमीरन 'वह साहब! तो फिर आपको नहीं चाहिए था। सुसरे की हरम को इतनी जूतियाँ . . .'

बेगम साहबा 'अुआ! इन लोगों को यह लिहाज़ कहाँ? सच कहूँ मुझे भी यह बात नागवार हुई। उनके मुँह पर कहती हूँ, आज को मुई टकहाई के चलते सुसरे की हरम के जूतियाँ मारी। कल सास को मारेंगी।'

अमीरन 'नहीं, ख़ुदा न करे। मगर हाँ, बात कहने ही में आती है।'

इन दोनों बुढ़ियों ने, वह साहब बेचारी को, ऐसे कौंचे दिये, कि आख़िर बेचारी चीख़ें मार मार के रोने लगी। मेरा यह हाल था, कि अँगारों पर लोट रही थी। जी चाहता था कि दोनों बुढ़ियों का मुँह नोच लूँ।

रुसवा 'हाय हाय! यह गुस्सा?

रोकियेगा ज़रा तबीयत को,
कहीं ऐसा न हो कि ख़िफ़्फ़त हो?'

उमराव जान 'मिर्ज़ा साहब! गुस्से की बात ही थी। एक इन्सान को इतना ज़लील समझना, इन्सानियत से दूर है।'

रुसवा 'मेरे नज़दीक तो कोई बात न थी, जिस पर आपको इतना गुस्सा आया। वह दोनों बुढ़ियाँ सच कहती थीं। और लुड्डन की माँ भी बेचारी नाहक पिटी। सच तो यूँ है, कि नाहक अब आप चाहे बुरा मानें, चाहे भला।'

उमराव जान 'वाह मिर्ज़ा साहब, आप ख़ूब इंसाफ करते हैं।'

रुसवा 'जी हाँ मेरे नज़दीक इन्साफ यही है। इस मुआमला में, आप भी एक हद तक बेक़ुसूर थीं। सारा कुसूर अकबर अली की बीवी का था।'

उमराव जान 'उन बेचारी का क्या कुसूर था?'

रुसवा 'ऐसा हुआ था, कि अगर मेरी बीवी ऐसा करती, तो फौरन डोली मँगवा के मैके भिजवा देता और छः महीने तक सूरत न देखता। अच्छा एक बात पूछते है, अकबर अली खाँ ने जब यह वाकया सुनी तो क्या कहा ?'

उमराव जान 'लुट्टन की मा पर खूब चीखे, खूब चिल्लाये। कह दिया, खबरदार ! यह डायन हमारे घर न आने पाये। कई महीने तक उनका आना जाना मौकूफ रहा। जब बड़े खान साहब आये, तो वह फिर आने लगी। यह किस्सा उनके आगे छेड़ा गया, वह उल्टे अकबर अली खाँ की बीवी पर खफा हुए।'

रुसवा 'बुड्ढे की अक्ल नही थी ?'

उमराव जान 'नही थी या सठिया गये थे, जरा लुड्डन की माँ, पाँव दबा दिया करती थी। उसी ने उनको परचका लेते थे। क्यो न परचक लेते, लुड्डन की माँ उनकी पुरानी आशना थी।'

रुसवा 'फिर आप ही कायल होइये। यह ऐन वजादारी थी। अच्छा, अब एक बात और बता दीजिये। लुट्टन की माँ जवानी मे कोई रडी थी, या घर गिरस्त ? और बुआ अमीरन कौन थी ?'

उमराव जान 'लुट्डन की माँ मुई घनेली थी। जवानी मे खराब हो गई थी। बुआ अमीरन एक देहानी औरत थी, उनका मकान सडीला के ज़िला मे था। एक जवान बेटा था। वह भी बडे खाँ साहब के पास नौकर था। एक लडकी थी, वह कही बाहर व्याही हुई थी।'

रुसवा 'बुआ अमीरन से और बडे खान साहब से तो कोई ताल्लुक न था ?'

उमराव जान 'ना, खुदा को जवाब देना है। अमीरन वडी नेक औरत थी। सारा मुहल्ला कहता था, कि वह जवानी मे राँड होकर यहाँ नौकरी को आई थी। उस दिन से किसी ने उसको वद राह नही देखा।'

रुसवा 'पूरे वाकयात, आप के वयान से मुझको मालूम हो गये। अब पूछिये, आप क्या पूछती है ?'

उमराव जान 'तो क्या, कोई मुकदमा, आप फैसला करने बैठे हैं ?'

रुसवा 'बहुत बड़ा मुक़दमा।'

'बात यह है कि औरतें तीन किस्म की होती हैं (१) नेक बख़्तें (२) ख़राबें (३) बाज़ारियाँ। और दूसरी किस्म की औरतें भी दो तरह की होती हैं। एक तो वह, जो चोरी छिपे ऐब करती हैं। दूसरी वह, जो खुल्लमखुल्ला बदकारी पर उतारू हो जाती है। नेक बख़्तों के साथ, सिर्फ वही औरतें मिल सकती हैं, जो बदनाम न हो गई हों। क्या तुम्हें इतनी समझ नहीं है, कि वह बेचारियाँ जो तमाम उम्र चार दीवारियों में क़ैद रहती हैं, हजारों किस्म की मुसीबतें उठाती हैं। अच्छे वक्त के तो सब साथी होते हैं, मगर बुरे वक्त में, सिर्फ यही बेचारियाँ साथ देती हैं।

जिस जमाना में इनके शौहर जवान होते हैं, दौलत पास होती है, तो अक्सर बाहर वालियाँ मजे उडाती हैं। मगर मुफलिसी और बुढ़ापे के ज़माने में कोई पुरसाने हाल नहीं होता। इन वक्तों में, वही तरह-तरह की तकलीफें उठाती हैं और बुरों की जान को सब्र करती हैं। फिर क्या उन्हें इसका कोई फख्र न होगा? यही फख्र इसका बाइस होता है, कि वह खराब औरतों को बहुत ही बुरी निगाह से देखती हैं। इन्तहा का ज़लील समझती हैं। तोबा में, खुदा गुनाह मुआफ कर देता है, मगर यह औरतें कभी मुआफ नहीं करतीं। दूसरी बात यह है, कि अक्सर देखा गया है, कि घर की औरत कैसी खूबसूरत, खूबसीरत और खुशसलीका क्यों न हो, बेवकूफ मर्द, बाजारियों पर, जो उनसे, सूरत और दूसरी सिफतों में बदरजहा बुरी हैं, फरेफ्ता होकर उन्हें आरज़ी तौर से या उम्र भर के लिये छोड़ देते हैं। इसलिये उनको गुमान क्या, बल्कि यक़ीन है कि यह किसी न किसी किस्म का जादू टोना ऐसा कर देती हैं जिससे मर्द की अक्ल में फतूर आ जाता है। यह भी उनकी एक किस्म की नेकी है, इसलिये कि वह इस हाल में अपने मर्दों को इल्ज़ाम नहीं देतीं, बल्कि बदकार औरतों को ही मुजरिम ठहराती हैं। इससे ज्यादा उनकी मुहब्बत की, और क्या दलील हो सकती है?'

उमराव जान 'यह तो सब सही है, मगर मर्द क्यों ऐसे बेवकूफ बन जाते हैं?'

रुसवा 'इसकी वजह यह है कि इन्सान के मिजाज मे जिद्दतपसन्दी है। एक हालत मे जिन्दगी बसर करने से, ख्वाह वह कैसा ही अच्छा क्यो न हो, तबीयत उकता जाती है। वह चाहता है कि किसी न किसी तरह की अदल बदल उसकी जिन्दगी मे पैदा हो। बाजारियो के साथ मेल जोल पैदा करने मे एक किस्म की नई लज्जत मिलती है जो कभी उसके ख्याल मे न थी। यहाँ भी वह एक ही की जान पहचान पर बस नही करता, बल्कि नये नयो की तलाश मे, रोज नये कमरो पर पहुँचता है और नये घर देखता फिरता है।'

उमराव जान - 'मगर सब मर्द ऐसे नही है।'

रुसवा 'हाँ। इसकी वजह यह है, कि मेलजोल के कानून ने उस मर्द को बुरा बनाया है। जो शख्स ऐसा करते है, उसके अजीज, रिश्तेदार, दोस्त, अहबाब बुरा भला कहते है। उन लोगो से अक्सर जुरअत नही होती। मगर जब बुरे दोस्तो की सोहबत मे बैठने का इत्तिफाक होता है, वह तरह तरह की लज्जतो का जिक्र कर के, एक अजीब किस्म का शौक, उसकी तबीयत मे पैदा कर देते है। इसलिये, वह खौफ उसके दिल से निकल जाता है। आपको इस बात का अच्छी तरह अन्दाज हुआ होगा, कि जो लोग पहले पहल रडी के मकान पर जाते है, उनको राज़ छिपाने का किस कदर ख्याल होता है। कोई देखता न हो, कोई सुन न ले। दो आदमियो के सामने बोलने का क्या जिक्र, अकेले मे भी मुँह से बात नही निकलती। मगर रफ्ता रफ्ता यह हालत तो बिलकुल जायल हो जाती है। खुलासा यह, कि चन्द ही रोज़ मे, पूरे बेगैरत हो जाया करते है। फिर क्या है? दिन दिहाडे भरे चौक, रडियो के कमरे पर, खट से चढ जाते है। गाडी मे खिडकियाँ खोल के, साथ बैठकर सैर करना, हाथ मे हाथ लेके, मेले तमाशो मे लिये फिरना, इन सब बातो को बाइसे फख्र समझने लगते है।

उमराव जान 'यह तो सही है, मगर शहरो मे इन बातो को चन्द मायूब नही समझते।

रुसवा 'खसूसन दिल्ली और लखनऊ मे। यही इन शहरो की तबाही और बरबादी का बाइस हुआ। देहात और कस्बात मे, ऐसे शरीर लोगो की

सोहवत कम मिलती है, जो नौजवानो को इन वदकारियो पर आमादा करें। दूसरे, व ी की रण्डियो को इस कदर ओहदे हासिल नहीं है, इसलिये कि वह रईसो और जमीदारो की ही पावन्द होती हैं और वहुत डरती है। और क्योकि उनकी रोजी वल्कि ज़िन्दगी उनके हाथ मे है। इसलिये उनकी औलाद मे वहुत चोरी छिपे मिलती है। और शहरों मे तो आजादी है, कौन दवाव मानता है? इसी का यह नतीजा है।'

उमराव जान 'मगर देहाती जव विगडते हैं, तो हद से ज्यादा विगड जाते हैं। मसलन, मियाँ इरशाद अली खाँ का वाकया आप सुन चुके है।'

रुसवा . 'उसका यह सवव है, कि वह इन लज्जतो से विल्कुल नावलद होते हैं। जव उनको इसका चस्का पडता है, तो वह उसकी हद से ज्यादा कद्र करते हैं और अहले-शहर कुछ न कुछ अगाह होते हैं, और इसलिये इनको ज्यादा शौक़ नही होता।

# बीस

रुसवा 'हाँ ! वह आपकी नोची क्या हुई ? ए, है, भला सा नाम है ।'

उमराव जान 'आबादी ।'

रुसवा 'आबादी की सूरत तो अच्छी थी । मैंने उस वक्त देखा था, जब उसका सिन बारह बरस का था । जवानी मे तो और निखर गई होगी ।'

उमराव जान 'मिर्ज़ा साहब ! आपको खूब याद है ।'

रुसवा 'याद को क्या चाहिये, वाकई मे वह बहुत कतादर औरत होगी । हम भी इसी नज़र से देखते थे, कि कभी तो जवान होगी ।'

उमराव जान 'तो यह कहिये, आपभी थी आबादी के उम्मीदवारो मे थे ।'

रुसवा 'सुनो उमराव जान ! मेरी एक बात याद रखना । जहाँ कोई हसीन औरत नज़र पडे, मुझे ज़रूर याद कर लेना । अगर मुमकिन हो, तो उम्मीदवारो मे नाम लिखवा देना और जो खुदा-न-ख़ास्ता मैं मर जाऊँ, तो मेरे नाम पर फातिहा दे देना ।

उमराव जान . 'और अगर कोई मर्द हसीन नज़र आवे, तो ?'

रुसवा 'अपना नाम उम्मीवारो मे, और मेरा नाम उसकी बहन के उम्मीदवारो मे लिखवा देना, बशर्ते कि ऐसा मज़हब मे मना हो ।'

उमराव जान · 'क्या खूब ! मज़हब को कहाँ दखल दिया है ।'

रुसवा 'मज़हब का दखल कहाँ नही है । खसूसन हमारा मजहब, जिसमे कोई फरोगुज़ास्त नही की गई ।

उमराव जान 'सीधी सी एक बात क्यो नही कह देते,

'शरअन तो जानते है, उरफन दुरुस्त है'

रुसवा 'यह और मौको पर कहा जाता है। उमराव जान, मेरी जिन्दगी का एक उसूल है। नेक बख्त औरत को, मैं अपनी माँ बहन के बराबर समझता हूँ। ख्वाह वह किसी कौम और मिल्लत की क्यो न हो, और ऐसी हालत मे मुझे सख्त सदमा पहुँचता है। जो लोग उसकी पारसाई मे खलल अन्दाज हो, जो लोग उनको वरगलाने और बदकार बनाने की कोशिश करते हैं, मेरी राय मे, काबिल गोली मार देने के है। मगर फैयाज औरतो के फैज़ मे फायदा उठाना मेरे नजदीक कोई गुनाह नही।'

उमराव जान सुभान अल्लाह।'

रुसवा 'खैर इस फजूल बात को रहने दीजिये। आबादी जान का हाल कहिये।'

उमराव जान 'मिर्ज़ा साहब! अगर आप उनको जवानी के आलम मे देखते तो यह शेर आपकी जबान पर होता —

जवाँ होते ही वह तो और ही कुछ हो गये ऐ दिल,
कहाँ की पाकबाजी, हम भी अब नीयत बदलते हैं।

जवाँ होके उसने वह सूरत निकाली थी, कि सौ पचास रडियो मे एक थी।'

रुसवा 'अब क्या हुई, खुद के लिये जल्दी कहिये। आखिर क्या आफत हुई, जो आप ऐसी मायूसी के कलमात कहती हैं ?'

उमराव जान 'हम से गई, जहान से गई।'

रुसवा 'आखिर अब है कहाँ ?'

उमराव जान 'अस्पताल मे है और कहाँ है ?'

रुसवा : 'यह कहिये जवानी ने गुल खिलाया।'

उमराव जान 'जी, माशा अल्ला खूब फूली फली। सूरत बिगड गई। रगत उल्टा तवा हो गई। गरजकि सत्तर करम हो गये। अब जान के लाले पडे है।'

रुसवा 'यह हुआ क्या था ?'

उमराव जान : 'ए होना क्या था, मूई लौंडे घेरी, सिफली, छिछोरी! मैंने

तो बहुत चाहा कि आदमी बने, मगर न बनी। मैंने क्या नहीं किया ? उस्ताद जी को नौकर रखा। तालीम देना शुरू किया। मगर उसका दीदा ऐसी बातों में कब लगता था। जब वे जवान हुई मैंने कमरा अलहदा कर दिया था। शहर के चन्द जान जरीफ आ के बैठने लगे। दिन रात गालम गलौच, धौंगा मुश्ती, जूतम जाता। एक तूफान बरपा रहती थी। नाक में दम हो गया था। किसी पर बन्द नहीं, जो आया आन्द। मैंने मारा पीटा, समझाया। मगर वह कब सुनती थी। बचपने ही में उसकी निगाह बद थी। इस जमाने में बुआ हुसैनी का नवासा जुम्मन आया करता था। उस से खेला करती थी। मैंने यह ख्याल किया, बच्चा है, खेलने दो। आखिर कुछ ऐसी बातें आँख से देखी, कि जुम्मन की आमदोरफ्त मौकूफ हुई। एक साहब मेरे पास तशरीफ लाया करते थे। जरा खुश गुलू थे। मैं गवाया करती थी। उनसे छेड़ छाड़ शुरू की। वह शरीफ खानदान तो थे, मगर तबीयत पाजी थी। न मेरा लिहाज किया, न अपनी हैसियत देखी। एक दिन सरेशाम क्या देखती हूँ, ड्योढ़ी में, बी आबादी से बातें हो रही हैं।

छुट्टन साहब 'अरी मैं तो तेरी सूरत का आशिक हूँ। हाय आबादी, क्या करूँ, उमराव जान से डरता हूँ।'

आबादी 'हटो, ऐसी बातें मुझ से न किया करो। डर काहे का ?

छुट्टन ने आबादी के गले में हाथ डाल दिया। 'जालिम! क्या प्यारी प्यारी सूरत है ?'

आबादी 'फिर तुम्हे क्या ?'

छुट्टन (एक बोसा लेकर) 'हमें क्या ? जान जाती है। मरते हैं।'

आबादी 'मुए चार आने तो दिये नहीं जाते, मरते है। मियाँ मरते सब को देखा, जनाजा किसी का भी नहीं देखा ?'

छुट्टन 'चार आने! जान हाज़िर है।'

आबादी 'निगोड़ी जान ले के, मैं क्या करूँगी।'

छुट्टन 'लो, हमारी जान किसी काम की ही नहीं।'

आबादी 'लो, अब बातें न बनाओ। चवन्नी जेब में पड़ी हो तो देते जाओ।'

छुट्टन 'वल्लाह ! अम्माँ की तनख्वाह नही बँटी। परसो ज़रूर ले आऊँगा।'

छुट्टन 'अच्छा तो एक बोसा तो और दे दो।'

आबादी को छुट्टन ने गले लगाया। आबादी ने उसकी जेब मे हाथ डाला। कही इत्तिफाक से तीन पैसे जेब मे पडे हुए थे, निकाल लिये।'

छुट्टन 'तुम्हे हमारे सिर की कसम, यह पैसे न लेना। बाजी ने रग की पुडियाँ और मिस्सी मँगाई है।'

आबादी 'तुम्हारे सिर की कसम, मै तो न दूँगी।'

छुट्टन 'आखिर क्या करोगी ? परसो चव्वनी ले लेना।'

आबादी 'वाह ! खागीना लेगे।

छुट्टन 'तीन पैसे का खागीना ? अच्छा एक पैसा लेलो।'

आबादी . 'तीन पैसे का खागीना कुछ बहुत हुआ ? निगोडा बहुत दिन से जी चाहता है। बीबी लेने नही देती। कहती हैं, पेट मे दर्द होगा। मैं तो एक दिन छिपा के, एक आने का खागीना खा गई। कुछ भी नही हुआ।

मैंने दिल मे कहा, क्यो न हो, मुई काल की मारी, पेटू। हम तो ज़रा भी खा ले, तो बदहज़मी हो जाय।'

रुसवा 'क्या इसे अकाल मे लिया था।'

उमराव जान 'जी हाँ ! रुपया को माँ बेच गई थी। तीन दिन की फाके से थी, मैंने रोटी खिलाई और एक रुपया दिया। मिर्ज़ा साहब मुझे बडा तरस मालूम हुआ। मैंने तो कहा था, मेरे पास रह, मगर न रही।

रुसवा 'कमबख्त फिर भी कभी आई थी ?'

उमराव जान 'जी कई दफा आई। लडकी को देख के बहुत खुश हुई, मुझको दुआयें देती थी। साल मे दो एक मर्तबा आ जाया करती थी। मुझ से जो कुछ हो सकता, सलूक करती थी। अब कई बरस से नही आई। खुदा जाने मर गई, या जीती है।'

रुसवा 'ज़ात क्या थी ?'

उमराव जान 'पासन।'

रुसवा 'अच्छा तो वह किस्सा तो रह ही गया। छुट्टन ने चव्वनी दी या

नही दी ?'

उमराव जान 'मेरी जाने बला । उन के जाने बाद मैंने मुई को खूब कुचला । ऐसे तीन के तीन मैं उजाड़ दिये ।

मेरे कमरे के बराबर एक और छोटा सा कमरा था, कोई दो रुपये महीना किराया था । उसमें एक रंडी आके रही थी । हसना । चढ़ती जवान थी । उसकी और आबादी की पटरी खूब मिली । दिन भर वहीं बैठी रहा करती थी । सारी करतूतें हसना की, उसने अख्तियार कर लीं ।'

जैसी वह रंडी थी, वैसे ही उसके चाहनेवाले । कोई पाव भर पूरियाँ तेल की लिए चला आता है । दूसरा पचास पान, दो चार पैसा के लेता आया । किसी से दो गज नैनसुख की फरमाइश है । किसी से मखमली बूट की फरमाइश है । मेले तमाशे में दो चार गुर्गे साथ हैं । सब के सब नाके दार कुर्ते या अँगरखे, कोई धोती में है, कोई चुस्त पायजामा डाटे है । सर पर पट्टे हैं गले में हार पड़े हुए । बी हसना, ठुमक ठुमक उनके साथ चल रही है । फिरन वाली सराय में एक बोतल ठर्रे की उड़ी । वहाँ से चले तो सूरते भामते लड़खड़ाते, नाचते गाते । बी हसना, अभी उसकी बगल में थीं अभी उसके गले में हाथ । सरे राह गालम गलौच, नोचम खसोट, जूतम जाता हो रहा है । उस हालत में दो एक तो रास्ते ही में गिर पड़े । तीन चार मेले तक पहुँचे, वहाँ चरस पर दम पड़े । इनमें से जो कोई होशियार हुआ, उसने बी हसना को गाँठ लिया । और यारो को धता बताई, अपने घर ले गया । या उन्हीं के कमरे पर आ के ठहरा । और यार जब मेले से पलट के आए, कमरे के नीचे खड़े चीख रहे हैं, या गालियाँ दे रहे हैं और ढेले मार रहे हैं । बी हसना अव्वल तो कमरे में नहीं, और हैं भी, तो बोले क्यो ? इतने में कोई सिपाही चला आया । उसने मजमा खिलाफ को हटाया । सब अपने अपने घर को चले गए ।

बस, यही अन्दाज़ आबादी भी चाहती थी । भला मैं इसकी कब रवादार होती । आखिर हुसैन अली के साथ, मेरे पास एक नवाब साहब आया करते थे, उनके खिदमतगार का नाम था, निकल गई । उसके घर जा के बैठ रही । वहाँ उसकी जोरू ने कयामत बरपा की, घर से निकल गई । मियाँ हुसैन अली

उन पर लट्टू थे। बीबी के निकल जाने कीउन्हे कोई परवाह न हुई। मगर मुश्किल यह दरपेश हुई, कि अब खाना कौन पकावे। बी आबादी को चूल्हा फूँकना पडा। यह इसकी कब आदी थी। बहर तौर चन्द रोज यूँ गुजरे, यही एक बच्चा जनी। खुदा जाने हुसैन अली का था, या किसी और का। दो महीना का होके, वह बच्चा जाता रहा। उधर हुसैन अली की जोरू ने रोटी कपडा का दावा किया। डेढ रुपया महीना की डिग्री हुई। तीन रुपया नवाब देते थे, डेढ रुपया मे क्या होता? ऊपर की आमदनी पर बसर थी। उसमे भी कुछ न चली। बी आबादी किसी कदर चटोरी भी थी। आखिर मियाँ हुसैन अली के घर से निकल के, मुहल्ले के एक लडके के साथ भागी। उसकी माँ पठानी कुटनी, बडे मशहूरो मे थी। जहाँ दो चार लुकन्दरियाँ और रहती थी, वही इनका ठिकाना हो गया। बी पठानी की रोजी मे किसी कदर और बढोती हुई। मुन्ने बराए नाम रह गए। मियाँ मुन्ने के एक पीर भाई मियाँ सआदत, पठानी को झुल दे के ले उडे। यह अपनी माँ के पास ले गए। इनकी वालिदा को मुर्गियो से शौक था। मकान के पास एक तकिया था, वहाँ मुर्गियाँ चरा करती थी। बी आबादी, उनकी हिफाजत पर मुकर्रर हुई। मियाँ सआदत, किसी कारखाने मे काम करते थे, दिन भर वहाँ चले जाते थे, यह मुर्गियाँ हँकाया करती थी। वहाँ उन्होने मुहम्मद बख्श, कल्लो कुँजडन के लडके से, राहो-रस्म पैदा की, बल्कि सआदत की माँ ने यह मुआमला देख भी लिया। बेटे से कहा। उसने खूब जूते मारे। मियाँ मुहम्मद बख्श के एक और यार थे, मियाँ अमीर। नवाब अमीर मिर्जा के खिदमतगारो मे नौकर थे। वह फने तमाशबीनी मे एक थे। वह उडा ले गए। उन्होने एक मकान मे ले जाके रखा। यहाँ और यारो का मजमा भी रहता था। बी आबादी सब की दिल-जोई मे मसरूफ रहती थी। इसी जमाने मे, नही मालूम किसकी बरकत से, खूब फली फूली। अब मियाँ अमीर के किस काम की थी। उसने उठवा के अस्पताल मे फिकवा दिया। इस वक्त वही तशरीफ रखती है। अगर आप फरमाइए, तो यहाँ बुलवा दी जाये।

रुसवा 'मुझे तो मुआफ ही रखिये।'

इश्कीम

'हाथ आई मुराद मुँह मांगी,
दिल ने पाई मुराद मुँह मांगी।'

रजव की नौचन्दी थी। कुछ बैठे-बैठे मेरे दिल मे आई, चलो दरगाह चले, जयारत ही कर ले। सरे शाम सवार होके पहुंचे। बड़ी भीड़ थी। पहले तो मैं, मर्दानी दरगाह के सेहन मे इधर उधर टहला की। फिर जाके शमे जलाई, हाजरी चढाई। एक साहब मरसिया पढ रहे थे, उन्हे सुना। फिर एक मौलवी साहब आये। उन्होने हदीस पढी। इसके बाद मातम हुआ। अब लोग अपने-अपने घरो को चलने लगे। मैंने भी जयारते रुखसती पढ के वापसी का इरादा किया। दरवाजे तक पहुँच के जी मे आया, जनानी दरगाह मे होती चलूँ। नौहा खानी की शोहरत और नवाब मलका किशवर की सरकार से रसाई की वजह से, अक्सर औरते मुझको जानती थी। इसी बहाने से मुलाकाते हो जायेंगी। सवार होके चौपहले पर पर्दा डाल के जनानी दरगाह के दरवाजे पर पहुँची। महलदार ने आके सवारी उतरवाई। अन्दर गई। मेरा ख्याल गलत न था। अक्सर औरतो से सामना हुआ। शिकवे, शिकायते, गदर के हालात, इधर उधर की बातें हुआ की। बडी देर हो गई। मैं वापस आने ही को थी, कि इतनी देर मे क्या देखती हूँ, कि दाहिनी तरफ की सेहनची से, कानपुर वाली बेगम साहबा चली आती हैं। बडे ठाठ हैं, तोलवां जोडा पहने हुए, चार पाँच महरियां साथ हैं। एक पायचे सँभाले हुए है, एक के हाथ मे पन्ना

है, एक लौटिया खासदान लिये हुए है। एक के पास सेनी में तबरुकात हैं। मुझे देखते ही दूर से दौड़ी। कंधे पर हाथ रख दिये।

बेगम 'अल्ला उमराव! तुम तो बड़ी बे-मुरौवत हो। कानपुर से जो गायब हुई हो, तो आज मिली हो। वह भी इत्तिफाक में।'

मैं 'क्या कहूँ, जिस दिन आपके बाग में रात को रही थी, उसी दिन सुबह को, लखनऊ से लोग आके, मुझे पकड़ के लखनऊ ले गये। फिर भागड़ हुई। खुदा जाने कहाँ-कहाँ मारी-मारी फिरी। न मुझे आपका पता था, न आपको मेरा हाल मालूम था।'

बेगम 'खैर, अब तो हम तुम दोनों लखनऊ में है।'

मैं 'लखनऊ कैसा? इस वक्त तो एक ही मुकाम पर है।'

बेगम 'इसकी सनद नहीं। तुम्हें तो मेरे मकान पर आना होगा।'

मैं 'सिर आँखों से, मगर आप रहती कहाँ हैं?'

बेगम 'चौपटियों पर। नवाब साहब को कौन नहीं जानता?'

मैं पूछने ही को थी, कि कौन नवाब साहब कि इतने में एक महरी बोल उठी, 'नवाब महमूद तकी खाँ का मकान कौन नहीं जानता?'

मैं 'आने को तो आऊँ, मगर नवाब साहब के खिलाफ न हो।'

बेगम 'नहीं, वह इस तबीयत के आदमी नहीं हैं। और फिर तुम्हारे वास्ते, मैंने उस रात का हाल, रत्ती-रत्ती उनसे कहा था। उन्होंने तो खुद कई मर्तबा कानपुर में ढुँढवाया। अक्सर पूछते रहते हैं।'

मैं 'अच्छा, तो जरूर आऊँगी।'

बेगम 'कब आओगी? वादा करो।'

मैं 'अब की जुमेरात को हाजिर हूँगी।'

बेगम 'ओहो! यह जुमेरात की अरवाह तुम कब से हो गई? अभी तो पूरे आठ दिन है। इधर ही क्यों नहीं आती?'

मैं 'अच्छा, तो अगली पीर को आऊँगी।'

बेगम 'इतवार को आओ। नवाब भी घर में होंगे। पीर के दिन शायद किसी अंगरेज से मिलने जायें।'

# बाईस

हरचन्द बहुत गौर किया हमने शबोरोज़,
दुनिया का तिलिस्मात समझ में नहीं आता।

मैं ख़ानम से अलहदा हो गई थी, मगर जब तक वह जीती रही, अपना सरपरस्त समझा की। और सच है कि उन्हें भी मुझ से मुहब्बत थी। उनके पास इस कदर दौलत थी, कि तबीयत गनी हो गई थी। सिन, जो ज्यादा हो गया था, तो दुनिया की तरफ से उनकी तबीयत फिर गई थी। अब उनको किसी की कमाई से कुछ मतलब न था। मगर मुहब्बत उसी तरह करती थी। वह अपने जीते जी किसी नोची को अपने से जुदा न करती थी। मुझ से तो उनको ख़ास मुहब्बत थी। बिस्मिल्ला ने उनको बहुत आजार दिये, इसलिये उन्हें, उससे नफरत सी हो गई थी, लेकिन फिर भी औलाद थी। ख़ुरशीद जान भी गदर के बाद आ गई थी। वह ख़ानम के पास रहती थी। अमीर जान ने अलग कमरा ले लिया था, मगर वह भी आती जाती रहती थी।

जो कमरा ख़ानम ने मुझे दिया था, वह उनकी ज़िन्दगी भर मुझसे ख़ाली नहीं कराया गया। मेरा असबाब उसमें बन्द रहता था। मेरा ताला लगा था। जब जी चाहता था, वहीं जाके रहती थी। साल भर कहीं भी रहूँगी, मगर मुहर्रम में ताज़ियादारी वहीं करती थी। मेरे नाम का ताज़िया ख़ानम मरते दम तक रखा कीं।

जुमेरात को बेगम से मुलाकात हुई थी, जुमा को आदमी आया, कि ख़ानम की तबीयत कुछ अलील है, तुम्हें याद करती हैं। मैं फौरन सवार हो के गई। उन्हें देखकर घर पर वापस आने का इरादा किया, कि जी में आया कि एक

भारी जोडा निकालती लेती चलूँ। कमरा खोला। देखा, कमरे मे चारो तरफ जाले लगे है, पलँग पर मनो गर्द पडी है, फर्श फरूश उलटा पडा है, इधर उधर कूडा पडा है। यह हाल देख के मुझे अपने अगले दिन याद आये। अल्ला, एक दिन वह था, कि यह कमरा हर वक्त कैसा सजा सजाया रहता था। दिन मे चार मर्तबा झाड़ू होती थी। बिछौने झाडे जाते थे। गर्द का नाम न था। तिनका तक कही दिखाई न देता था। या अब यह हाल है कि दम भर कही बैठने को जी नही चाहता। वही पलँग, जिस पर मैं सोती थी अब उस पर कदम रखते हुए कराहत मालूम होती थी। आदमी साथ था, मैंने उससे कहा, 'जरा जाले तो ले ले।' वह एक सेंठा कही से उठा लाया, जाले लेने लगा। इतनी देर मे मैंने अपने हाथ से दरी उलटी। आदमी ने और मैंने मिल के दरी बिछाई। चाँदनी को ठीक किया। जब फर्श दुरुस्त हो गया, तो मैंने पलँग के बिछौने उठवा के झड़वा दिये। कोठरी मे से सिगारदान, पानदान, उगालदान उठा लाई। सब चीजें अपने अपने करीने से लगा दी, जिस तरह कि किसी ज़माने मे लगी रहती थी। खुद तकिया लगा के बैठी। आदमी के पास खासदान था, पान ले के खाया। आईना सामने रख के मुँह देखने लगी। अगला ज़माना याद आ गया। शबाब की तस्वीर आँखो मे फिर गई। उस ज़माने के कदरदानो का तसव्वुर बँध गया। गौहर मिर्ज़ा की शरारत, राशद अली की हिमाकत, फैज़ू की मुहब्बत, सुलतान साहब की सूरत, गरजकि, जो जो साहब इस कमरे मे आए थे, सब अपने अपने खसूसियात के मेरे पेशेनज़र थे। वह कमरा इस वक्त फानूसे-ख्याल बन गया था। एक तस्वीर आँख के सामने आती थी, और गायब हो जाती थी। फिर दूसरी सामने आती थी। जब कुल सूरतें नज़र मे गुज़र गईं, तो यह दौरा नये सिरे से फिर शुरू हुआ। फिर वही सूरतें, एक दूसरे के बाद पेश आईं। पहले तो ऐसे दौरे जल्द जल्द हुए। अब ज़रा वकफा होने लगा। अब मुझको हर तस्वीर पर ज्यादा फिक्र करने का मौका मिला। जो वाकयात, जिस शख्स के मुतालिक थे, उन पर तफसीली नज़र आती थी। अब हर तस्वीर से बहुत सी निकली और फानूसे ख्याल की लम्बाई चौडाई बढने लगी। तमाम ज़िन्दगी मे जो कुछ देखा, सब निगाह के सामने था। इस

अस्ना मे एक मर्तबा, सुलतान साहब का फिर ख्याल आया, तो इसके साथ ही पहले मुजरे का तमाम जलसा जिसमे सुलतान साहब को देखा और दूसरे दिन उनके खिदमतगार का आना, फिर उनका खुद तशरीफ लाना, मज़े मज़े की बाते, शेरो-सख़ुन का चर्चा, खान साहब का बीच मे टपक पडना, बदजबानी करना, सुलतान का तमन्चा मारना, खान साहब का गिर पडना, शमशेर ख़ाँ की जांनिसारी, कोतवाल का आना, ख़ाँ साहब का घर भिजवाना, सुलतान साहब का न आना, महफिल मे उनको देखना, लडके के हाथ रुक्का भेजना। फिर अज सरे नौ रस्म होना, नवाज़गज के जलसे। यह सब वाक़यात, इस तरह से मालूम होते थे जैसे कल हुए है। यह दौरे बराबर चल रहे थे। मगर जब पहले मुजरे के बाद सुलतान साहब के आदमी का पयाम ले के आना याद आता था, तबीयत कुछ रुक सी जाती थी। ऐसा मालूम होता था, जैसे इस मौका पर कुछ छूट जाता है। इतने मे आदमी ने ज़ोर से चीख़ मारी।

आदमी 'बीबी! देखिये वह कनखजूरा आपके दोपट्टे पर चढा जाता है।'

मैं उई कह के उठी, जल्दी से दोपट्टा उतार के फेंक दिया। अलग जा खडी हुई। आदमी ने दोपट्टा उतार के झाडा। कनखजूरा पट से गिरा और रेंग के पलंग के सिरहाने पाए के नीचे घुस गया। आदमी ने पलंग का पाया उठाया। अब जो देखते हैं, तो पाए के नीचे पांच अशर्फियाँ बराबर बिछी हुई है।

आदमी (बहुत ही मुतअज्जब होके) 'हाय! यह लीजिये। यह क्या?'

मैं (दिल मे) 'आहा यह वह अशर्फियाँ है। (आदमी से) अशर्फियाँ हैं?'

आदमी 'वाह! अशर्फियां यहाँ कहाँ से आई?'

मैं (हँस के) 'वह कनखजूरा अशर्फियाँ बन गया। अच्छा, उठा लो।'

आदमी पहले तो जरा झिझका, फिर पाँचो अशर्फियाँ मुझे उठा के हवाला की।'

रुसवा 'तो क्या खानम का मकान गदर मे नही लुटा।'

उमराव जान . 'लुटा क्यो नही? मगर फर्ज़ कर लीजिए, कि मेरे पलँग का पाया, किसी ने उठा के नही देखा।'

रुसवा 'मुमकिन है।'

## तेईस

किसी तरह से हो तसकीने शौक़, कैसा रश्क,
मिलेंगे आज हम उनसे, रकीब से मिल के।

इतवार के दिन, आठ बजे सुबह को, बेगम साहबा की महरी, फीनस और कहार ले के, सिर पर सवार हो गई। मैं अभी सो के उठी थी। अच्छी तरह हुक्का भी न पीने पाई थी, कि उसने जल्दी मचाना शुरू कर दी। मैं समझी थी, खाना वाना खा के जाना होगा। महरी ने कहा, 'बेगम साहबा ने अपने सिर की क़सम दी है, कि खाना यही आ के खाना। मैंने पूछा, 'नवाब साहब घर पर है?' उसने कहा, 'नही, सुबह से उठ के गांव गये है।' मैंने पूछा, 'कब तक आयेंगे।' महरी ने कहा, 'अब आयें तो शाम को आयें।' मुझे बेगम से बहुत सी बात करनी थी, इसलिए फौरन उठ बैठी। हाथ मुँह धो के, कघी चोटी कर, कपड़े पहन, एक मामा को साथ ले के रवाना हो गई।

जा के जो देखा, बेगम साहबा मुन्तजर बैठी हैं। मेरे जाने के साथ ही दस्तरख्वान बिछा। मैंने और बेगम साहबा ने साथ बैठ के खाना खाया। बहुत तकल्लुफ का खाना था। पराँठे, कोरमा, कई तरह का सालन, बालाई, महीन चावल का खश्का, नौरतन चटनी, सेब का मुरब्बा, हलवा सोहन। खाना खा के चुपके से मेरे कान मे —

बेगम 'क्यो, वह करीम के घर की अरहर की दाल और जुआर की रोटियाँ भी याद हैं?'

मैं 'चुप भी रहो, कोई सुन न ले।'

बेगम 'सुन लेगा तो क्या होगा? क्या कोई जानता नहीं। नवाब की माँ ने, खुदा जन्नत नसीब करे, मुझे नवाब के लिये मोल लिया था।'

मैं 'बराए खुदा चुप रहो, कहीं अलहदा चलो, तो बातें होंगी।'

खाना खा के हाथ मुँह धोया। पान खाया, महरी ने हुक्का ला के दिया। बेगम ने सबको बहाने से टाल दिया।

मैं 'प्यारे, तुमने मुझे पहचान लिया।'

बेगम 'जब तुम्हें पहले पहल कानपुर में देखा था, उसी दिन पहचान लिया था। पहले तो बड़ी देर तक उलझन सी हो रही थी। दिल में कहती थी मैंने इन्हें कहीं देखा है, मगर कहाँ देखा है? यह कुछ याद नहीं आता। चारों तरफ ख्याल दौड़ाती थी, कुछ समझ ही नहीं आता था। इतने में करीमन महरी पर नजर पड़ी। करीमन के नाम पर मूँडी काटे, करीम का नाम आ गया। दिल ने कहा, कि ओ हो हो, इन्हें करीम के मकान पर देखा था।

मैं 'मेरा भी यही ख्याल था। बड़ी देर तक गौर किया की। मेरी साथ वालियों में एक खुरशीद है, उसकी सूरत तुमसे बहुत मिलती है। जब मैं खुरशीद को देखती थी, तुम याद आ जाती थीं।'

बेगम 'अब मेरा हाल सुनो।

मैं, जब तुमसे जुदा होके नवाब साहब की माँ, नवाब उम्दातुन्निशा बेगम साहबा के हाथ बिकी हूँ, तुम्हें याद होगा, मेरा सिन कोई बारह बरस का होगा। नवाब को सोलहवाँ बरस था। नवाब के अब्बाजान कानपुर में रहते थे। बेगम साहबा से, उनसे नाइत्तिफाकी रहती थी। नवाब साहब के अब्बाजान ने, नवाब की शादी, अपनी बहन की लड़की के साथ ठहराई थी। उनका मकान दिल्ली में था। बेगम साहबा को वहाँ शादी करना मंजूर न था। वह यह चाहती थीं, कि नवाब की शादी, उनके भाई की लड़की के साथ हो। मियाँ बीबी में, पहले ही से नाइत्तिफाकी थी। इस बात से और जिदें बढ़ीं। अभी यह झगड़ा तय न हुआ था, कि नवाब के दुश्मनों की तबीयत कुछ

नासाज थी। हकीमो ने तजवीज़ किया कि बहुत जल्द शादी कर देना चाहिये, वरना जनून हो जायेगा। शादी हो जाना किसी तरह मुमकिन न था। इतने मे मैं पहुच गई। बेगम साहबा ने मुझे खरीद लिया।

नवाब साहब मुझ पर मायल हो गये और ऐसे मायल हुए, कि दोनो जगह की शादी से खुल्लम खुल्ला इन्कार कर दिया। थोडे दिनो के बाद खुदा का करना ऐसा होता है, कि बेगम साहबा ने इन्तिकाल किया और इसके चद ही साल बाद, बडे नवाब भी मर गये। माँ बाप, दोनो साहबे जायदाद थे। यही एक इकलौते लडके थे। कुल दौलत इन्ही को मिली।

नवाब साहब को खुदा सलामत रखे, जिनकी बदौलत बेगम साहबा बनी हुई हूँ, और ऐश करती हूँ। नवाब साहब, मुझे उसी तरह चाहते है, जैसे कोई अपने सेहरे जलवे की बीवी को चाहता हो। मेरी ज़ाहिर मे तो किसी तरफ निगाह उठा के भी नही देखा। यूँ बाहर अपने दोस्त आशनाओ मे जो कुछ चाहते हो, करते हो। आखिर मर्द ज़ात हैं। कुछ मैं उनके पीछे तो फिरती नही।

खुदा ने सब आरजुऐ मेरी पूरी की। औलाद की हवस थी, खुदा के सदके मे औलाद भी है। अब अगर आरज़ू है, तो यह है, कि खुदा बब्बन को परवान चढाये। बहू व्याह के लाऊँ और एक पोता खिलाऊँ। फिर चाहे मर जाऊँ। नवाब के हाथो, मिट्टी अजीज़ हो जाये। अब तुम अपना हाल कहो।

जब रामदेई यह बाते कह रही थी, मुझे अपनी किस्मत पर अफसोस आ रहा था और दिल ही दिल मे कहती थी, तकदीर हो, तो ऐसी हो। एक मेरी फूटी तकदीर। बिकी भी तो कहाँ ? रंडी के घर मे।

इसके बाद मैंने अपना मुख्तसर हाल कह सुनाया, जिससे आप बखूबी वाकिफ हैं। मैं दिन भर वही रही। जब तखलिया की बाते हो चुकी, तो नौकरो को आवाज़ दी। तबला की जोडियाँ, सितार, तम्बूरा, यह सब सामान मँगवाया। गाने बजाने का जलसा हुआ।

जब हम दोनो अकेले थे, तो वह रामदेई थी और मैं अमीरन। सब लोगो

के सामने, वह फिर बेगम साहबा हो गईं, और मैं उमराव जान। तीन चार घण्टे तक गाना बजाना होता रहा। बेगम भी किसी कदर सितार बजा लेती थी। जब मैं गा चुकती थी, तो वह सितार की कोई गत छेड़ देती थी। एक मुगलानी का गला बहुत अच्छा था। उसको गवाया। सरे शाम तक बड़े लुत्फ की सोहबत रही।

## चौबीस

हां, ऐ निगाहें शोक मुनासिब है एहतियात,
ऐसा न हो, कि बज़्म में चर्चा करे कोई।

करीब शाम, महल मे नवाब साहब की आमद आमद का गुल हुआ। वह बेतकल्लुफी की सोहबत बरहम हो गई। तबले की जोडी, सितार, तम्बूरा, सब चीज़ें हटा दी गई। छिपने वालियां, उठ-उठ के पर्दे में जाने लगी, और सब लोग अपने-अपने करीने से हो गये। मैं भी बेगम से अलग हो के, मकता बन के बैठ गई। जिस दालान मे हम लोग बैठे थे, वहाँ से दरवाज़ा का सामना था। पर्दा पडा हुआ था। नवाब के इन्तज़ार मे उस पर्दे की तरफ निगाहे लगी हुई थी। मैं भी उसी की तरफ देख रही थी। इतने मे किसी खिदमतगार ने चिल्ला के कहा, 'नवाब साहब आते हैं।' चद लमहे के बाद महरी ने पर्दा उठा के कहा, 'बिस्मिल्ला अलरहमान अलरहीम', नवाब अन्दर दाखिल हुए।

मैं (सूरत देखते ही दिल मे) वही तो हैं, सुलतान साहब। किस मौके पर सामना हुआ है। नवाब की निगाह मुझ पर पडी, पहले उन्हीं की तरफ देख रही थी।

मैं देखता हूं जो उनकी तरफ तो हैरत है,
मेरी निगाह का वह इज़्तराब देखते हैं।

अब नवाब दालान के करीब पहुँच गये और मेरी ही तरफ देखते जाते थे कि,

बेगम 'ईई, नवाब, देखते क्या हो? यही है उमराव जान, मैंने तुमसे इन्हीं का तजकरा किया था।'

अब फर्श के करीब पहुँच गये। सब ताजीम को उठ खड़े हुए। नवाब मसनद पर बेगम के पहलू में, एक जरा सरक के बैठ गये।

अब शाम हो गई थी। महरी ने दो सफेद कँवल, रोशन करके सामने रखे। बेगम पान बनाने लगी। इस अरसा में नवाब ने आँख बचा के मेरी तरफ देखा। मैंने कनखियों से उन्हें देखा। अब न वह कुछ कह सकते हैं, न मैं बोल सकती हूँ। मुँह से बोलने का मौका न था। मगर इस वक्त आँखें जबान का काम दे रही थीं। शिकवे शिकायत, सब इशारों में हुआ किये।

नवाब (किसी कदर अजनबियत से) 'उमराव जान साहब! वाकई हम तो आपके बहुत ही ममनून हैं। वाकई कानपुर में, उस शब को तुम्हारी वजह से हमारा घर लुटने से बच गया।'

मैं 'यह आप मुझे काँटों में क्यों घसीटते हैं। एक इत्तिफाकी अमर था।'

नवाब 'खैर जो कुछ हो, वजह तुम्हारी थी। खैर असबाब तो वहाँ कुछ न था, मगर एक बड़ी खैरियत हो गई, तमाम जरूरी कागजात कोठी में मौजूद थे।'

मैं 'यह हुजूर उन दिनों जंगल में औरतों को छोड़ के कहाँ गये थे?'

नवाब 'क्या कहूँ? ऐसी ही मजबूरी थी। लखनऊ की जायदाद बादशाह ने जब्त कर ली थी। लाट साहब के पास कलकत्ता जाना जरूरी था। ऐसी जल्दी में गया था, कि न कुछ सामान किया, न लिया न दिया। सिर्फ शमशेर खाँ और एक आदमी साथ ले के चला गया।'

मैं 'वह कोठी ऐसे जंगलों में है, कि जो वारदात न हो, ताज्जुब है।'

नवाब 'सिवाय इस वाकया के और कोई वारदात कभी नहीं हुई। वजह यह थी, कि गदर होने को था। बदमाशों ने सिर उठाया था, मुल्क में अन्धेर मचा था।

इसके बाद और इधर उधर की बातें हुआ की। फिर दस्तरख्वान बिछा। सब ने साथ मिल के खाना खाया। जब हुक्का पान से फरागत हो चुकी, तो

तो नवाव ने गाने की फरमाइश की। मैंने यह गजल शुरु की,

मरते मरते न कजा याद आई,
उसी काफिर की अदा याद आई।
तुम को उलफत न अदा याद आई,
याद आई तो जफा याद आई।
हिज्र की रात गुजर ही जाती,
क्यो तेरी जुल्फे रसा याद आई।
तुम जुदाई में वहुत याद आये,
मौत तुम से भी सिवा याद आई।
चारागर, जहर मँगा दे थोडा,
ले मुझे अपनी दवा याद आई।

और शेर याद नही—

वरसात के दिन है, पानी छमाछम वरस रहा है, आमो की फसल है, मेरे कमरे मे मजमा है। विस्मिल्ला जान, अमीर जान, वेगा जान, खुरशीद जान रंडियो मे। नवाव वब्वन साहव, नवाव छब्वन साहव, गौहर मिर्ज़ा, आशिक हुसैन, तफज्जुल हुसैन, अमजद अली, अकवर अली खाँ मर्दो मे। यह सब साहव मौजूद हैं। गाना हो रहा है। इतने मे,

विस्मिल्ला 'भई होगा। गाना तो रोज़ हुआ करता है। इस वक्त तो कटाई चढाओ। कुछ पकवान पकवाओ। देखो, कैसा मेह वरस रहा है।'

मैं 'ऊँह, वाज़ार से जो जी चाहे मँगवालो।'

खुरशीद 'वाज़ार से मँगवालो, यह खूब कही। अपने हाथ के पकाने मे मज़ा ही और है।'

अमीरन 'वहन! तुम्हे हँडिया ठोकने का मज़ा है, हमने न तो कभी पकाया है, न पकाने की कदर जानते है।'

वेगा 'तो फिर, वही वाज़ार की ठहरी।'

मैं 'ए है वाजी, क्या भूखी हो?'

वेगा 'मैं तो भूखी नही हूँ। विस्मिल्ला से पूछो। उन्होने सलाह दी थी।'

बिस्मिल्ला 'भई कुछ न कुछ तो आज होना ही चाहिये ।'

मैं 'बताऊँ ! चलो बख्शी के तालाब चलें ।'

बिस्मिल्ला 'हाँ भई क्या बात कही है ।'

खुरशीद 'खूब सैर होगी ।'

बेगा 'हम भी चलेंगे ।'

मैं 'अच्छा तो सामान करो ।'

बात करते में तीन गाड़ियाँ, किराया पर आ गई । खाने पकाने का सामान गाड़ियों पर लदवाया गया । दो छोलदारियाँ, नवाब बच्चन साहब के घर से आ गई । सब गाड़ियों पर सवार होके रवाना हो गये । गोमती पार पहुँच के गाना शुरू हुआ । उस दिन बेगा जान का गाना —

झूला किन डारो रे अमराइयां !

क्या क्या तानें ली हैं कि दिल पिसा जाता था ।

शहर से निकल के जंगल का समाँ, काबिले दीद था । जिधर निगाह जाती है, सब्जा ही सब्जा नजर आता है । बादल चारों तरफ घिरे हुए हैं । मेंह बरस रहा है । दरख्तों के पत्तों से पानी टपक रहा है । नाले नदियाँ भरी हुई हैं । मोर नाच रहे हैं । कोयल कूक रही है । बात कहते में तालाब पर पहुँच गये । बारादरी में फर्श किया गया । चूल्हे बन गये । कड़ाईयाँ चढ़ गई । पूरियाँ तली जाने लगीं । नवाब छुट्टन साहब बरसाती पहन के शिकार को निकल गये । गौहर मिर्जा आमों की खाँचियाँ चुका लाये । इतनी देर में नौकरों ने, सड़क के किनारे, बाग में छोलदारियाँ गाड़ दीं । गाँव से चारपाईयाँ आ गई । यहाँ और ही लुत्फ था । आम टपक रहे हैं, एक एक आम पर चार चार आदमी टूटे पड़ते हैं, पानी में छपके लगा रहे हैं ।

कोई इधर दौड़ा जा रहा है, कोई उधर । आपस में धींगा मुश्ती हो रही है । अब अगर इसमें कोई गिर पड़ा, तो कीचड़ में लत पत । थोड़ी देर पानी में जा के खड़े हो गये । फिर वैसे ही साफ । जिनके मिजाज में किसी कदर एहतियात थी, जैसे बाजी बेगा जान, वह छोलदारी में बैठी रहीं ।

बिस्मिल्ला ने पीछे से जा के मुँह पर आम का रस मल दिया । फिर

उनकी चीखें और सब का कहकहा लगाना, देखने का तमाशा था ।

नही मालूम, कहाँ से बहनी बहाती, तीन नटनियाँ आ निकली । उनको गवाना शुरू किया । उनके साथ का ढोलकी वाला, गजब की ढोलकी बजाता था । भला उनका नाच गाना, हम लोगो को क्या अच्छा मालूम होता । मगर इस मौसम मे और वैसी जगह कुछ ऐसा नामुनासिब न था । दो घडी दिन रहे, हमारी किस्मत से आसमान खुल गया । धूप निकल आई । हम लोग एहतियातन एक एक जोडा घर से लेते आये थे । सब ने कपडे बदले । जगल की सैर को निकले ।

मैं भी, अकेली, एक तरफ को रवाना हुई । सामने गुन्जान दरख्त थे । सूरज इन्ही गुन्जान दरख्तो की आड मे डूब रहा था । सब्ज़े पर सुनहरी किरणो के पडने से, अजीब कैफियत थी । जा बजा, जगली फूल खिले थे । चिडियाँ, सब्ज़े की तलाश मे इधर-उधर उड रही थी । सामने झील के पानी पर, सूरज की किरणो से, वह आलम नज़र आता था, जैसे पिघला हुआ सोना थलक रहा हो । दरख्तो के पत्तो की आड मे, किरणें और ही आलम दिखा रही हैं । आसमान पर सुर्ख शफक फूली हुई थी । इस वक्त का समाँ ऐसा न था, कि एक खफकानी मिज़ाज की औरत, जैसी कि मैं हूँ, जल्दी से छोलदारी मे चली आती । यह तमाशा देखती हुई, खुदा जाने कितनी दूर निकल गई । आगे जाकर एक कच्ची सडक मिली । इस पर कुछ गँवार रास्ता चल रहे थे । किसी के कधे पर हल था, कोई बैलो को हाँकता हुआ चला आता था । एक छोटी सी लडकी, गाय भैंस लिये जाती थी । एक लडका बहुत सी भेडो और बकरियो के पीछे था, यह सब आँखो के सामने आये और नज़रो से गायब हो गये । मैं फिर अकेली रह गई । नही मालूम किस धुन मे थी । मगर अब मैं सडक पर चलने लगी । अपने नज़दीक, मैं गोया अब तालाब की तरफ चल रही हूँ । अब अँधेरा होता जाता है । सूरज डूबने ही को है । अब मेरा कदम जल्द जल्द उठ रहा है । आगे चलकर एक फकीर का तकिया मिला । यहाँ कुछ लोग बैठे, हुक्का पी रहे थे । मैंने तालाब का रास्ता पूछा । मालूम हुआ, कि मैं लखनऊ की सडक पर जा रही हूँ । तालाब दाहिने को छूट गया है । यहाँ सडक छोडना पडी । एक बीहड मे से

होकर रास्ता था। थोड़ी दूर पर एक नाला मिला। नाले के उस पार, थोड़े फासले पर, दो तीन दरख्त थे। मैंने देखा कि इन दरख्तों की जड़ में इक जरा हट्के कोई शख्स मैली सी धोती बाँधे, मिर्जई पहने, एक मैला सा चादरा कमर से लिपटा हुआ खुरपी हाथ में लिये कुछ खोद रहा है। मेरे इस शख्स से चार आँखें हुईं। पहले तो कुछ शुबहा सा हुआ, फिर एक मर्तबा गौर से देखा। अब करीबन, यकीन हो गया कि वही है। चाहती थी कि नजर फेर लूँ। मगर निगाह कमबख्त उसी तरफ लडी रही। अब तो बिल्कुल यकीन हो गया। करीब था कि गश खा के गिर पड़ूँ और जरूर ही गिर पड़ती। इतने में दूर से अकबर अली खाँ के नौकर, सलारबख्श की आवाज़ कान में आई। मुझे ढूँढने निकला था। मुझे आते देखकर, दिलावर खाँ ने खुरपी हाथ से रख दी थी। जिस तरह, मैं उसे देख रही थी, वह भी मुझको देख रहा था, मगर यकीनन उसने मुझे न पहचाना हो। मैंने उसको अच्छी तरह पहचान लिया था।

सलारबख्श की आवाज़ सुनकर, वह नाले की तरफ भागा। इतने में सलार-बख्श मेरे पास पहुँच गया। मैं मारे खौफ के थर-थर काँप रही थी। आवाज मुँह से नही निकलती थी। घिग्घी बँधी हुई थी। सलारबख्श ने मेरा यह हाल देख के कहा, 'हाय डर गई ?' मैंने दरख्त की तरफ इशारा किया। सलारबख्श उस तरफ देखने लगा।

सलारबख्श 'वहाँ क्या धरा हुआ है ? एक खुरपी पडी हुई है। वाह ! इससे डर गई। आप समझी, कोई कब्र खोद रहा है और वह गया कहाँ, जो खोद रहा था ?'

मुँह से तो बोला न गया, हाथ से नाले की तरफ इशारा किया।

सलारबख्श 'चिलम पीने गया होगा, तकिये पर। अच्छा, तो चलिये, नवाब छब्बन साहब बहुत सी मुर्गाबियाँ शिकार करके लाये है। आपका कहीं पता नही। मियाँ उधर ढूँढने गये है, मैं इधर आया। कहिये आपको रास्ता न मिलता।' मैंने, हाँ ना, किसी बात का जवाब न दिया। आखिर सलारबख्श भी चुप हो रहा। थोड़ी देर मे खेतो मे से होके तालाब पर पहुँच गई।

रात को यहीं रहने की ठहरी । जब खाने पीने से फरागत हो गई मैंने अकबर अली खाँ से कुल वाकया बयान किया ।

अकबर अली खाँ 'तुमने अच्छी तरह से देखा ? यह वही दिलावर खाँ था ? फ़ैज़ाबाद का रहने वाला ? उसका तो हुलिया जारी है । अफ़सोस ! तुमने पहले से न कहा । बदमाश को चल के गिरफ्तार करते । बड़ा नाम होता । सरकार से इनाम मिलता । पाँच हजार का इश्तहार है । और यह खोदना क्या था ?'

मैं 'क्या मालूम, मुआ अपनी कब्र खोदता होगा ।'

अकबर अली 'उसके नाम से तुम्हारे मुँह पर हवाइयाँ छूटने लगती है । अब वह तुम्हारा क्या कर सकता है ?'

मैं (दिल को ज़रा थाम के) ज़रूर उसने गदर के जमाने मे वहाँ कुछ गाड दिया होगा, उसे खोदने आया है ।'

अकबर अली खाँ 'चलो देखें ।'

मैं 'मैं तो न जाऊँगी ।'

अकबर अली खा 'मैं तो जाता हूँ । सलारबख्श को लिये जाता हूँ ।'

मैं 'कहाँ जाओगे ? अब वहाँ धरा होगा ? वह तो खोद के ले भी गया होगा ।'

अकबर अली खाँ 'मैं तो जरूर जाऊँगा ।'

यह ज़रा जोर से कहा । पास नवाब छब्बन साहब की छोलदारी थी, वह और बिस्मिल्ला दोनो जाग रहे थे ।'

नवाब 'खाँ साहब ! कहाँ जाइयेगा ।'

अकबरअली खाँ 'नवाब साहब ! अभी आपने आराम नही किया ?'

नवाब 'जी नही ।'

अकबर अली खाँ 'मैं हाज़िर हूँ ?'

नवाब 'आइये ।'

अकबर अली खाँ और मैं, दोनो नवाब की छोलदारी मे गये । कुल वाकया बयान किया ।

नवाब (मुझसे) 'और तुम इस बदमाश को क्या जानो ?'

मैं (अपनी सरगुजश्त तो उन से क्या कहती) 'मै जानती हूँ, और खूब जानती हूँ। मैं भी फैजाबाद की रहने वाली हूँ।'

नवाब 'आरख़ाह ! आप भी फैजाबाद की रहने वाली है ?'

अकबर अली खाँ 'मगर उस मरदूद का कोई बन्दोबस्त करना चाहिये। ऐसे मे यही कही है। अजब नही गिरफ्तार हो जाये।'

यह कह के मलारबख्श को आवाज़ दी। कलमदान मँगवाया। थाना करीब था। थानेदार को रक्का लिखा। थोडी देर मे थानादार साहब, मय दस-बारह सिपाहियो के, आ मौजूद हुए। मैंने जो देखा था था, उनसे कह दिया। गाँव मे पासी बुलवाये गये। पहले उस मौका पर जा कर ढूँढा। तकिया पर फकीर से किसी कदर सुराग मिला, और एक सिपाही को एक अशरफी शाही जमाने की मिली। वह थानेदार साहब के पास ले आया।

थानादार : 'खुदा चाहे, तो मय माल गिरफ्तार होगा।'

थानेदार साहब ने वाकई अच्छा बन्दोबस्त किया। सिपाहियो ने भी खूब दौड धूप की। आखिर तीन बजे रात को मक्कागज मे गिरफ्तार हुआ। सुबह होते-होते तालाब पहुँच गया। तलाशी मे चौबीस अशर्फियाँ बरामद हुईं। मैं शनाख्त के लिये बुलाई गई। मेरी शनाख्त के अलावा, दो सिपाहियो ने भी पहचाना। दस बजे चालान लखनऊ को रवाना हो गया।

रुसवा। 'अच्छा तो फिर उसका हशर क्या हुआ ? इस किस्से को जल्दी खत्म कीजिये।'

मैं 'हुआ क्या ? कोई दो महीने के बाद मालूम हुआ, फाँसी हो गई। वस्ले जहन्नुम हुआ।'

# पच्चीस

न पूछो नामाए एमाल की दिलावेजी,
तमाम उम्र का किस्सा लिखा हुआ पाया।

मिर्ज़ा रुसवा साहव! जब आपने मेरी सरगुज़श्त का मसविदा मुझे दुवारा देखने के लिये दिया था, मुझे ऐसा गुस्सा आया, कि जी चाहता था, पुर्ज़े-पुर्ज़े करके फैक दूँ। वार-वार ख्याल आता, कि ज़िन्दगी में क्या कम वदनाम हुई, कि इसका अफ़साना, वाद मरने के भी वाकी रहे, कि लोग इसको पढें और मुझे लानत मलामत करें? मगर आपकी मेहनत के लिहाज ने हाथ रोक लिया।

इत्तिफाकन कल रात को वारह वजे के करीव, सोते-सोते आँख खुल गई। मैं, हसव मामूल कमरे मे तन्हा थी। मामाएँ, ख़िदमतगार सव नीचे मकान मे सो रहे थे। मेरे सिरहाने लैम्प रोशन था। पहले तो देर तक करवटें वदला की। चाहती थी, सो जाऊँ। पर किसी तरह नींद न आई। आखिर उठी, पान लगाकर मामा को पुकारा, हुक्का भरवाया। फिर पलँग पर जा लेटी। हुक्का पीने लगी। जी मे आया कोई किताव देखूँ। वहुत से किस्से कहानी की कितावें, सिरहाने अलमारी मे रखी थी। एक-एक को उठा के वरक उलटे-पलटे, मगर वह सव कई मर्तवा की देखी हुई थी। जी न लगा, वन्द करके रख दी। आखिर इसी मसविदे पर हाथ पडा। खफकान की शिद्दत थी। सचमुच मैंने इसे चाक करने का कसद कर लिया। चाक ही किया चाहती थी,

कि यह मालूम हुआ जैसे कान मे कोई कह रहा है, 'अच्छा उमराव ! फिलहाल इसे तुमने फाड के फैंक दिया, जला दिया, तो इससे क्या होना है । तमाम उम्र के वाकयात, जो खुदाए आदिल के हुक्म मे फरिश्तो ने मुफस्सिल लिखे है, उन्हे कौन मिटा सकता है ?'

इस गैबी आवाज़ से मेरे हाथ पांव लर्जने लगे । करीब था कि मसविदा हाथ से गिर पडे । मगर मैंने अपने तई सँभाला । चाक करने का ख्याल तो बिल्कुल दिल से मिट गया । जी चाहा, जहाँ से उठाया था, वही रख दूँ । फिर एक बारगी यूँ ही बिला कसद पढना शुरू कर दिया । पहला सफा जब खत्म हो गया, वरक उलटा । दो चार सतरे और पढी । इस वक्त मुझे अपनी सरगुजश्त से कुछ ऐसी दिलचस्पी पैदा हो गई थी, कि जिस कदर पढती जाती थी, जी चाहता था और पढूँ । और किस्सो के पढने मे मुझे ऐसा लुत्फ कभी न आया था । क्योकि उनको पढते वक्त यह ख्याल पेशे नजर रहता था, कि यह सब बनाई हुई बाते हैं । दर हकीकत कोई असल नही । यही ख्याल किस्से को बे मजा कर देता है । मेरी सरगुजश्त मे जो बातें आपने कलम बन्द की हैं, वह सब मुझ पर गुजरी है । इस वक्त, वह सब, गोया मेरी आँखो के सामने थे । हर वाकया असली हालत मे नजर आता था । और इससे तरह तरह के असर मेरे दिलो दिमाग पर तारी थे, जिनका बयान बहुत ही दुशवार है । अगर कोई मुझको इस हालत मे देखता, तो उसको मेरी दीवानगी मे कोई शक न रहता । कभी तो मैं बेअख्तियार हँस पडती थी । कभी टप टप आँसू गिरने लगते थे । गरजेकि अजब कैफियत थी । आपने फर्माया था, 'जा बजा बनाती जाना ।' इसका होश किसे था । पढते-पढते सुबह हो गई । अब मैंने वजू किया, नमाज पढी, फिर थोडी देर सो रही । सुबह को कोई आठ बजे आँख खुली । हाथ मुँह धो के पढने लगी । बारे सरे शाम सारा मसविदा पढ चुकी ।

तमाम किस्से मे, वह तकरीर आपकी मुझे बहुत ही दिलचस्प मालूम हुई, जहाँ आपने नेक बख्तो और खराब औरतो का मुकाबिला करके इनका फर्क बताया है । नेक बख्त औरतो को जिस कदर फख्र हो, जेबा है, और हम

ऐसी बाज़ारियों को इनके इस फख्र पर बहुत ही रश्क करना चाहिये। मगर इनके साथ यह ख्याल आया, कि इसमें वक्त और इत्तिफ़ाक का बहुत कुछ दख़ल है। मेरी ख़राबी का सबब, वही दिलावर खाँ की शरारत थी। न वह मुझे उठा लाता और न इत्तिफ़ाक से ख़ानम के हाथ फरोख़्त होती। न मेरा यह लिखा पूरा होता। जिन बातों की बुराई में, मुझे अब कोई शुबहा नहीं रहा और इसीलिये एक मुद्दत हुई, कि मैं उनसे बेज़ार और तायब हूँ। उस ज़माने में इनकी हक़ीक़त मुझे किसी तरह नहीं मालूम हो सकती थी। न ऐसा कोई क़ानून मुझे बताया गया था, कि मैं उनसे दूर रहती, और ऐसा न करती, तो मुझे सज़ा दी जाती। मैं ख़ानम को अपना मालिक और हाकिम तसव्वुर करती थी। कोई काम ऐसा न करती, जो उनकी मर्ज़ी के ख़िलाफ हो और अगर करती भी, तो बहुत छिपा के, ताकि उनकी मार और झिड़कियों से बच सकूँ। अगर्चे ख़ानम ने ज़िन्दगी भर मुझे फूल की छड़ी भी नहीं छुआई मगर खौफ ग़ालिब था।

जिन लोगों में, मैंने परवरिश पाई थी, जो उनका तरीक़ा था, वही मेरा भी था। मैंने उस ज़माना में कभी किसी मज़हबी अक़ीदा पर गौर नहीं किया, और मेरा ख्याल है, कोई ऐसी हालत में न करता।

कुदरती हादसे, जिनका कोई वक्त मुकर्रर नहीं है, मगर जब वाकयात होते हैं उन दिनों में एक ख़ास किस्म की दहशत समा जाती है। मसलन ज़ोर से बादल का गरजना, बिजली का चमकना, आँधियों का आना, ओलों का गिरना-या ज़लज़ले का आना, सूरज ग्रहण या चाँद ग्रहण, अकाल, वग़ैरा वग़ैरा। ऐसी बातें अक्सर ख़ुदाई ग़ज़ब की अलामतें समझी जाती थीं। फिर मैंने देखा कि लोगों के बाज़ आमालों की वजह से, वह रफा दफा हो गईं। मगर यह भी देखा कि बहुत सी आफ़तें, दुआ, तावीज़, टोटके वोटके किसी बात से न टलीं। ऐसी बातों को लोग ख़ुदा की मरज़ी, तकदीर की तरफ मनसूब कर दिया करते हैं। मज़हबी आहकाम मुझ पर मुफस्सिल न पहुँचे थे और न सवाब इज़ाब का मसला अच्छी तरह समझाया गया था। इसलिये इन बातों का असर मेरे दिल पर न था। बेशक उस ज़माने में मेरा कोई

मजहव न था । सिर्फ, जो और लोगो को करते देखती थी, वही आप भी करने लगती थी । उस वक्त मे, मेरा कोई मजहव ही न था । तकदीर पर, मै बहुत ही शाकिर थी । जो काम मै काहिली से न कर सकती थी, या मेरी वेवकूफी से विगड जाता था, उसको तकदीर के हवाले कर देती । फारसी किताबो के पढने से आसमान की शिकायत करने का मज़मून मेरे हाथ आ गया था, और जब मेरा कोई मतलब फौत हो जाता था या किसी और वजह से मलाल पहुँचाता था तो वेजा फलक की शिकायतें किया करती थी —

हम भी हैं मुख्तार, लेकिन इस कदर है अख्तियार,<br>
जब हुए मजबूर, किस्मत को बुरा कहने लगे ।

मौलवी साहब, बुआ हुसैनी और बुड्ढे बुढियां, जब अगले ज़माने की बातें करते थे, तो इससे मालूम होता था, कि वह ज़माना, इस ज़माना से बहुत ही अच्छा था । इसलिये उनकी तरह, मै भी उस ज़माना की तारीफ और मौजूदा ज़माना की, बिला वजह बुराई किया करती थी । मै कमबख्त इस बात को न समझी, कि बुड्ढे बुढियाँ जो अगले वक्तो की तारीफ करते हैं, इसका सवव यह है, कि अपनी-अपनी जवानी के दिन सबको भले मालूम होते हैं । इसलिये दुनिया भली मालूम होती है । 'खुद जिन्दा जहाँ जिन्दा, खुद मुर्दा, जहाँ मुर्दा' सिन रसीदा लोगो की देखा देखी जवानो ने भी उन्ही का तरीका अख्त्यार कर लिया है। और चूँकि यह गलतफहमी मुद्दत से चली आती है, इसलिये अब, अमूमन सबको इसकी आदत हो गई है ।

जवान होने के बाद, मै ऐशोआराम मे पड गई थी । इस ज़माने मे गा-बजा के मर्दों को रिझाना, मेरा खास पेशा था । इसमे वमुकावला और साथ वालियो के जिस कदर कामयावी या नाकामयावी मुझको होती थी, वही मेरी खुशी और रंज का अन्दाज़ था । मेरी सूरत, बनिस्वत औरो के, कुछ अच्छी न थी, मगर फने मौसीकी की महारत और शेरोसखुन की काबलियत की वजह से, मै सबसे बढी चढी रही । अपनी हम उम्रो मे मुझे एक खास किस्म का बडप्पन हासिल था, मगर इससे कुछ नुकसान भी हुआ । वह यह, कि जिस कदर मेरी इज्ज़त ज्यादा होती गई, उतना ही मेरा घमण्ड का ख्याल

दिल मे पैदा होता गया। जहाँ और रंडियाँ बेबाकी से अपना मतलब निकाल लेती थी, मैं मुँह देखती रह जाती थी। मसलन उनका यह आम कायदा था, कि हर कसोनाकस से, किसी न किसी किस्म की फरमाइश जरूर कर देनी चाहिये। मुझे इसमे शर्म आती थी। यह ख्याल आता था, ऐसा न हो इन्कार कर दे, तो शर्मिन्दा होना पडेगा। और न हर शख्स से, मैं बहुत जल्द बेतकल्लुफ हो जाती थी। मेरी और साथ वालियो के पास जब कोई आ के बैठता, तो उनको सबसे ज्यादा फिक्र इसकी होती, कि यह कहाँ तक दे सकता है और हम कहाँ तक इससे ले सकते हैं। मेरा बहुत सा वक्त, उस शख्स की ज़ाती लियाकत, हुस्ने इखलाक के अन्दाज करने मे सर्फ हो जाता था। माँगने की आदत को, मैं मायूब समझने लगी थी। इसके अलावा और बातें भी मुझ मे रंडीपने की न थी। इसलिये मेरी साथ वालियो मे से कोई मुझे नाक चोटी मे गिरफ्तार, कोई पगली, कोई दीवानी समझती थी, मगर मैंने अपनी की, किसी की न सुनी।

फिर वह ज़माना आया, कि मैं रंडी के ज़लील पेशा को ऐब समझने लगी और उसे छोड दिया। हर शख्स से मिलना तर्क कर दिया। सिर्फ नाच मुजरे पर बसर औकात रह गई। किसी रईस ने नौकर रख लिया, तो नौकरी कर ली। रफ्ता रफ्ता यह भी तर्क कर दिया।

जब मैं इन अफआल से तायब हुई, जिनको मैंने अपने नज़दीक बुरा समझ लिया था, तो अक्सर मेरे जी मे आया, कि किसी मर्द आदमी के घर पड जाऊँ। लेकिन फिर यह ख्याल आया कि लोग कहेगे, आखिर रंडी थी ना, कफन का चोगा किया, या मरते मरते कफन ले मरी। यानी अपने दाम बचा लिये और तमाशबीनो पर अपने कफन का बोझ डाला। इस मिसल से, रंडियो की बेहद खुदगरजी, लालच और फरेब का सबूत मिलता है। इसमे कुछ शक नही, कि हम लोग ऐसे ही होते है। फर्ज कीजिये, कि मैंने सचमुच ही तौबा कर ली है, और अब इन्तहा की नेक हूँ, मगर इसको सिवाय खुदा के और कौन जानता है? किसी शख्स को मेरी नेकी का यक़ीन नही हो सकता। फिर अगर इस हालत मे किसी से मुहब्बत करूँ और मुहब्बत का

बिना सरासर सच्चाई और नेकनीयती पर हो, तो इस पर भी खास वह शख्स और इनके सिवा और जो लोग देखें या सुनेंगे, कभी यकीन न लायेंगे। फिर मेरा मुहब्बत करना भी बेकार होगा। लोग मशहूर करते हैं कि मेरे पास दौलत है। इसलिये अक्सर लोग, इस सिन मे भी मेरी ख्वाहिश करते हैं, और तरह तरह के फरेब मुझको देना चाहते है। कोई साहब मेरे हुस्नो जमाल की तारीफ करते हैं, अगर्चे इन का ताल्लुक, मैं ऐसी रंडियों से सुन चुकी हूँ जो दरजहा मुझ से बेहतर है। कोई साहब मेरे कमाले मौसीकी पर गश हैं, हालांकि उनके कान ताल सम से आशना नही। कोई मेरी शायरी की तारीफ करते है। जिन्होंने उम्र भर एक मिसरा मौजूँ कहना तो कैसा, पढा भी न होगा। एक साहब मेरी इल्मियत के कायल है, खुद भी पढे लिखे हैं मगर मुझको मौलना औलना समझते हैं। मामूली मसले, रोजा नमाज के भी मुझ से पूछ लिया करते है। गोया कि आप मेरे मुरीद हैं। एक मेरे आशिक जार, मेरी दौलत और कमाल मे कोई वस्ता नही, सिर्फ मेरी तन्दुरुस्ती के ख्वाँहाँ है। हर बात पर अल्लाह आमीन। मुझे छीक आई और उन्हे दर्दे सिर होने लगा। मुझे दर्दे सिर हुआ और उनके दुशमनो का दम निकलने लगा। एक बुजुर्ग नसीहत दिया करते हैं ? दुनिया की ऊँच नीच सब समझाया करते हैं। मुझको बहुत ही भोला समझते है। इस तरह की बाते करते हैं, जैसे कोई दस ग्यारह बरस की लडकी से बातें करता हो।

मैं एक घाघ औरत हूँ, घाट घाट का पानी पिये हुए। जो जिस तरह बनता है,. बन जाती हूँ और दर हकीकत उनको बनाती हूँ। खलूस के साथ भी मिलने वाले दो एक साहब है, बेगरज मिलते हैं। उनका मकसूद सिर्फ एक मजाके खास है। मसलन शेरो सखुन या गाना बजाना या सिर्फ लुत्फे गुफ्तगू, न उनको कोई गरज मुझ से है न मुझे कोई गरज उन से। ऐसे लोगो को मैं दिल से चाहती हूँ, और बेगरजी हौले हौले एक गरज हो गई है, कि न मुझे बगैर उनके चैन आता है, और न उन्हे बगैर मेरे। मगर इन लोगो मे कोई मुझे घर मे बिठाने का उम्मीदवार नही है। काश ! कि ऐसा होता ! मगर यह तमन्ना ऐसी हैं, जैसे कोई कहे कि काश जवानी फिर आती। इसमे

कोई शक नही, कि औरत की जिन्दगी सिर्फ जवानी तक है । अगर जवानी के साथ ही जिन्दगी भी खत्म हो जाया करती, तो क्या खूब होता ! मगर ऐसा नही होता । यूँ तो बुढापा हर एक के लिये बुरा है, खसूसन औरत के लिये । खसूसन रंडी के लिये, बुढापा, दोजख का नमूना है । बुढिया फकीरनियाँ, जो लखनऊ के गली कूचो मे पडी फिरती है अगर गौर कीजियेगा, तो उन मे अक्सर रंडियाँ है । कौन सी ? जो कभी जमीन पर पैर न रखती थी, कयामत बरपा कर रखी थी, हजारो भरे पुरे घर तबाह कर दिये, सैंकडो जवानो को बेगुनाह कत्ल किया । जहाँ जाती थी, लोग आँखें बिछाते थे । अब कोई इनकी तरफ आँख उठा के भी नही देखता । पहले जहाँ बैठ जाती थी, लोग बाग बाग हो जाते थे, अब कोई खडे होने का भी रवादार नही । पहले बिन माँगे मोती मिलते थे, अब माँगे भीख नही मिलती ।

इनमे से अक्सर अपने हाथो अपनी तबाही का बाइस हुई । एक बडी बी मेरे मकान पर कभी कभी आया करती थी, किसी जमाने मे बडी मशहूर रंडियो मे थी । जवानी मे हजारो रूपये कमाये । जरा मजेदार जीवडा था । जब सिन से उतरी, वही कमाई यारो को खिलाना शुरू की । बुढापे मे एक नौजवान के घर बैठी । एक तो वह खूबसूरत कमसिन, भला वह इन पर क्यों रीझता । पहले तो बीबी जरा बिगडी, मगर जब मियाँ ने असल मतलब समझा दिया, खामोश हो रही । इनकी खातिरें होने लगी । जब तक माल रहा, खूब मियाँ बीबी, दोनो ने फुसला के खाया, आखिर खख हो गई । अब कौन पूछता है ? निकाल बाहर किया, गलियो की ठोकरे खाती फिरती है ।

बाज बेवकूफ रंडियो ने किसी की लडकी को ले के पाला । उस से दिल लगाया । इस हिमाकत मे, मैं भी गिरफ्तार हो चुकी हूँ । मगर जब वह जवान हुई, ले दे के किसी के साथ निकल गई । और अगर रही, तो कुल माल रफ्ता रफ्ता अपने कब्जे मे किया, इनको घर का इन्तजाम या मामा गीरी करने को रख लिया ।

आबादी ने भी जुल दिया होता, मगर वह तो कहो, उसके करतूत पहले ही खुल गये, नही तो मुझे लूट ही ले जाती । मर्द क्या और औरत क्या, रंडी की

कौम में बदकारी की ज़िन्दगी का उसूल ही ऐसा बिगड़ा हुआ है, कि एक दूसरे से मुहब्बत नहीं हो सकती। न कोई समझदार मर्द ही इनको दिल दे सकता है, क्योंकि सब जानते हैं कि रंडी किसी की नहीं होती, और न औरत ही ऐसी मुहब्बत कर सकती है। नोचियाँ अपने दिल में यह समझती हैं, कि कमाते हम हैं, फिर इनको क्यों दें?

अगले कदरदान मर्द, जवाले हुस्न के बाद किनारा करते हैं। यह इसकी आदी होती हैं, कि लोग झूठी खुशामद करें। भला अब क्यों कोई खुशामद करने लगा? गरज़ेकि मर्द इन से किनारा करें और यह मर्दों से शिकायत करती रहती हैं।

पहले पहल मैं भी और रंडियों की जवानी, मर्दों की बेवफाई का दुखड़ा सुन के वक्त ज़ाया करती थी और बेसमझे उनकी हाँ में हाँ भी मिलाती थी। मगर बावजूद उसके, कि गौहर मिर्ज़ा ने मेरे साथ जो कुछ सलूक किया, वह सब आपको मालूम है और नवाब साहब, जिन्होंने मुझ पर निकाह का इल्ज़ाम लगाया था, इसको भी आप सुन चुके हैं, फिर मर्दों को बेवफा नहीं कह सकती। इस मुआमला में औरतें, खसूसन बाज़ार वालियाँ, इनसे किसी तरह कम नहीं होतीं। मुहब्बत के बाब में, मुआफ कीजियेगा, मर्द, अक्सर बेवकूफ और औरतें बहुत ही चालाक होती हैं और अक्सर मर्द, सच्चे दिल से इज़हारे इश्क करते हैं और अक्सर औरतें झूठी मुहब्बत जताती हैं। इसलिये, कि मर्द जिस हालत में इज़हारे-इश्क करते हैं, वह हालत उनकी तड़पन होती है और औरतों पर बहुत जल्द असर नहीं होता, क्योंकि मर्द बहुत ही जल्द औरतों के ज़ाहिरी हुस्न पर फरेफ्ता होकर, उन पर शैदा हो जाता है। और औरतें इस बाब में ज़्यादा एहतियात करती हैं, इसीलिये मर्दों की मुहब्बत अक्सर जल्दी खत्म हो जाती है, और औरतों की मुहब्बत देरपा होती है। लेकिन दोनों के आपसी व्योहार से, इन बातों में एक खास किस्म का एतदाल पैदा हो सकता है, बशर्ते कि दोनों को, या कम से कम एक को, समझ हो।

वाकई, मर्द इस मुआमले में, जल्दी भरोसा ले आते हैं और औरतें इन्तहा की शक्की। मर्द पर औरत का जादू बहुत जल्द चल जाता है मगर औरत

पर इश्क का अमल मुश्किल से कारगर होता है । मेरे नजदीक यह नुक्स कुदरत की तरफ से है, इसलिये कि औरते जिस्मानी लिहाज़ से कमज़ोर है । उनको वाज़ गुण ऐसे दिये गये है, जिस से यह कमी पूरी हो जाये । इन औसाफ के अलावा, एक गुण यह भी है, वल्कि मैं कह सकती हूँ, शायद यही एक गुण है ।

अक्सर मर्द यह कहेगे कि औरते हसीन होती है । मै इसकी कायल नही । दर हकीकत न मर्द ही वजाये खुद हसीन है, न औरत । वल्कि हर एक को ऐसा हुस्न इनायत हुआ है, जो दूसरे को अच्छा मालूम हो । यूँ तो मर्द, औरत, जिसका नाक नक्शा अच्छा होता है, सब उसे पसन्द करते हैं, मगर असल 'कदरदान, मर्द के हुस्न की औरत और औरत के हुस्न का मर्द है । एक खूबसूरत औरत, दूसरी खूबसूरत औरत के सामने उस खुशरग फूल से ज्यादा नही है, जिसमे खुशवू न हो और एक वदसूरत मर्द भी, खूबसूरत औरत की राय मे खूबसूरत फूल की तरह दिलपसन्द है, अगर्चे उनकी शक्ल और रगत मे कोई नयापन न हो ।

मुहव्वत के वाव मे गलती, सिर्फ एक ही से नही होती, वल्कि दोनो इस वारीकी को नही समझते । इन दोनो मुहव्वतो की असलियत मे फर्क है । जिस निगाह से मर्द औरतो को देखते हैं, उस निगाह से औरत मर्द को देखती ही नहीं । औरतो की मुहव्वत करने का अन्दाज़, उन मर्दों मे एक हद तक पाया जाता है, जो किसी मालदार औरत के दामने दौलत से वँधे हैं या जिनका सिन वहुत कम है, मगर कोई सिन रसीदा औरत, उनको चाहती है ?

इसमे शक नही, कि औरतें जवान मर्द से, वनिस्वत वुड्ढो के, ज्यादा मुहव्वत रखती हैं, मगर इसकी वजह भी महज़ हुस्नो जमाल नही है । वल्कि वजह यह है, कि औरत कमजोर है, इसलिये वह हर हालत मे अपने हिमायतों को वहुत दोस्त रखती है, ताकि जरूरत पडने पर उसको खतरे से वचा सके । पस जवान से, वनिस्वत वुड्ढे से ज्यादा उम्मीद है और हुस्नो-जमाल इस खूवी के साथ मिलकर, उसके गुण को रौनक देता है ।

खुलासा यह है, कि मर्द की मुहव्वत मे सिर्फ लज्जत हासिल करना

मख़्सूस है, और औरत की मुहब्बत में हुस्न से महफ़ूज रहना और लज्जत दोनों गरजें शामिल हैं।

चूंकि यह मशहूर है कि मुहब्बत बेगरज होनी चाहिये, और औरत की मुहब्बत में इसका ज्यादा लगाव है लिहाजा वह उसके छिपाने की कोशिश करती है। शायद यह कोई कहे, कि जो बातें, मैंने इस मौके पर बयान की हैं, उनमें अक्सर बातों का इम्तियाज न मर्दों को होता है, न औरतों को, तो मैं इसे तस्लीम कर लूंगी और यह कहूँगी कि यह बातें फितरत की तरफ से मर्द व औरत के ज़मीर में दाखिल हैं। कुछ जरूरत नहीं है, कि उन्हें इसका शऊर भी हो। मैंने उम्र भर के तजुर्बे के बाद यह बातें दरयाफ्त की हैं और मेरे साथ जो शख्स, इस पर गौर करेगा वह उसे समझ सकता है।

मैं देखती हूँ, कि अक्सर औरतें और नाखांदा मर्द भी, ऐसी बातों पर गौर नहीं करते। इसलिये उनको अपने जमानाए जिन्दगी में, बहुत सी वक्त बेवक्त झिक झिक करनी पड़ती है।

मेरे ख्याल में अगर मर्द और औरत दोनों अपने-अपने रुतबे और अगराज को समझ लें, तो उनमें हरगिज मलाल न हो, बहुत सी आफतें टल जायें और बहुत सी दूर हो जायें।

मगर एक मुश्किल है, कि जब-किसी से किसी बात की फरमाइश की जाये तो अक्सर यहीं जवाब मिलता है, 'ओह जी! जो तकदीर में होगा मिल जायेगा।' इसका यह मतलब है, कि हम जो चाहे करें, हमें न रोको, हमारे किये कुछ नहीं होता, यानी हमारी बदकारियों का कोई नतीजा नहीं है जो कुछ होगा तकदीर से होगा, जो नतीजा निकलेगा मुआजअल्ला खुदा की तरफ से होगा। यह बेकार की गुफ्तगू अगले जमाने में किसी कदर बामानी भी थी, क्योंकि उस जमाने में इत्तिफाक से, घड़ी भर में कुछ का कुछ हो जाया करता था। इस पर मुझे शाही जमाने की एक नकल याद आई है। जमानाए शाही में इनकलाब का सबूत अक्सर मिलता रहता था। लोगों की हालतों में यकायक तब्दीली हो जाया करती थीं।

एक दिन का जिक्र है, एक सिपाही, निहायत शिकस्ता हाल, मोती महल के फाटक के पास चबूतरे पर पडा सो रहा था। नमाजे-सुबह के बाद, टहलते हुए, बादशाह उधर आ निकले । यकायक इत्तिफाकन उस वक्त कोई साथ न था। मालूम नही, क्या जी मे आया, आपने उसे जगा दिया। यह सिपाही, यूं ही नीद से आँखे मलता हुआ उठा। जहाँपनाह पर नजर पडी । पहले तो घबरा गया, फिर एक ही मर्तबा संभल के अपनी हालत को देखा, फौरन तलवार नज़र की। बादशाह ने नजर कुबूल भी कर ली। जँगआलूद तलवार थी, म्यान मे बमुश्किल निकली। फिर देखभालकर उस तलवार की तारीफ की, और फिर म्यान मे करके अपनी कमर मे लगा ली । खुद जो विलायती बाँधे हुए थे, जिसका सोने का कब्जा था, उसको हवाला की। उसी मौका पर, हुजूरे आलम आ गये (खिताब अली तकी खाँ वज़ीरे अवध) जहाँपनाह ने उस जवान और इ। तलवार की तारीफ की।

बादशाह 'देखना भई, क्या सजीला जवान है, और तलवार भी इसके पास क्या उम्दा थी? (कमर से तलवार निकाल कर) यह देखो।'

वज़ीर 'किबलाए-आलम। सुभान अल्लाह! मगर हुजूर सा जौहर शनास और कदरदान भी तो हो। जब ऐसे लोग और ऐसी चीज़ मिलती है।'

बदशाह 'मगर देखना भई। मेरी तलवार भी कुछ ऐसी बदज़ेब नही है।'

वज़ीर 'ज़िल्ले सुभानी की तलवार और बदजेब?

बादशाह 'मगर लिबास इसके मुनासि नही है।'

इस अस्ना मे मुसाहिब, मुलाजिम, शाही चोबदार, खास बरदार आ गये। अच्छा खासा मजमा हो गया।

वज़ीर 'दुरुस्त इर्शाद हुआ।'

बादशाह 'अच्छा, हमारे कपडे तो इसे पहना के देखे जायें। इस इशारे के पाते ही लोग दौडे, लिबास की किश्तियाँ हाथो हाथ आ गईं। बादशाह ने मलबूसे खास, जो उस वक्त पहने हुए थे, बमय मालाए मरवारीद और जोडे नौरतन, उसे इनायत की। आप और कपडे पहने। जब वह कपडे पहन चुका तो बोले 'हाँ अब देखो।'

वजीर 'वाकई गुम्न ही और हो गई।'

मुसाहवीन तारीफें करने लगे।

बादशाह थोडी देर यहाँ ठहरे। अब सवारी आ गई थी, सवार होके हवा खाने चले गये।

सिपाही खुशी खुशी घर आया। जौहरी, महाजन, दलाल गोया साथ ही लगे हुए थे। असबाब आँका गया। सब पचास हजार रुपये की मालियत थी।

सिपाही का हाल सुनिये। कही नजीबो की पलटन मे तीन रुपया का नौकर था। रात को घर मे खाने पर बीबी से झगडा हुआ। आप खफा होके घर से निकल गये। रात भर मारे मारे फिरे। सुबह होते ही मोती महल के पास थक के बैठ गये, नीद आ गई। सुबह को खुश बख्ती ने जगाया, तो यह करिश्मा नजर आया। दम भर मे मोहताज से अमीर कर दिया।

इस तरह के वाकये, शाही वक्तो मे अक्सर हुआ करते थे और ऐसे ही जमाने मे इनका होना मुमकिन है, जब कि हुकूमत की बागडोर एक शख्स के हाथ मे हो और वह किसी कायदे और कानून का पाबन्द न हो। मुल्क को अपनी जायदाद और खज़ाने को अपना माल समझे।

अँगरेज़ी राज मे इन फज़ूल खर्चियो की गुन्जाइश नही है। यह एक तरह की बेइन्साफी समझी जाती है, कि किसी शख्स को बिला वजह एक बडी रकम दे दी जाय। ऐसी सल्तनत, जिसमे बादशाह से लेकर एक फकीर तक कानून के पाबन्द है, अगर हकूक का लिहाज़ न रखा जाये, तो हरगिज़ काम न चले। इस जमाना मे तकदीर का जोर नही चलता, जो कुछ होता है तदबीर से होता है।

नवाब छुट्टन साहब का हाल सुनिये। अस्नाए स्वानेह उम्री मे उनका बाकी जिक्र छूट गया था। दर हकीकत आप दरिया मे डूबने गये थे। इस इरादे से गोता लगाया, कि अब न उभरेगे। मगर जान बहुत प्यारी चीज होती है। जब देर तक पानी के नीचे रहे, दम घबराने लगा। जी मे आया अब की उभर के फिर साँस ले ले। उभरे। पानी की सतह पर आकर, बिला कसद

हाथ पाव चलाने लगे। फिर मरने को जी चाहा। फिर गोता मारा, फिर वही हाल हुआ। इसी तरह कई गोते लगाये, मगर डूबते न बन पडा। आखिर इसी कोशिश मे बहते बहाते, छतर मजिल तक पहुँच गये। इत्तिफाकन, उस वक्त मिर्जा वली अहद बहादुर मरहूम, अपने चद मुसाहबो समेत, बजरे पर सवार होकर सैर को निकले थे। उनकी नजर जो पडी, समझे कोई शख्स डूब रहा है। मल्लाहो को हुक्म दिया, जल्दी निकालो। उन्होने छुडाने की बहुत कोशिश की। वह लोग समझे थे, घबरा गये। आखिर जबरदस्ती किनारे पर लाये। मिर्जा वली अहद ने अपने सामने तलब किया। अहवाल पुरसी के बाद मालूम हुआ, कि रईसजादे है। कपडे इनायत हुए। हमराह कोठी मे लिये चले गये।

छुट्टन साहब, एक तो खुशरू जवान, दूसरे अदब कायदे से वाकिफ। इल्मे मजलिस से आगाह, पढे लिखे। तबीयत मे मजाक भी था। गरजेकि हर तरह शाहज़ादे की सोहबत के लायक थे। फौरन मुसाहबो मे नाम हो गया। काफी तनख्वाह हुई। अखराजाते ज़रूरी के लिये कुछ पेशगी भी मिल गया। नौकर, चाकर, सवारी, सब सरकार से मिला। लीजिये फिर क्या था, पहले से ज्यादा ठाठ हो गये।

अब जो चौक मे निकले, तो जलूस ही और था। हाथी पर सवार है। पचास खास बरदार आगे दौडे चले जाते है।

बिस्मिल्ला ने और मैंने अपनी आँखो से देखा। पहले तो यकीन न आया। कही मियाँ मखदूम बख्श भी पीछे-पीछे चले आते थे, उनको इशारे से बुला लिया। मुफस्सिल हाल मालूम हुआ।

इसके बाद चचा ने भी मेल कर लिया। शादी भी हो गई। शादी मे हम लोग भी बुलाये गये थे। खानम को बहुत उम्दा दुशाला और रूमाल दिया। मगर उस दिन से, न कभी हमारे मकान पर आये, न बिस्मिल्ला से रस्म रखी। खानम ने और चाल चली थी। बन न पडी, उलटी हो गई।

खुलासा यह, कि शाही ज़माने मे ऐसे करिश्मे नज़र आ जाते थे। भला अँगरेज़ी हुकूमत मे यह कहाँ? सुनते चले आये हैं कि दौलत अन्धी है, मगर अब ऐसा

मालूम होता है कि किसी हिकमत से उसकी धारें तोड़ दी गई हैं। अब उसे तलवार और नालायक का ख्याल हो गया है।

शाही अमलदारी में जाहिल, नाकारा, जो अलिफ़ के नाम लट्ठ नहीं जानते थे बड़े-बड़े ओहदों पर नौकर थे। मैं कहती हूँ, उनसे काम क्योंकर चलता होगा और तो और कुछ ख्वाजा सराओं के पास फाटक और रिसाले थे। भला इन्साफ कीजिये, हँसने की बात है या नहीं ?

तकदीर और तदबीर के मसले में, मैं बहुत दिन चक्कर में रही। आखिर मालूम हुआ, कि जिन मानों में लोग इस लफ्ज को इस्तेमाल कर रहे हैं, वह बिल्कुल धोखा है। अगर इससे यह मुराद है, कि खुदा को हमारी सब बातों का इल्म पहले से है, तो इसमें कोई शक नहीं। वह काफिर है, जिसको इसका एतकाद न हो। मगर लोग तो अपने बुरे अमलों के बुरे नतीजों को, तकदीर की तरफ निस्बत दिया करते हैं। इससे खुदा की कुदरत पर इल्जाम आता है। यह बिल्कुल कुफ्र है।

अफसोस ! जिन बातों को मैं अब समझी, अगर पहले ही से समझ गई होती, तो बहुत अच्छा होता। मगर न कोई समझाने वाला था, न खुद इतना तजुर्बा था, कि आप ही समझ लेती। मौलवी साहब ने, जो दो हर्फ पढ़ा दिये थे, वह मेरे बहुत काम आये। उस जमाना में मुझे इनकी कदर न थी। तब आसानी और आराम तलबी के सिवा कोई काम न था। अलावा इसके, कदरदान इस कदर थे, कि किसी वक्त फुरसत ही न मिलती थी। जब वह दिन आये, कि कदरदान एक-एक करके खिसकने लगे तो मुझे जरा मोहलत मिली। तो इस जमाना में किताबें पढ़ने का शौक बढ़ा, क्योंकि सिवा इसके अब कोई शगल न रहा था।

मैं सच कहती हूँ, कि अगर यह शौक न होता, तो अब तक, मैं जिन्दा न रहती। जवानी के मातम और अगले कदरदानों के गम में, कब का खातमा हो गया होता। कुछ दिनों तो, मैं किस्से कहानी की किताबों से दिल बहलाया की। एक दिन पुरानी किताबें धूप देने के लिए निकालीं। इनमें वह गुलिस्ताँ भी निकली, जो मौलवी साहब से पढ़ी थी। इधर उधर से वरक उलट पलट

के पढ़ने लगी। पहले तो मुझे नफरत सी हो गई थी। एक तो इसलिये, कि तालीम का इब्तदाई जमाना था। इबारत मुश्किल मालूम होती थी। दूसरे तजुर्बा न था। इसलिए कुछ समझ मे नही आती थी। अब जो पढ़ा तो वह दिक्कतें दूर हो चुकी थी। खूब ही दिल लगाकर मैंने सिरे से आखिर तक कई बार पढ़ा। फिकरा फिकरा दिल मे उतरा जाता था। इसके बाद एक साहब से इखलाके नासरी की तारीफ सुन के, उसके पढ़ने का शौक हुआ। उन्ही से एक नुस्खा मँगा के पढ़ा। वाकई, इस किताब का मतलब भी मुश्किल है और अरबी लफजें कसरत से है। इसलिए इसके समझने मे बहुत दिक्कत हुई। मगर थोड़ा-थोड़ा पढ़ के बहुत दिनो मे किताब को खत्म किया। फिर तारीख नामा, नवलकिशोर के छापाखाना मे छपा था उसे पढ़ा। फिर एक मर्तबा गुलिस्ताँ, कुबरा को बजाए खुद मुतालिआ किया और जो-जो न समझ मे आया, उसे पूछ लिया। इन किताबो के पढ़ने से मुझे ऐसा मालूम हुआ, जैसे दुनिया के भेद मुझ पर खुलते जाते है। हर बात की समझ आ गई। इसके बाद मैंने बहुत सी किताबें इस किस्म की, उर्दू, फारसी बजाये खुद पढ़ी। इससे तबीयत साफ होती गई। कसायद अनवरी और खाकानी एक-एक करके पढ़े। मगर झूठी खुशामद की बातो मे, अब मेरा दिल न लगता था, इसलिये उनको बन्द करके अलमारी मे रख दिया। फिलहाल कई अखबार भी मेरे पास आते है, उन्हे देखा करती हूँ, उनसे दुनिया का हाल मालूम होता रहता है। किफायत शुआरी की वजह से, मेरे पास अब भी इस कदर जमा पूँजी है, कि अपनी जिन्दगी बसर कर ले जाऊँगी। वहाँ का अल्लाह मालिक है। मैं बहुत दिन हुए, सच्चे दिल से तौबा कर चुकी हूँ और जहाँ तक हो सकता है, रोजा नमाज की पाबन्द हूँ। रहती रंडी की तरह हूँ, खुदा चाहे मारे, चाहे जिलाये। मुझसे पर्दे मे घुट के तो न बैठा जायेगा। मगर पर्दा वालियो के लिए दिल से दुआगो हूँ। खुदा उनका राज सुहाग कायम रखे।

इस मौका पर, मैं अपनी हम पेशा औरतो की तरफ मुखातिब हो के, एक नसीहत करती हूँ, वह अपने दिल पर नक्श कर ले।

'ऐ बेवकूफ रंडी! कभी इस भुलावे मे न आना, कि कोई तुझको सच्चे

दिल मे चाहेगा। तेरा आशना, जो तुझ पर जान देता है, चार दिन के बाद चलता फिरता नजर आयेगा। वह तुझसे हरगिज निबाह नही कर सकता और न तू इस लायक है। सच्ची चाहत या मजा, उसी नेक बख्त का हक है जो एक मुँह देख के, दूसरे का मुँह कभी नही देखती। तुझ जैसी बाजारी शफतल को, यह नेमत खुदा नही दे सकता।'

खैर, मेरी तो जैसी गुजरनी थी गुजर गई। अब मैं अपनी जिन्दगी के दिन पूरे कर रही हूँ। जितने दिन दुनिया की हवा खाना है, खाती हूँ। मैंने अपने दिल को हर तौर समझा लिया है और मेरी कुल आरजूएँ पूरी हो चुकी। अब किसी बात की तमन्ना नही रही। अगर्चे यह आरजू कम्बख्त, वह बला है, कि मरते दम तक दिल से नही निकलती। मुझे उम्मीद है, कि मेरी सरगुजश्त से कुछ न कुछ फायदा जरूर होगा। अब मैं अपनी तकरीर को इस शेर पर खत्म करती हूँ और सबसे उम्मीदवारे दुआ हूँ।

**मरने के दिन करीब हैं, शायद कि ऐ हयात,**
**तुझसे तबीयत अपनी बहुत सेर हो गई।**

Prakash Chand
1st year B Sc science
nails